

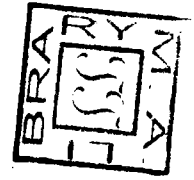
ब्रज-भाषा काव्य में  
**निकुञ्ज-लीला का स्वरूप**

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**

**१९७५**

T-1825



निर्देशक :

डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल,

एम० ए० ( हिन्दी, संस्कृत ), पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रस्तुतकर्त्री :

आशा शर्मा,

एम० ए० ( हिन्दी ), 'साहित्य शिरोमणि'

## ब्रज-भाषा काव्य में निकुंज लीला का स्वरूप

( शोध प्रबंध का सारांश )

- :: 0 :: -

श्री कृष्ण भगवान् की अनुराग मयी भावना के प्रति मेरा आकर्षण कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । हाँ मेरे पूज्य पितामह प्रातः और सन्ध्या कालीन भजन-ध्यान के उपसंहार में कुछ मधुर श्लोक एवं पदों का कीर्तन किया करते थे जो मुझे बह्यावस्था से ही विशेष प्रिय हो चले थे । उनमें से एक था, जैसा मुझे कालान्तर में ज्ञात हुआ, महाप्रभु बल्लभाचार्य कृत 'मधुराष्टक' और दूसरे थे 'कृष्ण कर्णामृत' के दो श्लोक जिनमें उनके मधुर स्वरूप व्यंजना की गई है और उनके दर्शनार्थ आतुरता की अभिव्यक्ति है ।

बह्यावस्था बड़ी लगनशील होती है और स्वभाव के अनुगमन में निष्ठापूर्वक सहयोग करती है, ऐसे कंद और श्लोकों की मैंने मोटे मोटे अक्षरों में छोटी कापी पर अंकित कर लिया इनमें एक श्री सीताराम जी की रूप शोभा का श्री युगलानन्द शरण काथा ।

सरसत प्रेम अनूप पलार्है पल लखार्है अपार मुख चंद ।

कलकत कटा कवीली कन कन कावति कित चित फंद ।

बड़भागिनी अली अवलोकहि युगल सनेह समुन्द ।

(श्री) 'युगल अनन्य' अली कवि ककि थाकि पीवति मृदु मकरंद ।

इसमें श्री सीताराम के कैकर्य की निकुंज भाव पर <sup>कटा</sup>वर्णित है । ये संस्कार

1- (i) चिकुरं वहलं विरलं प्रमरं मृदुलं वचनं विपुलं नयनम् ।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं चपलं चरितम् च कदानुविभो : (61)

(ii) हे देव । हे दमित । हे भुवनैक बंधो ।

हे कृष्ण । हे चपल । हे कस्तुरि सिन्धो ।

हे नाथ । हे रमण । हे नयनाभिराम ।

हा हा कदा नु भवितसि पदं दृशोमि (40)

- कृष्ण कर्णामृत - लीला शुक .

रत्नैः रत्नैः परिपक्व होति गर । उधर मेरे पूज्य पिताजी ने निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त कवियों पर शोध-प्रबंध लिखा था, उनसे प्रायः राधा कृष्ण तत्व, उनका उपास्य स्वरूप, रस मार्ग की उपासना आदि पर चर्चा होती रहती थी । अतः एम० ए० करने के अनन्तर मैंने निर्देशक परम आदरणीय डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल एवं उस समय के विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डा० हारवंश लाल शर्मा जी के परामर्श से "ब्रज भाषा काव्य में निरुंज लीला का स्वरूप" विषय पर शोध कार्य करना प्रारम्भ किया । प्रस्तुत निबंध उसी अध्ययन की प्रति<sup>फल</sup> है ।

"निरुंज लीला" की आलोचकों ने "मोक्ष शास्त्र" कहा है । श्री मद भगवद् गीता में भगवद् प्राप्ति के उपाय और गुणातीत पुण्यों के लक्ष्यों का वर्णन करते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि "शास्त्र धर्म और ऐकान्तिक सुख ये सब मेरे ही नाम हैं" । इस अर्थ में निरुंज लीला भगवद् स्वस्व है प्रभु का अभिन्न अंग है रस मार्गीय तत्वों का सुपरिचय एवं अनुभव प्रौढ़ता दोनों ही इस लीला के रहस्योद्घाटन की अनिवार्य अपेक्षाएँ हैं, उनकी किन अंशों में पूर्ति हो सकी है यह देखना विद्वानों और मर्मज्ञों का कार्य है । अपनी काशी, अयोध्या और गोरखपुर की शोध-यात्रा के प्रसंग में मैं जब श्रद्धेय डा० भगवती प्रसन्न सिंह से मिली थी तो उन्होंने सर्व प्रथम यही कहा था कि निरुंज लीला साधना और अनुकृति का विषय है शब्दों में उसकी अभिव्यक्ति बहुत कठिन है ।

यह शोध प्रबंध 8 अध्यायों में विभक्त है । प्रथम दो अध्यायों में भक्ति की मीमांसा और उसके भेदों का वर्णन है । निरुंज लीला का आस्वादन और उसमें प्रवेश साधारण भाव व देह से संभव नहीं है । उसके लिये शरीर, मन और चित्त तीनों का ही साधना द्वारा शोधन करना पड़ता है और हृदय की उदारता, सहृदय और प्रेम से अनुरक्त करना अनिवार्य है । यह एक दुर्गम मार्ग है तब कहीं सहच भाव की प्राप्ति होती है । उसमें भी साधना कम और भगवान् की "अहेतु की वृ

---

1- "शास्त्रवत् धर्मोपनिषद् पुनर्व्याख्या" श्री "गीता" भाष्य १४ श्लोक २६.

विशेष कारण है । साधक से सिद्ध देह तृतीय अध्याय में इसी की चर्चा है । चतुर्थ अध्याय 'सम्बन्ध योजना' का है जिसमें आराध्य केशांत दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावों के क्रम में श्री राधा के महाभाव, गोपियों के 'परम भाव' का दिग्दर्शन कराति हुए तथा गोपी भाव और सखी भाव का तात्त्विक विश्लेषण है । सखी भाव की साधना उनकी सेवा और विभिन्न सम्प्रदायों के क्रम में मान्य नामावली का भी संकेत किया गया है । पांचवें अध्याय में लीला तत्व का विवेचन, उसके भेद प्रभेद और नित्य लीला एवं निकुंज लीला का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । सभी सम्प्रदायों में 'अष्ट कालीन लीला' की नित्य लीला के रूप में मान्यता है । गौड़ीय सम्प्रदाय में श्री राधा कृष्ण की ब्रज रस परक भावना का सर्वतो भावेन प्राधान्य है इस कारण उनकी 'अष्टयाम लीला' में गोपियों के अतिरिक्त नंद, यशोदा, श्रीदामा, तोष मनसुखा आदि विविध परिकरों का भी समावेश है । उनकी इस लीला के धामादि में भी वैभिन्न है । वृन्दावन के अतिरिक्त, गोकुल (महावन) बृभन्नसु बृषभानुपुर, संकेत आदि के भी संकेत उनके इस लीला क्रम में आते हैं इस कारण इस सम्प्रदाय की निकुंज लीला का स्वस्व अन्य सम्प्रदायों से थोड़ा भिन्न है । अन्य सम्प्रदायों में श्री वृन्दावन ही निकुंजलीला का प्रधान स्थल है और सखी-सहचरियों का ही परिकर में समावेश है । वे ही अष्ट याम श्री राधामाधव की सेवा साधना में निरत रहती है ।

छठवें अध्याय में 'निकुंज लीला' का स्वस्व दर्शन है । 'निभृत निकुंज' भगवान् की परम गोप्य विहार स्थली है जहाँ पर उनकी पुरातन्त्र-संयोग प्रधान लीलाओं का संपादन होता है । वृन्दावन की इन कुंजों के सम्बन्ध में आचार्यों की बड़ी उच्च कल्पना है । ये वृन्दावन की कुंजें क्या हैं ? लौकिक और पारलौकिक परमानंद की परिकल्पना के मुक्त क्षेत्र हैं, जहाँ साधना से सिद्धदेह प्राप्त साधक श्री श्यामश्याम की अतीव माधुरी, उनके परमोक्तम्य निकुंज बिहार की विविध-क्रीड़ा और लीलाओं के परम स्वाद की निश्चल-निरंतर अनुभूति करता हुआ समस्त इन्द्रियों की स्वाग्रता में अनुबंधित होकर मानसी सेवा के माध्यम से किंकरी भाव अपनाए उन लीला और क्रीड़ाओं में अपनी साधना के अनुसार सेवा-सानिध्य में निरत रहता



है ।<sup>1</sup> कुंज का शाब्दिक अर्थ है 'दृक्ष-लतादि से मँढप सा ढका स्थान' - ऐसा स्थान जो वसावट से दूर किसी सरिता के सुंदर कुल पर स्थित हो, चन्द्रमा की चन्द्रकला से परिवेष्टित हो, जहाँ प्रफुल्लित मन से वन-कुसुम अपने सुवास को प्रखन पवन को उद्वेलित कर रहे हों, जहाँ मारों का कसरव एवं श्रमरों की गुंजार हो, हरी हरी घास और कोमल वेल वृंटों से आच्छादित मन के रमने योग्य स्थली हो, जहाँ मंद मंद मंथर गति से प्रवाहित समीर में वंशी के कसरव का समिश्रण शब्द ब्रह्म से साक्षात् सम्बन्ध संस्थापन की प्रेरणा दे रहा हो वहाँ किसी भी लौकिक अथवा पारलौकिकसाधना की उपलब्धि हो सकती है । अभीष्ट सिद्धि में साधन का सर्वोपरि महत्व है । साधन साध्य का विशिष्ट सीपान है । इस निश्चल-सकप्रता में सफलता तो साधक का वरबस आवाहन करती है। वृन्दावन के कुंज पुंजों की पावन भूमि श्री हरी के चरण कमलों से अंकित है :-

'पद अम्बुज जावक जुत भूषण प्रीतम उर अवनी' ।

भागवतकार लिखते हैं कि बनराज श्री वृन्दावन की अवनी भगवत् रूप है ।<sup>2</sup> इस कारण इसका सर्वोपरि महत्व है । यह श्याम सुंदर के हृदय की मणी है । अतः दुर्गम से दुर्गम परात्पर से परात्पर अगोचर से अगोचर, सदा एक रस, नित्य परिपूर्ण - जिसका आदि, मध्य, अवसान कुछ नहीं है वहाँ स्वयं प्रकाश, स्वइच्छा-विग्रह सत्चित्त आनंद वन अपने निजानंद अनुभव मय हो कर विराजते हैं ।- यही आस पास ही मैं श्यामाश्याम का प्रिय वंशीवट है जहाँ का पत्ता पत्ता वंशी ध्वनि से प्रतिध्वनित श्री राधा नाम से परिपूरित है । यहाँ पर श्री दम्पति आनंद-परिपूर्ण होकर अंक भर मिलते हैं, जिनके श्री अंगों के परस्पर स्पर्श से मनीमुग्धकारी सुवास चतुर्दिक प्रवहमान है औरवहाँ के वातावरण में उन युगलशरीरमणि की कृति प्रतिविम्बित हो रही है । प्रेमानंद विभोर रसिक वर श्री श्यामसुंदर और रसिक शरीरमणि श्री राधा - दुलह-दुलहिनी रास खेलते हैं । यहाँ 'नित नित लीला नित निरास' आयोजित होते हैं । ये ही सब इस भूमि में प्रेम के उमड़ने के कारण हैं ।

1- इस निबंध की पृष्ठ संख्या 171

2- श्री मदभागवत 10-18-2

कुंजी में ब्रजलीला सुख का अनुपमेय आनंद सदैव ~~अ~~ प्रसारित होता रहता है । कुंजी की लीलाएँ निकुंज लीलाओं की पृष्ठ भूमि के रूप में हैं । कुंज निकुंज के प्रवेश द्वार हैं । सनत्कुमार संहिता में निकुंजों की अनेक (पचासी) कुंजी से परिवेष्टित नितान्त स्वान्त रस-केलि-रत्न गृह कहा है ।<sup>1</sup> निकुंज, नव निकुंज अथवा 'मोहन महल' की व्याख्या - विश्लेषण के क्रम में वृन्दावन के योगपीठ की भी चर्चा की गई है । और निकुंज भावना के विशेष विश्लेषण हेतु श्री राधा सुधानिधि में वर्णित 'पाद-स्पर्श महोत्सव' शीर्षक निकुंज-लीला के मनोहर रस-प्रसंग का भी उल्लेख है और उसके नित्य एवं नैमित्तिक क्रम की भी सूक्ष्म विवरण दिया गया है । रस-शक्ति की रसिक शाखा में उपास्य के आदर्श और साधना दोनों दृष्टियों से निकुंज लीला का स्वरूप थोड़ा भिन्न है । उसके आवश्यक पक्षों का दिग्दर्शन कराने के क्रम में वैभिन्य का भी संकेत है ।

इसी अध्याय के उत्तरार्द्ध में निकुंज लीला के सिद्धान्तों की स्थापना और उनकी समीक्षा का प्रयास है । इन लीला का उपास्य 'रस तत्त्व' है । इसी कारण इसकी उपासना को 'रसोपासना' कहा गया है । इसकी रीति को 'रस रीति' कहते हैं । जिस लीला में जितने अधिक रस (प्रेम) का प्रकाशन होगा वह मन को उतना ही अधिक रमाने के उपयुक्त होगी । दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि रसों में प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती क्योंकि रति मानव मात्र की मौलिक प्रवृत्ति है और वह विभिन्न कारण-कार्यों के योग से पल्लवित होकर रस रूप में हृदयस्पर्श का आनंदातिरेक में समर्थ होती है । इस आनंदातिरेक को ही भक्त भगवान् का स्वरूप मानते हैं । वास्तव में वह प्रभु रस स्वरूप है भी । 'रसो वै सः' 'रसोद्भवेयं लब्ध्वाऽननन्दी भवति' उसके रस रूप होने के प्रमाण हैं । भक्तों की प्रेरणा के अनुसार भगवान् नाना रूपों में परिणत होते हैं यही उनकी लीला है । तदनन्तर 'ब्रजरस' और 'वृन्दावन-रस' दोनों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए वृन्दावन-रस या निकुंज-लीला के विधायक तत्वों की

-----  
1- मध्ये वृन्दावने रम्ये पंचशकुंज मंडिते ।

मत्प वृक्ष निकुंजेषु, दिव्य रस लभये गृहे । - सनत्कुमार संहिता

व्याख्या और भगवान् के निकुंज विहारी स्वरूप की विशिष्टता एवं (उपास्य में) राधा तत्व की प्रमुखता का संकेत किया गया है । यहाँ परमात्मतत्त्व अपने सौन्दर्य माधुर्य भाव में ही गृहीत है । कहीं कहीं वे राधा के प्रति दास्यभाव-रुढ़ भी अंकित किये गए हैं । भक्ति की निष्कामता, प्रेम की काम शुन्यता, प्रेम के इस संसार में केवल प्रेम निर्वह हेतु नेम की उपयोगिता है, अन्यथा भाव से उनमें शिथिलता ही साध्य है । विधि निषेधा का त्याग और निकुंज प्रेम में स्व माधुर्य की सर्वत्र सविशेषता इस लीला की अन्य - सैद्धान्तिक प्रवृत्तियाँ हैं जिन पर इसका प्रासाद निर्मित हुआ है । प्रेम में प्रियान-प्रियतम के अनंदातिरेक और उनकी दृष्टि में धाम एवं परिकर का उन्मेष और उत्फुल्लता तत्सुख-सुखी भावना का आधार है । श्री राम सम्प्रदाय की रसिक शाखा में यह भावना कृष्ण भक्त सम्प्रदायों से थोड़ी भिन्न है । इस की ओर भी संकेत किया गया है ।

नित्य विहार एक विशेष निकुंज लीला है जिसमें श्री राधा माधव के अनादि काल से अनवरत विहार की परिकल्पना समाहित है । श्री निम्बार्क, राधाकलभ, स्वामी हरिदास के सम्प्रदायोंमें नित्य विहार का विशेष लीला गायन हुआ है । श्री भट्ट देवाचार्य की नित्य विहार कल्पना में निकुंज विहार ही प्रधान है परन्तु पीछे के आचार्य कवियों ने इस भाव को अधिक उन्मेषकारी बनाने की दृष्टि से श्री श्यामाश्याम को नित्य विहार में इस संलग्नता से निरत अंकित किया है कि उनके पतित उद्धार विरह और लोक मर्यादा एवं लोक व्यवहार विषयक पक्षों पर आघात पहुंचता है । चिंतन की दृष्टि से यह उपासना उच्च कोटि की है परन्तु लोक और वेद दोनों की विमुखता से इसका लोक पक्षीय आधार बहुत दुर्बल है । इधर डा० विजयेन्द्र स्नातक के और डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने अपने शोध प्रबंधों में नित्य विहार के आदि प्रवर्तक कौन ? इस प्रश्न की लेकर बड़ी खींच तान की चेष्टा की है जिसके परिणाम स्वरूप दोनों ओर पक्षपात की उपेक्षणीय गंध अनुसंधान के क्षेत्र में प्रसारित होने लगी थी । श्री हरिव्यास देव और श्री महावामी शोध प्रबंध में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है । हमारी सम्मति में नित्यविहार की परिकल्पना एक सूक्ष्म संकुचित भावना पर आधारित होने के कारण लोक मंगल और समाज-

शोधन उदात्त एवं जन मानस पर प्रभावी नियंत्रण की दिशा में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है। हाँ यह एक विशेषमनोदशा है जिसका केवल उच्च स्तरीय चिन्तन ही संभव है। इन सब दृष्टियों से तो निकुंज लीला भावना समाज संस्कार, भावुकता और उपादान सभी दृष्टियों से नित्य विहार की शाश्वत अनवरतता से लोक के अधिक निकट है।

सप्तम अध्याय में निकुंज लीला साहित्य की बिवृत्ति का प्रयास किया गया है। साहित्य की पृष्ठ भूमि में धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण है जिनके परिणाम स्वल्प उक्त साहित्य का सृजन हुआ है। इस युग की माधुर्य भक्ति विषयक रचनाओं के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे अश्लीलता की पंक्ति से उत्पन्न सुवासमयी नसिनियाँ हैं। निकुंज काव्य की यह बड़ी सटीक आलोचना है। वास्तव में इस काव्य की आविर्भाव कालीन परिस्थितियों में धर्म, समाज, राजनीति, सम्प्रदाय, ऊँचे नीचे छोटे बड़े सभी क्षेत्रों में कुहिसत कामुकता का सभी ओर प्रसार था। बौद्धों की वज्र यान शाखा, सहजिया सम्प्रदाय शक्तमत, वाम मार्ग आदि मतमतान्तरों के एक या दूसरे प्रकार की महामुद्रा साधना समाज में सभी को अपने दुष्प्रभाव से दुर्गन्धमय बना रही थी। लौकिक से अप्राकृत काम, अनित्य से उपास्य की नित्य कल्पना, उनके नित्य किशोर भाव, नित्य परिणाम, नित्य संयोग, स्वकीया भाव, तत्सुख सुखी भावना आदि स्थापनाओं ने आवार और लोक मंगल की दिशा में बड़ा बल दिया। गौड़ीय सम्प्रदाय में परकीया भाव से श्री राधा और गोपीजन की प्रेम साधना का यद्यपि शास्त्रीय आधार बहुत पुष्ट है परन्तु वह सब किसी के गले उतारने में उसकी कृतकार्यता नहीं है। निम्बार्क, कल्लभ, राधाकल्लभ, स्वा० हरिदास, ललित सम्प्रदाय और राम सम्प्रदाय की रसिक शाखा के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने के अनन्तर उनके प्रमुख कवियों की रचनाओं का परिचय और योगदान का उल्लेख है।

अष्टम अध्याय में निकुंज-लीला रचनाओं के भक्ति में प्रेम प्रतिष्ठा, दार्शनिक उपलब्धि, साहित्य संबर्धन और कला एवं संस्कृति के क्षेत्रों में निकुंज लीला दर्शन और उसके साहित्य के प्रभावी योगदान की चर्चा की गई है।

गं गं

निकुंज लीला का प्रमुख आधार ~~रामानुज~~ भक्ति है । वह सभी साधनों का साध्य है । वैधी भक्ति साधन स्थिति है । रगानुगा और रगात्मिका उसका साध्य है । गौड़ीय आचार्यों ने भक्ति की रस रूप में प्रतिष्ठित करने और उसका शास्त्र सम्मत उन्नयन की दिशा में भारी योगदान रहा है । प्रथम दो अध्यायों में निकुंज लीला में भक्ति भावना की प्रेषणीयता के आधार की आवश्यक चर्चा हुई है ।

इस प्रबंध के सम्प्री संकलन, विचार ग्रन्थ और मूर्त रूप निर्धारण में डा० दीनदयालु गुप्त, डा० विजयेन्द्र सातक, डा० भुवनेश्वर मिश्र माधव, डा० शरण बिहारी गोस्वामी, डा० स्वप्नारण्य आदि के शोध प्रबन्धों से मुझे प्रेरणात्मक सहायता मिली है और मेरा मार्ग दर्शन हुआ है । डा० सत्येन्द्र, श्री ब्रज बल्लभ शरण वेदान्ताचार्य, वा० हितदास डा० कैलाशचन्द्र भाटिया से हमारी पारिवारिक सन्निकटता का लाभ मुझे मिला है जिनके मूल्यवान परामर्श और सुझावों से यह कार्य <sup>अत्यन्त</sup> सुसम्पन्न और सुगमता से सम्पन्न हो सका है । अपने पूज्य पिताजी डा० नारायण दत्त शर्मा एवं अपने विषय निर्देशक डा० गोवर्धन शुक्ल के योगदान का प्रकाशन किन्हीं शब्दों में संभव नहीं है ।

—आशा शर्मा ।

सम०२०, साहित्य शिरोमणि ।

विषय — सूची  
=====

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश

1-17

भक्ति मीमांसा भक्ति क्या है — ज्ञान और भक्ति,  
भक्ति की आधार-भूमि और प्रेम विकास

द्वितीय अध्याय : भक्ति के भेद

18-38

कृतभावार्थ के अनुसार भक्ति के भेद, सात्त्विक  
निम्बार्क का भक्ति वर्गीकरण, वैधी और रागानुगा  
भक्ति, वैधी भक्ति के अधिकारी, वैधी भक्ति के  
चौंसठ अंग, कर्तव्य भाव से दस अंग, निषेध  
भाव से दस अंग, रागानुगा भक्ति, रागानुगा  
भक्ति की प्रक्रिया, रागात्मिका और रागानुगा  
भक्ति के भेद, सम्बन्ध रूपा भक्ति, रागानुगा  
भक्ति के भेद और कामानुगा और सम्बन्धानुगा,  
सम्बन्धानुगा भक्ति, प्रेमा भक्ति, परा भक्ति,  
प्रीति भक्ति ।

तृतीय अध्याय : साधक से सिद्ध देह

39-78

ईश्वर के प्रति प्रेम, भगवान के अधीन भक्तों के  
प्रति मैत्रीभाव, बालिशों पर कृपा, दवेणो मनुष्यों  
की उपेक्षा, सिद्ध देह प्राप्ति की प्रक्रिया, गुरुपादा-  
श्रय, अनर्थ विपत्ति, साधु अंग, नाम, रूप,  
माहत्, प्रकट, लीला, गुण काम और परिकर  
तत्त्व, ब्रजरास एवं ब्रज परिकर, सम्बन्ध भाव-  
वयस, नाम, रूप, युव, मेवा, वास, वेश,  
सखी, मंजरी ।

चतुर्थ अध्याय : सम्बन्ध योजना

79-129

शान्त भक्तिरस, दास्य भक्ति रस, सख्य भक्ति, सखा भेद,  
वात्सल्य भक्ति रस, माधुर्य भक्ति, गोपी भाव, गोपियों का  
वर्गीकरण, गोपीभाव से सखी भाव की विशेषता, श्री राधा भाव

पंचम अध्याय : लीला भेद प्रभेद वैशिष्ट्य और लीला प्रवेश ।

130-156

लीला के उद्देश्य, लीला के भेद या प्रकार, गुण दृष्टि से लीला  
भेद अथ दृष्टि से लीला भेद, प्रकाश दृष्टि से लीला भेद,  
रस के आधार पर लीलाओं का वर्गीकरण, लीला का वयगत भेद,  
लीला का कालगत वर्गीकरण और लीला के स्थानगत भेद,  
लीलावाद, पृष्ठितिविधान का सिद्धान्त लीलावर्णन का  
वैशिष्ट्य, लीला प्रवेश ।

षष्ठम अध्याय : निरुंज लीला स्वरूप और सिद्धान्त ।

157-227

निरुंज, निरुंज लीला का नित्य और नैमित्तिक भ्रम, नैमित्तिक  
लीलायें, राम भक्ति की रसिक शाखा में निरुंज लीला का  
स्वरूप, निरुंजलीला का सिद्धान्त पक्ष, निरुंज लीला के  
विधायक ज्ञत्व, श्री कृष्ण का निरुंज विहारी स्वरूप, आराधा,  
वृहद ब्रह्म संहिता में राधा, श्री वन श्री वृन्दावन, वृन्दावन  
का योग पीठ, सहचरी वर्ग, निरुंज लीला की अन्य सिद्धान्तिक  
प्रवृत्तियाँ, निरुंज प्रेम और रूप सौन्दर्य, निरुंज लीला और  
नित्य विहार ।

सप्तम अध्याय : निकुंज लीला साहित्य -

228-309

धार्मिक राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ - सामान्य  
परिचय धार्मिक, परिस्थितियाँ, राजनैतिक परिस्थितियाँ  
सामाजिक दशा - निकुंज रस की प्रतिष्ठा और उसका  
स्वरूप आलम्बन में ऐश्वर्य, सौंदर्य और माधुर्य का  
सम्मिश्रण।

काव्य शास्त्रीय आधार -

विभिन्न सम्प्रदायों के परिप्रेक्ष्य में निकुंज लीला और उसका  
साहित्य ।

निम्बार्क सम्प्रदाय : आचार्य निम्बार्क निकुंज लीला के  
प्रतिष्ठापक ।

सिद्धान्त, निम्बार्क कवि - श्री भट्ट देवाचार्य, हरिव्यास  
देवाचार्य, रूप रसिक देव, परशुराम देव ।

मध्व गौडीय सम्प्रदाय : राधा कृष्ण की लीलायें, कवि -  
गदाधर भट्ट, सूरदास, मदन मोहन, श्री माधुरी  
दास, बल्लभ रसिक ।

बल्लभ सम्प्रदाय : सूरदास, नंददास, परमानंददास,  
चतुर्भुजदास, द्वीत स्वामी, गंगाबाई ।

राधाबल्लभ सम्प्रदाय : गी० हित हरिवंश, दामोदर दास,  
ध्रुवदास ।

हरिदासी सम्प्रदाय : उपास्य तत्व, स्वामी हरिदास, श्री  
विहारिन देव, किशोर दास जी, ऐतिहासिक महत्व  
के ग्रंथ, सैद्धान्तिक रचनायें, रस सम्बन्धी  
रचनायें, श्री भगवत रसिक ।



उल्लिखित सम्प्रदाय : सिद्धान्त पक्ष, लीला भेद धाम एवं  
प्रयोजन ।

अष्टम अध्याय : उपसंहार ( निरुंज लीला का योगदान ) -

300-304 -

भक्ति में प्रेम प्रतिष्ठा, साहित्य संवर्धन, दार्शनिक  
उपलब्धि, साहित्य कला और संस्कृति के क्षेत्रों में  
योगदान ।

परिशिष्ट :- ग्रंथ सूची ।

- :: ॐ ० ॐ :: -

## ब्रज भाषा कव्य में निकुंज लीला का स्वप्न

सिद्धान्त छण्ड

प्रथम - अध्याय

भक्ति मीमांसा

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास क्रम में वह महान सौभाग्य का दिन था जब मनुष्य की अंतर्चेतना में अपने नियंता कृपालु और संरक्षक आत्मीयजन के रूप में ईश्वर की प्रतिष्ठा का विचार भाव उदय हुआ। विचारकों का मत है कि सृष्टि के प्रारम्भिक काल में मानव मन में अनिष्टकारी शक्ति के रूप में भगवान की प्रतिष्ठा हुई। जिसे उसे अपनी धनधान्य वृद्धि और भौतिक समृद्धि हेतु यज्ञ याग और वलिदान द्वारा संतुष्ट रखना अनिवार्य था। कालान्तर में वे अनिष्ट देव इष्ट फल देने लगे अतः इष्टानिष्ट से शनैः शनैः वे इष्टदेव की श्रेणी में आकर प्रतिष्ठापित हो गए। फिर तो स्व और पर का निरंतर लोप होता गया। सब कुछ प्रभुमय ही दिखलाई पड़ने लगा मानव ने सर्वात्मि भाव से उस अनिष्ट सत्ता को अपने समर्पित करके सांसारिक भय से मुक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु ने अपने दया दाक्षिण्य का विस्तार करके उदारता से कहा 'प्राणी, मुझ में और तुझ में कोई भेद नहीं। हम दोनों में अंश अंशी सम्बन्ध हैं। मैं सर्व शक्ति का नियामक और धारण करने वाला, ज्योति पुंज और अखिल ब्रह्माण्ड का नियामक हूँ।<sup>1</sup> तू संसार के सभी पचड़ों का परित्याग कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब भयों से मुक्त कर दूंगा। तेरा कल्याण होगा। तू निरापद और सुखी बनेगा।<sup>2</sup>

- 1- गमैवशि जीवलोके जीवभूतः सनातनः । भगवद्गीता 15 वां अध्याय 7 वां श्लोक  
गतिर्भर्ता प्रभुः सक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।  
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

भ०गीता 9 वां अध्याय, श्लोक 18

- 2- सर्वधमन् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।  
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भ०गीता 18वां अध्याय, श्लोक 66

विवेक और निष्ठा से मनुष्य ने अपने त्राणकारी महान कृपासागर अन्त्य शरण इष्ट देव को पहचाना और उससे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने लगा । कष्टों की दृष्टि पर छड़े गिड़गिड़ाते और प्रभु कृपा के प्रति सदिग्धमना वह उपासक विश्वास की सुखद - शान्ति - मय क्रोड़ में पहुँचकर उनकी स्वामिनी और सहचरी स्म में प्रणय और तत्सुख सुखी चिरसगिनी की भाँति सानिध्य-लाभ करने लगा । प्रेम-परिचर्या और साधना अपनी उच्चतम सीढ़ी पर प्रतिष्ठित हो गई । रसिक मार्ग में समस्त मार्ग अंतर्भूत हो गए । आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहा । मानव-मन की उदात्त प्रवृत्ति का यह विकास सृष्टि के आध्यात्मिक इतिहास का सबसे मजबूत मनीहारी महामधुर सक्थी रससिन्धु अध्याय है । मनीषियों ने उसे भक्ति तत्त्व कह कर सम्बोधित किया है ।

सामान्यतया भक्ति का अपने से बड़ी के प्रति जो आदर और निष्ठा का भाव होता है उसी से तात्पर्य है परन्तु विशेष अभिप्राय से उस शब्द का प्रयोग ईश्वर विषयक प्रेम के अर्थ में किया जाता है । गरुड पुराण पूर्वः/231 में भक्ति की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है :-

भज इत्येष वै धातुः सेवार्था परिकीर्तितः ।

तस्मात् सेवा बुधेः प्रेक्षता भक्ति साधनमयसी ॥

भक्ति शब्द 'भज' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से बना है । 'भज' धातु के सेवा, विभाग, गौणवृत्ति भोग, अनुराग विशेष आदि कई अर्थ होते हैं । हिन्दी शब्द सागर में भक्ति के आराधना, सेवा, भजन, विभाग, विश्वास, उपचार, आश्रय अप्राप्ति, आराध्य देवता का नाम जपना तथा उसका बारबार स्मरण और ध्यान करना आदि अनेक अर्थ दिये हैं । उन सबसे यही भाव व्यक्त होता है कि अपने पूज्य पुरुष अथवा देवता के प्रति जो सहज निष्ठा सर्व आदरपूर्ण आसक्ति का भाव है वही भक्ति है । ईश्वर की सर्व शक्ति शालीनता जीव के प्रति उसकी कल्याण भावना और चिन्ता, अधिन्नता और आत्मीयता के परिपेक्ष्य में जीव की उसके प्रति निष्काम भाव से सहज सात्विक अनुरागमयी आसक्ति ही भक्ति है । परम तल्लीनता से उन परम उपस्य का दर्शन, भावना से सेवा और चिन्तन, नेत्रों से भगवत्प्रेमी संतों प्रभु स्वल्प प्रतिमाओं का दर्शन, मुख से अहर्निश उनका नामोच्चारण उनकी गुण

स्तुति और सुगुण संयुक्त चरित्रों का गायन, कीर्तन, श्रवण, चरणों से उनकी धाम-परिक्रमा और गुरु संतों की सेवा पूजा भक्तजनों की जीवन साधना के अंग कहे गये हैं । इन्हीं सब कारणों से भक्ति को ईश्वर से सर्वथा सम्बद्ध स्वीकार किया गया है । धर्मचिन्तकों और विचारकों ने भक्ति की निम्न प्रकार परिभाषाएँ की हैं :-

(क) शाङ्खिल्य भक्ति सूत्रकार ने 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' <sup>1</sup> कहकर ईश्वरमें अतिशय अनुरक्ति को ही भक्ति कहा है ।

(ख) नारद भक्ति सूत्र में भक्ति का लक्षण करते हुए कहा है, 'ईश्वर के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है । भक्ति अमृत स्वरूपा है जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध और तृप्त हो जाता है और किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता । न वह शोक करता है और न द्वेष करता है न किसी संपत्ति वस्तु में आसक्त होता है और न उस वस्तु से उत्साहित होता है विषय भागों के प्रति उसका कोई उत्साह नहीं रहता । आत्मनिन्द के साक्षात्कार से वह संपत्ति से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है ।' <sup>2</sup>

(ग) स्वामी रामानन्द जी ने श्री वैष्णव माताजी भक्तिकार में कहा है 'विद्वद्वद्वय-परम भक्ति रस-रसिक-महर्षि अनन्य भाव से तत्परता के साथ सर्वदा पुनः पुनः कल कपट प्रपञ्चादि से रहित परमात्मा की सेवा को ही भक्ति मानते हैं ।' <sup>3</sup>

(घ) श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने भक्ति रसायन में इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है 'धर्मबुद्धि पूर्वक भगवद्गुणों का आराधन करने से द्रवीभूत चित्त की अविच्छिन्न धारावाहिक तैल धारावत् भगवद् आकार वृत्ति ही भक्ति का लक्षण कहा जाता है ।' <sup>4</sup>

1- शाङ्खिल्य भक्ति सूत्र अध्याय 1 संख्या 2

2- अथातो भक्ति व्यख्यस्यामः (1) सा स्वस्मिन् परम प्रेम रूपा (2)

अमृत स्वरूपा च (3) यत्प्रपञ्चा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति, तृप्तो भवति (4) यत्प्राप्य न किञ्चिद्वैकल्यं न शोचति, न द्वेषति न रमते नोत्साही भवति (5) - नारद भक्ति सूत्र संख्या 2

3- उपाधि निर्मुक्त मनैक भेदकं भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम् ।

अनन्य भावेन नियम्य मानसं महर्षिमुख्ये भगवत्परत्वं श्री वैष्णव माताजी  
-भग का 65वाँ श्लोक ।

4- द्रुतस्य भगवद्बर्मादिवारावाहिकतां गतां सर्वेभ्यो नरोवृत्ति भक्तिरित्यभिधीयते ॥

-भक्ति रसायन मधुसूदन सरस्वती सूत्र -3

(ङ) गीता पर रामानुज भाष्य में भक्ति का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा है, पठितों के द्वारा स्नेहपूर्वक परमात्मा में ध्यान लगाना ही भक्ति कहलाता है ।<sup>1</sup>

(च) श्री मद्भागवत का ने भक्ति के स्वल्प की ओर संकेत करते हुए कहा है, मनुष्यों के लिये सबसे श्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान् कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की याचना न हो और जो नित्य निरंतर बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनंद स्वल्प भगवान् की उपलब्धि करके कृत कृत्य हो जाता है ।<sup>2</sup>

(क) महा प्रभुक्लमाचार्य जी ने भक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है, भगवान् में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह की भक्ति है । भक्ति का इससे सरल उपपन्न नहीं है ।<sup>3</sup>

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति को 'धर्म की रसत्मक अनुभूति' कहा है ।

(प) विष्णु पुराण में अविवेकी पुरुषों की विषयों में अविचल प्रीति जैसी भगवद् चरणारविन्द में अगाध और स्थिर निष्ठा भक्ति कही गई है ।<sup>4</sup>

(फ) श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती प्रणीत 'भक्ति रसमृतसिंधु किंदु' में भक्ति की परिभाषा की गई है 'भीम मोक्ष की वासना से रहित, जीव ब्रह्म के सक्तानुसंधान रूप ज्ञान से शून्य, स्मृति शास्त्रोक्त नित्य नैमित्तिक क्रियात्मक कर्म से परे और भगवद् ध्यान रहित योगादि से अनावृत अर्थात् ज्ञान कर्म, योगादि आवरणों से रहित श्रीकृष्ण को उद्देश्य करके उनकी रवि के अनुकूल शरीर मनवाणी से क्रियाओं का

1 स्नेहपूर्वकानुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुध्येः — रामानुज भाष्ये अध्याय 7, सूत्र 3

2- सवे पुसा पुराधर्मो यतो भक्तिरधीक्षजे ।

अहेतुक्यप्रतिहता यथा ऽऽसमा संप्रसीदति ॥ — श्रीमद्भागवत (1-2-6)

3- माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोधिकः ।

स्नेहो भक्ति रिति प्रोक्तस्तथा मुक्तिर्न चान्यथा ॥

— सम्प्रदाय दीप निबन्ध श्लोक 49, पृष्ठ 127  
ज्ञान सगर, बम्बई ।

4- या प्रीतिरविवेकानां, विषयेष्वनपापिनी

त्वमनुस्मरतः सा मे हृदयान्मपसर्युतु ॥ — विष्णु पुराण 1/20/19

- 5 -

अनुशीलन भक्ति है अर्थात्, जिन क्रियाओं से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हो उसका अनुशीलन ही ( उत्तमा ) भक्ति का लक्षण है ।<sup>1</sup> और भी अनेक आचार्यों ने अपने मतानुसार भक्ति के लक्षण किये हैं परन्तु उन लक्षणों के विश्लेषण स्वल्प हम निम्न तीन प्रवृत्तियों का सभी को अनुगमन करते पाते हैं ।

- 1- साधक का एक सर्वशक्तिमान, पूर्ण ज्योतिर्मय, अबलित विश्व नियन्ता एवं दयालु परमात्मा की सत्ता में विश्वास ।
- 2- उस परम कृपाय के प्रति साधक की अन्त्य श्रद्धा और उनके प्रति अविरल अखंड प्रेम ।
- 3- स्वानुस्यू भावना के कारण उपास्य के अवतारी विशेषकर मानव-अवतारी रूप के प्रति विशेष आकर्षण ।

अतः हमारी सम्मति में अप्राकृत इन्द्रिय द्वारा अप्राकृत ब्रह्म का अनुशीलन ही भक्ति है । विशेष स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं -

श्रद्धा से प्रेरित एवं प्रेम से पुष्ट विशुद्ध ईश्वर चिन्तन ही भक्ति है ।

यह सगुण ब्रह्म की रागात्मक अनुभूति है ।

सुख के पीछे दुःख, संयोग के पश्चात् वियोग, लाभ के अन्तर हानि और जन्म के बाद मरण सृष्टि का प्राकृतिक विधान है । यह इस ससार का शाश्वत नियम है । कल्याणकर भगवान् के पद पंक्त से विमुक्त जीवों को ससारिक सुख, संयोग लाभ और भौतिक उपलब्धियों की लालसा लगी रहती है । प्रारब्ध वश उनको सुखादिकी प्राप्ति भी हो जाती है किन्तु फिर सनतन परिपाटी के अनुसार उन्हें दुःख महोदधि में गिरना ही पड़ता है ।

सो परन्तु दुःख पावई, सिरधुनि धुनि पळिताइ ।

कालहि, कर्महि, ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाई । ।

(ससार में जो आज सुखी देख रहा है वह एक दिन परम दुखी भी दिखाई देगा क्योंकि-

सुख स्यात्तरं दुःखं, दुःखं स्यात्तरं सुखं

व्ययमेतार्द्धं जंतूनां, मलयं दिन रात्रिवत् ।

- 1- अन्या मिलाषिता शून्यं ज्ञानकमदियानवृतम्

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिः सत्तमा ॥ - भक्ति रसामृत सिन्धु  
भक्तिग्रन्थ माला पृष्ठ ।

- ६ -

सांसारिक सुख दुख से भिन्न भगवत्-सम्बन्धी को भी दुख-सुख होता है, परन्तु वह सांसारिक नहीं प्रेम-संज्ञक होता है। उस प्रेम की प्राप्ति के अर्थ भक्त को संसार से विपरीत मार्ग ग्रहण करना होता है। कुन्ती ने भगवान् से दुःख मांगा-सुख नहीं- क्योंकि दुःख में भगवान् का चिन्तन अधिकतर होता रहता है। सांसारिक महा बिषयक सुख सुख निरर्थक है - उसे धिक्कार है - क्योंकि उसमें पड़कर जीव प्रभु का विस्मरण कर देता है वास्तव में जब भगवत् भजन-स्मरण न करे पड़े वे ही महान् विपत्ति के दिन हैं। निरंतर प्रभु आराधन और भजन करने से भगवान् में आसक्ति होने लगती है। श्रद्धा की भावना दृढ़ होजाती है और प्रभु चरणों में अनुराग बढ़ने लगता है। कर्म इसमें बाधक नहीं साधक है। परन्तु श्रद्धा कर्म त्याज्य है क्योंकि उससे भूः भवः और स्वर्ग तीन ही लोकों का भोग प्राप्त होता है और निष्काम कर्म द्वारा आत्म शुद्धि होकर साधक मुक्ति का अधिकारी बनता है। निष्काम कर्म करने वाले साधकों के दो प्रकार हैं। एक हृदय प्रधान दूसरे मस्तिष्क प्रधान।

जो हृदय प्रधान साधक हैं उन्हें निष्काम कर्म करने से संसार से उपरामता होजाती है उसके सम्बन्ध सूत्र और बंधन सर्वथा शिथिल होकर उनकी साधु महात्माओं में प्रीति होजाती है। उनके संसर्ग से भगवत् कथाओं में श्रद्धा उत्पन्न होजाती है और भावद् गुणों में रति होजाती है जिससे भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। भक्ति ही अन्तिम साधन है उसे ही पराकाष्ठा या परा भक्ति कहते हैं। इसी से भगवत् चरणों में सच्चा प्रेम उमड़ने लगता है। यह प्रेम ही परमतत्त्व है। गोस्वामी तुलसीदास जी इस ओर इंगित करते हैं :-

पन्नगारि नहिं प्रेम सम, भजन न दूसर जान ।

यह विचारि पुनि पुनि मुनी, करत राम गुन गान । रा०च०मा०  
इस प्रेम से प्रभु की प्रतीति होती है और प्रतीति से प्रभु कृपा को उपलब्धि जो साधना का चरम लक्ष्य है।

जो मस्तिष्क प्रधान साधक हैं उन्हें निष्काम कर्मों द्वारा आत्म शुद्धि होकर भगवद्भक्ति की प्राप्ति होती है। तदनन्तर संसारी विषयों से वैराग्य होता है, वैराग्य से ज्ञान की इच्छा उत्पन्न होती है और ज्ञान के द्वारा वे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। मुक्ति ही प्राणायाम मात्र का चरमलक्ष्य है। यही जीवों की एक मात्र साध्य वस्तु है। इसलिये मुक्ति और भक्ति का प्रधान हेतु निष्काम कर्म है यहाँ पर प्रश्न यह उपस्थित

१ जाने विनु न होइ परतीति, विनु परतीति होइ नहिं प्रीति ।

रा०च०मा० उत्तर काण्ड ८८ दोहा, पृष्ठ ५३७

होता है कि प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए और संसार में अनवर्त्त रूप से रत रहते हुए तो जीव का स्काम होना ही सहज संभव है । निष्काम कर्म की साधना कठिन और दुर्लभ है । सांसारिकों को रुचिकर और अनुकूल भी नहीं है । गीता शास्त्र में इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि "स्काम भाव से विदित-कर्म का अनुष्ठान करने के पश्चात् साधक को ईश्वर भाव से प्रीत्यर्थ निष्काम कर्मयोग का अध्ययन करना चाहिये । उस उपासना के द्वारा सिद्धि प्राप्त होजाने पर गीता में उपदिष्ट सन्यास ज्ञान के अवलम्बन की किसी किसी को आज्ञा (गीता में ) दी गई है । उसके सिद्ध होजाने पर स्वभावतः भगवत्सम्बन्धिनी पराभक्ति का उदय होता है ।

ज्ञान और भक्ति - ऊपर कहा जा चुका है कि मस्तिष्क प्रधान साधक ज्ञान के द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु श्रीमद्भागवत् गीता में ज्ञान शब्द से सांख्य ज्ञान ( वैराग्य और आत्मानात्म विवेक ) ज्ञान योगेन सांख्यानाम् ) मात्र का तात्पर्य नहीं लिया जाता । यह भक्ति के अनुकूल ( भक्ति संयुक्त ) भावत् ज्ञान है । गीता के १३ वें अध्याय के ७ वें श्लोक से लेकर ११ वें श्लोक तक इसे सविधा स्पष्ट कर दिया गया है ।

भगवान् कहते हैं, "अमानित्व, अदाधिकत्व, अहंसा, क्षमा, सरलता गुरुसेवा, शौच ( शारीरिक और मानसिक सदाचार ) धीरता, वहिर्मुखीन वृत्तियों का संयुक्त इन्द्रियों के योग्य बिषयों के प्रति वैराग्य, अहंकार त्याग, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि, और दुःख जीवन धारण के इन अनिवार्य दोषों की बार बार आलोचना स्त्री-पुत्र-गृह आदि में आसक्ति शून्यता, इष्ट और अनिष्ट में सदा एक भाव से रहना । मेरे ( भगवान् के ) प्रति एकनिष्ठ अचला भक्ति, निज स्थान में निवास करने की

अमानित्वमदम्भित्वमहंसा क्षान्तिराजवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदशनम् ॥ ८॥

आसक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वं मिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९॥

मयि चानन्ययोधेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेश सेवित्वमरतिर्जन संसदि ॥ १० ॥



-८-

हच्चा, अनेक जन समाज में अरुचि, आत्म ज्ञान में सदा निष्ठा, तत्त्व-ज्ञान का प्रयोजन केवल मोक्षा लाभ के लिए है। इस बिषय की आलोचना में रत रहना- ये सभी शब्द ज्ञान शब्द के ~~स्व~~वाच्य हैं। इनका अभाव होने पर उसे अज्ञान कहते हैं। वास्तव में जि: भगवत् ज्ञान हुआ है उनमें यह सब लक्षणा विद्यमान रहेंगे, उनके मान और अपमान का बो लुप्त हो जायगा, बिषयियों का संसर्ग अच्छा नहीं लगेगा, अयोग्य बिषयों के प्रति अन्यादर होगा, स्त्री पुत्र आदि में आसक्ति नहीं रहेगी। जिसमें ये सब बातें नहीं, सम्पन्ना चाहिये कि उसके भीतर वास्तविक ज्ञान का उदय नहीं हुआ है, उसने केवल केवल बाहर की बात ही लिखी है, ज्ञान उसके, अंत-करण में प्रविष्ट नहीं हुआ है<sup>१</sup>।

भगवद्गीता में लिखा है, जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक मेरा ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है वही व्यक्ति मुझ में प्रविष्ट होता है। अतः भक्ति मार्ग में उपास्य का ज्ञान साधक रूप से कार्य करता है वह इस दिशा में बाधक नहीं है। ज्ञान विना मुक्ति हो ही नहीं सकती<sup>३</sup> ऐसा दार्शनिकों का मत है। इसमें यथेष्ट तथ्य भी है। भक्ति प्राप्त करने के निमित्त ज्ञान एक उपाय मात्र है। परन्तु गीता की उक्ति के अनुसार कहीं लोगों के मन में यह मिथ्याधारणा उत्पन्न न हो जाय कि भक्ति सम्भवतः उपाय है और लक्ष्य ज्ञान है इस कथन की महर्षि शांढिल्य ने विशदरूप से व्याख्य की है। भक्त्या मामभिजानाति श्लोक में अभि का अर्थ उन्होंने - फिर सम्यक् रूप से व्यवस्थित किया है। अभिज्ञान शब्द का अर्थ है - जो पहले जाना या पहचाना हुआ है उसे फिर से जानना। भक्ति में ज्ञान सम्पूर्णता को प्राप्त होता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता को प्रेमी और प्रेम पात्र को परिचित भर कर देता है। उन्हें वह स्वी मूल करने में समर्थ नहीं हो पाता। ज्ञान जिसकी सूचना करता है, जिसका सूत्रपात करता है, भक्ति उसे सुसम्पन्न कर देती है। ज्ञान स्वरूप (लक्षणा) का परिचायक है भक्ति निरंतर अनुरागमयी चिंता की प्रेरणा है। मुक्ति और भक्ति - आचार्य शंकर ने ज्ञान के द्वारा अविद्या के बंधन को दूर करके जीवात्मा से ब्रह्म के सम्मिलन को मुक्ति कहा है। यह

१ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थं दर्शितम् ।

स्तज्ज्ञानमिति प्रोक्तं मज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ श्रीमद्भगवद्गीता अ० ११, श्लोक १३

२ भक्त्या मामभिजानाति यावन् पश्चामि तत्त्वतः

ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ श्रीमद्भगवद्गीता अ० १८ श्लोक ५५

३ कृते ज्ञानान्न मुक्तिः । प्रज्ञानं ब्रह्म ( स्तरेय उपनिषद् १।५।३ )

- १० -

हान्दोग्य उपनिषद् में मुक्त पुरुषों का लक्षणा करते हुए कहा गया है कि जीवात्मा का माया से मुक्त होना ही मोक्षा की दिशा में प्रत्यागमन है । वही आत्मा के आठ गुणों का उल्लेख किया गया है जो इन पुरुषों में पाये जाते हैं - वे हैं : -

- १- पापशून्य - आत्मा माया की अविद्या आदि पाप प्रवृत्तियों से तनिक भी सम्बन्धित नहीं है ।
- २- विजर - आत्मा जरा धर्म से रहित है । सदैव स्क रस रहता है, अर्थात् नित्य नूतन है ।
- ३- विमृत्यु - आत्मा की कभी विनाश नहीं होता । वह मृत्यु शून्य है ।
- ४- विशोक - वह ( आत्मा ) प्रत्येक स्थिति में शोक रहित है और सर्वथा शान्त और स्थिर रहता है ।
- ५- विजिघत्स - वह भोग विलास की वासना से रहित है अर्थात् प्रियतम की सेवा के, अतिरिक्त उसे कोई अन्य कामना नहीं है ।
- ६- अपिपास - ईश्वर के अतिरिक्त आत्मा को किसी दूसरे की अभिलाषा नहीं है ।
- ७- सत्काम - सत्य स्वरूप भगवान् श्री कृष्ण की सेवा परायणता ही आत्मा की प्रमुख कामना है । अतः वह सर्वथा निदोष है ।
- ८- सत्य संकल्प - आत्मा के सभी मनोरथ सिद्ध होजाते हैं । वह जो कुछ भी संकल्प करती है वह अवश्य पूर्ण होता है ।

माया छूट जाने पर जीव में उक्त आठ लक्षणाओं का प्रवेश होता है । वह जीव में ये लक्षणा नहीं पाये जाते ।

~~जो-कुछ-भी-संकल्प-करे~~ जीव के माया मुक्त होने के लिए सत्संग की परम आवश्यकता है । श्रीमद्भागवत् में भगवान् ने स्वयं आदेश किया है कि वे सांख्यज्ञान योग, स्यातधर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, सन्यास, यज्ञ, तीर्थ भ्रमण और यम नियमादि से साधकों के उतने वशीभूत नहीं होते जितने सत्संग से क्योंकि जिस व्यक्ति का जैसा संग होता है उसमें वैसे ही गुणों का समावेश होजाता है । साधुसंग समस्त कल्याणों का मूल है जिन्हें

१- जैवधर्म- पृष्ठ ३५३ श्री मन्महाप्रभु की शिक्षा से उद्धृत ।

२- न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्मं स्व वा ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा ॥

व्रतानि यज्ञाश्चन्दसि तीर्थानि नियमा यमाः ।

यथावद्व्ये सत्संगः सर्वसंगपहा हि माम् ॥ श्रीमद्भागवत् ११।१२।१-२

- १० -

छान्दोग्य उपनिषद् में मुक्त पुरुषों का लक्षणा करते हुए कहा गया है कि जीवात्मा का माया से मुक्त होना ही मोक्षा की दिशा में प्रत्यागमन है । वही आत्मा के आठ गुणों का उल्लेख किया गया है जो इन पुरुषों में पाये जाते हैं - वे हैं :-

- १- पापशून्य - आत्मा माया की अविद्या आदि पाप प्रवृत्तियों से तनिक भी सम्बन्धित नहीं है ।
- २- विजर - आत्मा जरा धर्म से रहित है । सदैव स्क रस रहता है, अर्थात् नित्य नूतन है ।
- ३- विमृत्यु - आत्मा को कभी विनाश नहीं होता । वह मृत्यु शून्य है ।
- ४- विशोक - वह ( आत्मा ) प्रत्येक स्थिति में शोक रहित है और सर्वथा शान्त और स्थिर रहता है ।
- ५- विजिघत्स - वह भोग विलास की वासना से रहित है अर्थात् प्रियतम की सेवा के, अतिरिक्त उसे कोई अन्य कामना नहीं है ।
- ६- अपिपास - ईश्वर के अतिरिक्त आत्मा को किसी दूसरे की अभिलाषा नहीं है ।
- ७- सत्काम - सत्य स्वरूप भगवान् श्री कृष्ण की सेवा परायणता ही आत्मा की प्रमुख कामना है । अतः वह सर्वथा निदोष है ।
- ८- सत्य संकल्प - आत्मा के सभी मनोरथ सिद्ध होजाते हैं । वह जो कुछ भी संकल्प करती है वह अवश्य पूर्ण होता है ।

माया छूट जाने पर जीव में उक्त आठ लक्षणाओं का प्रवेश होता है । वद जीव में ये लक्षणा नहीं पाये जाते ।

~~जो-कुछ-भी-संकल्प-करत~~ जीव के माया मुक्त होने के लिए सत्संग की परम आवश्यकता है । श्रीमद्भागवत् में भगवान् ने स्वयं आदेश किया है कि वे सांख्यज्ञान योग, स्यातधर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, सन्यास, यज्ञ, तीर्थ भ्रमण और यम नियमादि से साधकों के उतने वशीभूत नहीं होते जितने सत्संग से क्योंकि जिस व्यक्ति का जैसा संग होता है उसमें वैसे ही गुणों का समावेश होजाता है । साधुसंग समस्त कल्याणों का मूल है जिन्हें

१- जैवधर्म- पृष्ठ ३५३ श्री मन्महाप्रभु की शिक्षा से उद्धृत ।

२- न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्मं स्व वा ।

न स्वाध्यायस्तपस्तयागो नैष्टापूर्त न दक्षिणा ॥

व्रतानि यज्ञाश्चन्द्रांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।

यथावदन्धे सत्संगः सर्वसंगापहा हि माम् ॥ श्रीमद्भागवत् ११।१२।१-२

‘सृष्टि’ कहते हैं । भक्ति प्रवर्तक और अवान्तर फल प्रवर्तक सृष्टि के दो प्रकार हैं ।  
नित्य नैमित्तिक कर्म और सांख्यादि ज्ञान ये सब अवान्तर फल देने वाली ‘सृष्टि’ है ।  
ब्रह्म ज्ञान सम्बन्धी सृष्टि मुक्ति फल की दाता है । अन्य शुभ कर्म प्रेरक सृष्टि दान भोग आदि  
फल प्रदान करने में समर्थ है । इन दोनों प्रकार की सृष्टियों का परिणाम भक्ति फल  
दान नहीं है । भक्ति प्रवर्तक सृष्टि न तो सत्संग, निष्काम कर्म योग, साधु भाव उत्पन्न  
करने वाली दैनिक चर्या, प्रभु चिंतन, तीर्थ दर्शन, महाप्रसाद सेवन आदि दिव्य सुकर्मों से  
प्राप्त होती है । जीवात्मा में जब सब प्रकार की निर्लेपता, अनन्यता, भगवान से तादात्म्य  
की प्रवृत्ति और पुण्य कर्मों की निरंतर निगूढ़ता का सदाग्रह पल्लवित होता है तब भक्ति  
प्रवर्तक सृष्टि का प्रारम्भ मानना चाहिये ।

वैष्णव भक्त कवियों ने मुक्ति और भक्ति का निरूपण करते हुए  
उनकी अन्योन्याश्रयता का सुंदर वर्णन किया है । ~~उन्हे~~ अनुसार जीव ईश्वर का अंश और  
~~अनित्य~~ है जो सहज निष्कलंक और चैतन्य है । माया के वशीभूत वह सांसारिक बंधनों में  
पड़कर पालतू पशु पक्षियों की भांति कष्ट भोगता रहता है । संसार के सभी (प्राणी)  
जड़ और चेतन उस माया की ग्रंथियों में बंधे हुए निरंतर महान कष्ट भोगते रहते हैं शास्त्र  
सम्मत उपायों द्वारा उस ग्रंथियों काटने का उपाय नहीं करते । अतः और अधिक उलझते  
जाते हैं क्योंकि जीव के हृदय में मोह रूपी अंधकार उसे सत्मार्ग पर नहीं जाने देता । दूसरा  
कारण यह भी है कि माया के बंधन से मुक्ति का एक मात्र उपाय भगवद् कृपा है जो केवल  
संयोग की बात है । जोसाधक जप, तप, व्रत, यम, नियम की साधना वेद, स्मृति पुराणादि  
का अनुशीलन करते हुए धर्माचरण में रत रहते हैं उनमें भगवद् कृपा प्रेरक भाव उदय होते हैं  
और प्रभु चरणों में अटल विश्वास उत्पन्न होता है । संतोष, क्षमा, धैर्य और वासनाओं  
के दमन की प्रवृत्ति के साथ मन आल्हाद-पूरित होता है । संतोष, सतोवृत्ति और आनंद  
का मूल है उसके विना जीव को विश्राम कहाँ । <sup>२</sup> सन्तोष, से सांसारिक बिषयों से निवृत्ति  
मिलती है और प्रपंच दूर होते हैं और वैराग्य की प्रधानता हो चलती है ।

१ भाव वस्य भगवान, सुख निधान करुना भवन ।

तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीतावरन ।

रा०च०मा०उत्तर काण्ड ६२(ख)

२ कोठ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोषा विनु

चलै कि जल विनु नाव, कोटि जतन पचिर मरिय

रा०च०मा० द०का० ५६(ख)

वैराग्य योग का कारण है जो समस्त साधनाओं का जनक है । उससे ममता कोसी दूर भग्न जाती है । योग से सभी शुभाशुभ कर्मों का विनाश होता है । वह ममता की मलीनता दूर कर देता है । योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से विज्ञान रूपिणी बुद्धि की । विज्ञान रूपिणी बुद्धि समस्त चराचर में समता की दृष्टि उत्पन्न करती है और उससे सो हमस्मि (वह ब्रह्म मैं हूँ) की अलक्ष्यवृत्ति अपने यथार्थ स्म में अत्मानुभव के (सुख के) सुन्दर प्रकाश से भेद रूपी भ्रम का नाश कर देती है । इससे समस्त चलवती अविधाओं और मोह का निवारण हो जाता है तथा जड़ चेतन की हृदय ग्रंथि खुलने लगती है । माया की इस ग्रंथि के खुलने से जीव सर्वथा कृतार्थ हो जाता है जो मथा को सहन नहीं होता । मथा कृधि सिद्धियों के माध्यम से बल और बल द्वारा पुनः ज्ञान रूपी दीपक और विज्ञान रूपी दीप शिखा को बुझाने का प्रयास करती है । जीव मात्र की इन्द्रियां सभी अनेक द्वार हैं और शरणा हैं जहाँ पर देवगण अड्डा जमाकर बैठे हैं वे मथा कि क्रिया प्रक्रियाओं के सहायक बनकर जीवत्मा के हृदय में प्रविष्ट ज्ञान-विज्ञान की विषय चीजों के प्रति शास्वत प्रीति उत्पन्न काके नष्ट कर देते हैं । इसके परिणाम स्वरूप जीव पुनः जन्म मरण के क्लेश में पड़ जाता है । आवगमन के बंधन से उसका पीका नहीं छूटता ।<sup>1</sup>

इससे एक और भारी कठिनाई भी है । ज्ञान की साधना बहुत दुस्तर और दुःसाध्य है । जिससे व्युत्त होने में तनिक भी देर नहीं लगती जो निर्विघ्न निरामद रहता हुआ इस मार्ग पर चल लेता है वह मोक्ष स्म परमपद को प्राप्त करता है । यह मोक्ष पद बड़ा ही दुर्लभ है । परन्तु भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वालों को यह बखस प्राप्त होता है ।<sup>2</sup> भक्ति मोक्ष की आधार शिला है । जब तक भक्ति न होगी मुक्ति स्थिर-अविचल न रह सकेगी । भक्ति है तो मुक्ति भी है । भक्ति नहीं तो मुक्ति भी नहीं दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । इस प्रकार की स्थिर धारणा बनस हुए चतुर लोग मुक्ति को भक्ति का प्रतिफल मानते हैं और उसको विशेष महत्त्व नहीं देते । भक्ति का एक लम्बा प्रशस्त मार्ग है जिस पर चलने वालों को अनेक बड़े बड़े लाभ होते हैं । उन अनेक और विशिष्ट लाभों में से मुक्ति तो एक छोटा सा लाभ है । गेस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि भोजन सुखाद और अपनी क्षुधा की तृप्ति के लिए करते हैं परन्तु जठराग्नि द्वारा भोजन के पाचन की प्रक्रिया द्वारा उससे विविध रस-रक्त मज्जा, मसि आदि बनकर शरीर को पुष्ट एवं सुन्दर बनाते हैं ठीक इसी प्रकार भक्ति साधना से होने वाले अनेक महान

1- रामचरित मानस उत्तर काण्ड दोहा संख्या 118

2- रामचरित मानस उत्तर काण्ड दोहा संख्या 119



-१४-

भक्ति की आधार भूमि और क्रम विकास :- आराध्य में निष्ठा भक्ति का मूल है । वह पहले श्रद्धा का रूप धारण करती है और कालान्तर में विकसित होती हुई भक्ति और प्रेम में परिणित होजाती है । श्रद्धा और भक्ति दोनों में ही भक्ति भाजन के प्रति समर्पण की भावना रहती है परन्तु श्रद्धालु उनके प्रति महत्व को स्वीकार करता हुआ भी उनके जीवन के अनुकरण का प्रयास नहीं करता और न उनके जीवन क्रम को अपने जीवन में उतारने को ही चेष्टा करता है । भक्त अपने भक्त भाजन में अनुरक्ता का अनुभव करता है और गुणों का ग्राहक बनकर निरंतर सामीप्य का आकांक्षी होता है । उसे अपने दास्यता का परिज्ञान होता है<sup>१</sup> और उस आदर्श में उसे अपने कर्मों का प्रतिबिम्ब ज्यों का त्यों दिखाई देने लगता है । इसका परिणाम यह होता है कि भक्त अपनी जीवन चर्या के एक अलौकिक आदर्श मय मूर्त रूप को भक्ति भाजन में अनुभूति करता है । और उसके रूप विधान के साक्षात्कार के लिए उसकी आत्मा आकुल और अधीरहोकर तड़पती रहती है । मीरा<sup>२</sup> की साधना में सभी को इसी विशाल तड़पन की अनुभूति होती है । अतः सामीप्यलाभ की आकांक्षा और साक्षात्कार के लिए तीव्र आकुलता भक्ति की आधार शिला है । भक्ति में प्रेम की प्रधानता रहती है । प्रेम के लिए व्यक्ति - सम्बन्ध पहली शर्त है । हम हाड़ मांस से बने, हमारी ही भांति हंसने बोलने वाले, खेलने और राने , गाने वाले अलौकिक ऐश्वर्य-माधुर्य और अनन्त तेजों राशि आदर्श मानव गुणों से पूर्ण मानव अवतारो महान शक्ति को ही अपने प्रभु सर्वथा आराध्य, अनन्यतम आश्रयदाता और कल्याणकारी विभु रूप में ग्रहण कर सकते हैं । विशाल विश्व विधान का मनुष्य एक शुद्ध चेतन अंश है । अतः सृष्टि क्रम में दामा , दया दाक्षिण्य, प्रेम वात्सल्य और धर्म अधर्म की जो व्यापक परिव्याप्ति है मनुष्य उन सभी अनन्त भावों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करता है और अपनी रुचि और साधना के विषय बनाता है । यह अपनी समष्टि और सुख संतोष का प्रयत्न मात्र होता है । अन्तःकरण की सभी वृत्तियाँ सार्थक होती हैं जिनको लोकादर्श पूर्ण चरितों से पोषाण मिलता है । आर्तक कारी, भीषाण एवं घृणास्पद व्यापारों से हम निवृत्ति की ओर जाते हैं, लोक

१ रामते बड़ो है कौन मोते को न छोटी ।

राम ते खरो है कौन मोते को न खोटो ।।

तुलसीदासकृत विनय पत्रिका पद संख्या ७२

२ चिंतामणि - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - श्रद्धा और भक्ति , पृष्ठ ३४

-१५-

रक्षाक, और असुरों के विनाशक भगवान के रूपों पर हम मुग्ध होते हैं। रामलक्ष्मण की विश्वामित्र के साथ जाती हुई जोड़ी हमारा प्राणाधार है। अक्रूर के साथ मथुरा गमन करने वाले अनेक असुरों सहित कंस के विनाशक कृष्ण बलराम के शील-लावण्य पर हम बार बार बहिराहारी जाते हैं। रावण मेघनाथ का दम्भ, देव रमणियों और देवताओं को अकंपित करनेवाली गजना और समग्र पृथ्वी मण्डल को भयातुर करनेवाली उनकी मारकाट हमें उनकी ओर से विक्रमिका का कारण बनती है और प्रभु की अकारण असीम कृपा का हमें बोध कराती है। मनुष्य अपने में अंशी का अधिक अंश समझता है और अपने को उस सवत्मा का अधिक अंश मानता है विश्वविधान जिसकी नित्यक्रिया है। हम अपने स्थिति रक्षा सम्बन्धी भावों को परमावस्था पर पहुँचाकर उस परमभाव मय की भावना करते हैं और उसके धर्ममय, प्रेममय और दयामय की अनन्त लीलाओं की अवधारणा करते हुए चित्त वृत्तियों के सब ओर से निरोध द्वारा उस पावन प्रकाशमय में अंतर्भूत होने की दिशा में अग्रसर होते हैं। अनुभूति का इसमें सबसे बड़ा हाथ होता है। उसी पर प्रवृत्ति और निवृत्ति निर्भर रहती है। अतः भक्ति मार्ग में व्यक्ति संस्वध युक्त जीवन-दर्श का अनुकरण सबसे पहली और मुख्य बात है क्योंकि अनुभवात्मक मन को आकर्षित करने वाले तो आश्रय और परिणाम हैं। आश्रय और परिणामों के माध्यम से गुणों की अनुभूति होती है। अनुभूति के अनुसार हम उपादानों को ग्रहण करते हैं और उनका परित्याग करते हैं। पाप और अन्याय के समूलोच्छेदन परक भगवान् के चरित्र और लोक रक्षा के कार्य के उपादान हैं जिन परक आकर्षित होते हैं रोकिते हैं और उनके सामीप्य लाभ की वांछा करते हैं। उन चरित्रों का स्मरण, गायन और कीर्तन उस सामीप्य लाभ के ही विधान हैं। स्मरण के द्वारा हम अपने इष्ट देव के कार्य क्षेत्र को अपने अंतःकरण के सामने लाने का प्रयास करते हैं। उनके विविध नामों के कीर्तनों द्वारा हम उनकी लीलाओं के अनुगामी बनकर एक सात्त्विक लोक में पदार्पण करते हुए उनके चरित्रों के अनुकरण की दिव्य अनुभूति करते हैं।

१ मानुषा हों तो वही रसखान वसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जो खग हों तो कहा वस मेरी चरों नित नन्द की धेनु मंफारन ॥

रसखान पदावली- सवैया संख्या ६६



-१६-

इसी प्रकार सेवा के अन्य विधि-विधान भी भगवान् के सामीप्य लाभ और उनके साक्षात्कार की अन्य विधियाँ हैं। उनका दृष्ट संस्कार और अधम उद्धाररूप हमें लोक संग्रह में प्रवृत्त करता है उनके शील सौन्दर्य की भाँकी उनकी विभूतियों के अधिकतम साक्षात्कार की पग दण्डियाँ हैं। अन्याय और अत्याचार से लोहा लेना भगवान् के दया दाक्षिण्य के लिए समुचित जीत्कार है। रामलीला, रासलीला, हरिकथा श्रवण आदि उनके सामीप्य लाभ के विधान हैं जिनसे उपासक अपने उपास्य से अनेक सम्बन्ध जोड़ता है। जन्म जन्मातरों तक उन सम्बन्धों को दृढ़ बनाये रहने की कामना करता है। भक्तवर रसखान के आत्मनिवेदन में इसी कामना की भूरि भूरि अनुभूति देख पड़ती है। लोक मंच पर भावद् लीला और चरित्रों के प्रसार के प्रयास हमारी जीवन धारणा की अभिलाषा और उन लीलामय में हमारी अनुरक्ति और उनकी शरणागत वत्सलता में सहज विश्वास के आधार बन जाते हैं। उनकी नवधा भक्ति के अपूर्व आनन्द को कभी जन जन तक पहुँचाने की ये सामाजिक चेष्टाएँ हैं।

भक्ति जीव मात्र का परम धर्म और शरीर धारणा की साथकता है। जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र को ओर बहता रहता है उसी प्रकार भगवान् के गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का अविच्छिन्न रूप से उस सवान्तिरयामी के प्रति होजाना और उनमें निष्काम अनन्य प्रेम होना सच्ची निष्काम भक्ति का लक्षण है। ऐसी निष्काम भक्ति प्राप्त होने पर साधक उन प्रभु के चरणारविन्दों को छोड़कर सालोक्य, साष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सामुख्य मोक्षों को भी स्वीकार नहीं करता। भावत् सेवा निमित्त भक्ति का निराकार करने वाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लांघ कर भगवान् के प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त होजाता है। निष्काम भावसे अपने नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन कर, नित्य प्रति हिंसा रहित उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, भगवान् की प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजन, स्तुति, वंदना करने

१ मद्गुणाश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये । मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोज्ज्वली ॥१०॥

लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।

अहेतुत्रयव्यवहृता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १६॥

सालोक्यसाष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत । दीपमानं न गृहन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥१३॥

श्री मद्भागवत् सोप ३ अ० २६, श्लोक १०-१४

- १७ -

प्राणियों में उन प्रभु की भावना करने, धैर्य वैराग्य का अवलम्बन, महापुरुषों का मान, दीनों पर दया और समान स्थितिवालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम-नियमों का पालन, अध्यात्मशास्त्रों का श्रवण और उन प्रभु के नामों का उच्च स्वर से कीर्तन करने से तथा मन की सरलता सत्पुरुषों के संग और अहंकार के त्याग से भागवत धर्मों का अनुष्ठान करने से भक्त का हृदय शुद्ध होकर वह उनके गुणों के श्रवण मात्र से अनायास ही उनमें लग जाता है । जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़कर जानेवाली गन्ध अपने आश्रय पुष्प से घ्राणोन्मिद्रय तक पहुँच जाती है उसी प्रकार भक्ति योग में तत्पर और राग द्वेषादि विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।<sup>१</sup>

१ निष्कलितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महोयसा ।

क्रियायोगेन शस्तेन नाति हिंसेण नित्यशः

यथावातस्था घ्राणमावृद्धो गन्ध आशयात् ।

एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥

श्रीमद् भागवत् सोध ३ अ० २६, श्लोक १५ से २० तक ।

## द्वितीय-अध्याय

### भक्ति के भेद

भक्ति एक रागात्मिकावृत्ति है । परम प्रभु परमात्मा में राग का उत्पन्न होना भक्ति का सूत्रपात है । सांसारिक बिणयों से मन को निवृत्त करके भगवद्भक्त संग रूपी स्पर्श सुख में मन को निरत करना भक्ति का परम काम्य है । बिणयक वैराग्य का अवलम्बन करके दशों इन्द्रियों की बाह्य दृष्टि को लुप्त करके ऐहिक और पारत्रिक समस्त बिणयों से निस्पृह होजाय, ऐहिक वासना का समूलोच्छेदन करके संसार के मायिक पदार्थों की ममता त्याग दे तथा माया की उत्पत्ति के पुनः-कलत्र, कन्यादि जो कारण हैं उन सब की छाया तक को भी वर्जित करके आकुलता पूर्ण भाव से चातक की भाँति<sup>१</sup> हृदय में व्याकुल होकर भावमय भगवान् को मनोमय करके पूर्ण रूपेण प्रभु में समर्पण उनकी सेवा में अनुराग-भक्ति का लक्षण है । इस प्रकार भक्ति साधन से साध्य की ओर प्रवर्तित होती है । साधन से साध्य तक पहुँचने की क्रम व्यवस्था को १ साधन भक्ति २ भाव भक्ति और ३ प्रेम भक्ति रूप भक्ति तीन भागों में विभाजित किया गया है । साधन भक्ति का लक्षण करते हुए कहा गया है कि ' जो साधक भक्त के व्यापार से सिद्ध हो सकने वाली हो और जिसके द्वारा भाव रूपा भक्ति की सिद्धि हो सकती हो उसे साधन भक्ति कहते हैं<sup>२</sup> । साधन भक्ति स्वयं कृति साध्या होती है और उसके द्वारा ' भाव-रूपा' भक्ति की सिद्धि होती है । साधन भक्ति की सिद्धि जिन कार्य और व्यापारों से होती है वे सब पूर्व कृतियाँ भी उस भक्ति के अन्तर्गत समझी जाती हैं । भक्ति में रुचि हुए बिना मनुष्यों की उस ओर प्रवृत्ति नहीं होती इस कारण इन प्रारम्भिक कृतियों को भी भक्ति साधन भक्ति का अंग मानते हैं । साधन भक्ति साध्य साध्या है क्योंकि वह साध्य भक्ति की ओर प्रवृत्त करती है ।

१ ' सर समुद्रनथादीन विहाय चाखकी यथा ।

विहाय भ्रियतेवापी याचते वा पयोधरम्

२ सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमाचेति त्रिविदिता ।

कृति साध्या भवेत् साध्यमावा सा साधनामिवा ॥१॥

भक्ति रसामृतसिंधु, पूर्व विभाग, साधनलह श्लोक १

-१६-

जीव का ईश्वर के प्रति जो प्रेम होता है वही जीव का स्वाभाविक नित्य धर्म है। वही वास्तविक साध्य वस्तु है। जीव की माया मोहित दशा में यह प्रेम तटस्थ लक्षण में पाया जाता है। उस समय वह अपने स्वरूप लक्षण में उदित नहीं होता। भगवत नाम स्मरण, कथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि साधन करते करते प्रेम पहले तटस्थ रूप में फिर प्रत्यक्षा रूप में प्रकाशित होता है अतः साधन की परम आवश्यकता है।

उपासक या भक्त की भावनावर्णों को दृष्टि में रखते हुए भक्ति के ३ भेद किये गये हैं। वे हैं - १ श्रद्धा भक्ति २ भावना भक्ति ३ शुद्धा भक्ति। उपास्य के प्रति निष्ठा और समर्पण का भाव श्रद्धा भक्ति के अंतर्गत है। इसमें उपास्य की वंदना, सेवा अर्चना, स्तुति गायन और हार्दिक प्रार्थना की आवश्यकता होती है। जो कालान्तर में हमें समस्त विश्व के पदार्थों में भगवान् की सत्ता और भगवान् की सत्ता का विश्व के पदार्थों में आभास कराती है। समस्त पदार्थों से हटकर हम एक प्रभु की सेवा करने का प्रयत्न करते हैं जिससे हमारे कार्यों में गहरी स्कान्त भावना की अनुभूति होती है - हम भगवत तादात्म्य की ओर चलने लगते हैं यह 'भावना भक्ति' है। भावना भक्ति दृढ़ होकर कालान्तर में अपने आराध्य देव के निर्गुण या सगुण रूप में स्थिर होजाती है। उसे अवतार रूप में भी देखते हुए उसके प्रति अविरल प्रेम को धारण करते हैं। यह प्रेम 'शुद्धा भक्ति' कहलाता है। इस प्रकार भगवान् के प्रति सामान्य निष्ठा या श्रद्धा से उपासक शुद्धा भक्ति तक पहुँच जाता है। स्वामी विवेकानंद जी ने अपने भक्ति योग नामक ग्रन्थ में भक्ति की उक्त तीन अवस्थाओं का श्रद्धा, प्रति तथा तदीयता नामकरण किया है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भक्ति प्रसंग में चार प्रकार के भक्तों की चर्चा की गई है यथा अध्याधीर्, अति, जिज्ञासु और ज्ञानी। ये भगवद् भक्त में अपने अपने प्रकार से संलग्न रहते हैं। इनमें से अध्याधीर् सांसारिक पदार्थों की उपलब्धि और

1. The Bhakti cult in ancient India Bhagwat kumar  
Page. 3.

2. " " " " Page 12  
Bhagwat kumar.

सांसारिक सफलता के लिए अति सांसारिक क्लेशों के निवारण के निमित्त , जिज्ञासु यथार्थ रूप से उन प्रभु को जानने की इच्छा तथा ज्ञानी भक्त जन्म-जन्मान्तरों के अंत में तत्त्वज्ञान को प्राप्त होता हुआ सब कुछ भगवान् ही है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं इस प्रकार प्रभु का अनन्यता से भजन करता है । ज्ञानी वास्तव में दुर्लभ है । भजनशील ज्ञानी ही भगवान् का सबसे प्रिय कहा गया है । गीता के १३ वें अध्याय के ७ वें श्लोक से लेकर ११ वें श्लोक तक ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति की गई है । उस ज्ञान को धारण करने वाला ज्ञानी संज्ञक भक्त है । ज्ञान से गीता का तात्पर्य है 'अमानित्व' प्रभुति के साथ भोग बिषयों से वैराग्य - पुत्र दारा गृह आदि में वासक्त शून्यता , इष्टानिष्ट के बिषय में समता , अध्यात्मज्ञान निष्ठा, मोक्ष की नित्य आलोचना , निर्जन स्थान में रहने का आग्रह और भगवान् के प्रति स्कान्तिकी भक्ति यही ज्ञान की पूर्ण अभिव्यक्ति और व्युत्पत्ति है ।<sup>१</sup>

नारद भक्ति सूत्र संख्या २ और शांडिल्य भक्ति सूत्र संख्या २ के अनुसार प्रभु के पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है । नारद भक्ति सूत्र संख्या ८२ में भक्ति के ११ भेद किये गए हैं वे नवधा भक्ति के अंतर्गत हैं ।

साधना की दृष्टि से आचार्य वल्लभ ने भक्ति के विहिता और अविहिता दो भेद किये हैं । ये साधना भक्ति और साध्य भक्ति के ही रूपान्तर मात्र मानने

- 
- १ अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिराजिवम् ।  
 आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥  
 इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।  
 जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥  
 असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।  
 नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥  
 मयि चानन्ययोगेन भक्तिव्यभिचारिणी ।  
 विविक्तदेशसेवित्वमरितर्जनसंसदि ॥  
 अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।  
 एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतो न्यथा ॥

चाहिये । तत्त्व दीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण में महाप्रभु जी ने भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है :-

महात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सदृढः सर्वतोधिकः ।

स्नेहो भक्ति रिति स्यात्ता तथा मुक्तिर्नान्यथा ॥

भगवान् के महात्म्यज्ञान के अनंतर जो अत्यन्त दृढ़ और सबसे अधिक स्नेह उत्पन्न होता है उसकी भक्ति संज्ञा है । उस स्नेह से भगवान् वशीभूत होते हैं और जीव की अविद्या का नाश करते हैं । भगवान् को वश में करने का दूसरा उपाय कोई नहीं है ।

आचार्य वल्लभ का मत है कि प्रकृति अथवा माया में से उत्पन्न तामस, राजस और सत्त्व गुणों की सत्ता सबके विचार, वृत्ति और कर्मों पर चलती है इस प्रकार से भक्ति जो अंतर्करण की एक वृत्ति बन जाती है वह ४ प्रकार की होती है ।<sup>१</sup>  
१ तामसिक भक्ति २ राजसी भक्ति, ३ सात्त्विकी भक्ति और निर्गुणा भक्ति ।  
आचार्य वल्लभ का भक्ति मार्ग " पुष्टि मार्ग " कहलाता है । उस मार्ग में निर्गुण भक्ति के द्वारा प्रभु की सेवा की जाती है । इस निर्गुण भक्ति के द्वारा प्रभु की सेवा की जाती है । इस निर्गुण भक्ति पर उपर्युक्त तीनों गुणों की सत्ता नहीं चलती । श्रीमद्भागवत् वल्लभ सम्प्रदाय का मूलाधार ग्रन्थ है । इस का भक्ति प्रकरण उसी ग्रन्थ पर आधारित है । श्री मद्भागवत में तामसी भक्ति का वर्णन करते हुए कहा है, "जो किसी मनुष्य को मरने के हेतु, कपट करने के हेतु अथवा परोत्कर्ष न सह सकने से दूसरे को पीड़ा पहुंचाने के हेतु भेद दृष्टि से भगवान् का भजन करते हैं वे तामसी भक्त और ऐसी भक्ति तामसी भक्ति है ।"

राजसी भक्ति के विषय में वहाँ पर कहा गया है कि जो लोग विषयों इच्छा से अथवा यश की कामना से अथवा ऐश्वर्य की इच्छा से भेद रख कर भगवान् की पूजा करते हैं वे राजस भक्त हैं । ऐसी भक्ति राजसी भक्ति कहलाती है ।<sup>२</sup> वहीं तीसरे

१ अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमिव वा ।

संरम्भी भिन्न दृग् भावं मयि कृयात्सि तामसः ॥

श्रीमद् भागवत ३।२६।८

२ विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यं मेव वा ।

अचिदावर्चय्यो मां पृथग्भावः स राजसः

श्रीमद् भागवत ३।२६।९

श्लोक में सात्त्विकी भक्ति का निरूपण करते हुए कहा है कि जो लोग सब कर्मों और पापों का नाश करने के लिए भगवान् की सेवा करते हैं, अपने कर्मों को ईश्वर के अर्पण करने से ईश्वर प्रसन्न होंगे यह सोचकर जो लोग अपने कर्मों को ईश्वर में अर्पण करते हैं ऐसे भेद दृष्टि वाले सात्त्विक भक्त हैं और ऐसी भक्ति सात्त्विकी भक्ति<sup>१</sup> कहलाती है। वल्लभ मत में सबसे उत्तम निर्गुण भक्ति है जो हृदय में कोई कामना न रखकर वरन् अपना परम कर्तव्य मानकर प्रेम पूर्वक भक्त को प्रभु सेवा में निरत रखती है। पुष्टिमार्ग में इसी की सेवा का प्रचलन है। भगवान् के गुणों के श्रवण मात्र से सवान्तयामी भू में प्रतिबन्धों से रहित अविच्छिन्न मन की गति का होना निर्गुण भक्ति का लक्षण कहा गया है - यथा -

मद् गुणश्रुति मात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।

मनोमतिरक्व विच्छिन्ना यथा गङ्गाभ्योन्मुधौ ॥

श्रीमद्भगवत् ३।२६।११

आचार्य वल्लभ ने अपनी सुवोधिनी टीका में इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए लिखा है : - सर्व गुहाशये मयि भगवति प्रतिबन्धरहिता विच्छिन्ना या मनोगतिः पर्वतादि भेदनमपि कृत्वा यथा गङ्गाभ्योन्मुधौ गच्छति तथा लौकिक वैदिक प्रतिबन्धान्करी कृत्य या भगवति मनसो गतिः ।

निर्गुण भक्ति भगवद्भक्त की लौकिक और वैदिक बाधाओं को दूर कर भगवान् के चरणों में अविरल गति देने वाली है। यह भक्ति अहेतुकी फल का स्पर्श नहीं करती इसके रस में डूब कर भक्त लोग सालोक्य (अर्थात् वैकुण्ठ का निवास), साष्टि (भगवान् का ऐश्वर्य) सामीप्य भगवान् का सहवास और सारूप्य भगवान् के सदृश स्वरूप रूप मुक्ति भी नहीं चाहते ।

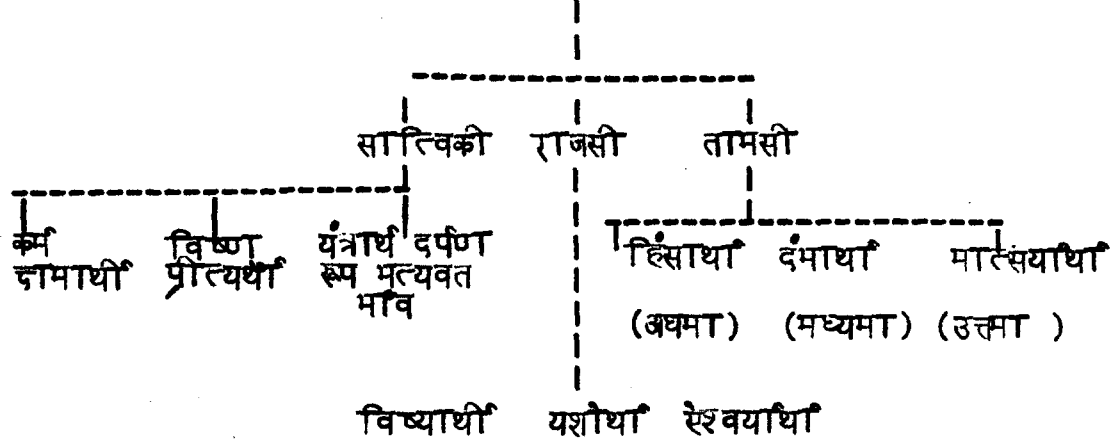
श्री मधुसूदन सरस्वती ने आरब्ध और आराधक के पारस्परिक सत्त्वधों के भेद से भक्ति के कतिपय प्रकारों की चर्चा की है। यथा- कामजन्य भक्ति, द्वेष जन्य भक्ति, भय जन्य भक्ति, हास्य जन्य भक्ति, विस्मय जन्य भक्ति, उत्साहजन्य भक्ति इत्यादि<sup>२</sup>। भक्ति के उक्त दोनों वर्गीकरण (मानव) वृत्तियों के आधार पर किये गये हैं ।

श्री निम्बाकआचार्य कृत 'सदाचार प्रकाश' निम्बाक सम्प्रदाय का कर्म योग सम्बन्धी सुंदर ग्रन्थ माना जाता है। उसका एक संक्षिप्त रूप 'सदाचार सार संग्रह' है। सदाचार सार संग्रह के चतुर्थ प्रकरण में पूजाविधान का विस्तृत उल्लेख है।  
<sup>१</sup> कर्मनिर्हार महर्षय परस्मिन्वा तदपिण्ययेष्टव्यमिति वा पृथग्भाव स सात्त्विक-भक्ति  
<sup>२</sup> सदाचार-सार-संग्रह-मधु-सर-श्लोक-संग्रह-भक्ति-रसायन-मधुसूदन-सरस्वती, द्वितीय अलंकार श्लोक ३ में उक्त

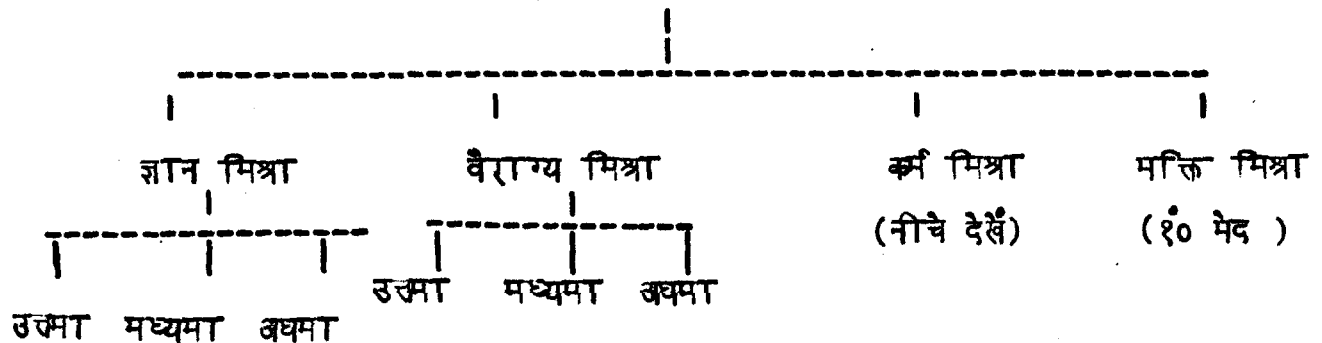
उसमें ब्रह्मादिक सभी को पूजा का अधिकार दिया गया है। इस ग्रन्थ के ६ वें प्रकरण में भक्ति के विभिन्न भेद उप भेदों का सांगोपांग निरूपण किया गया है। इस संदर्भ में भक्ति को पहले ४ मुख्य भेदों में विभाजित किया गया है।<sup>१</sup> जो प्रमुखतः साधन से से साध्य भक्ति की ओर बढ़ती प्रक्रिया है। ये ४ विभेद हैं :-

१- ज्ञानमिश्रा, २- वैराग्य मिश्रा, ३- कर्म मिश्रा, ४- भक्ति मिश्रा। तदनन्तर ज्ञान मिश्रा भक्ति उत्तमा, मध्यमा और अधमा तीन भागों में बांटी गई है। उत्तमा भक्ति का लक्ष्य सम्पूर्ण प्राणियों में भगवत् भाव रखना और सभी को समान भाव से देखना, मध्यमा के अंतर्गत ईश्वर भक्तों से भिन्नता, मूर्ख अज्ञानियों पर कृपा करना और विदेशियों के प्रति उपेक्षा करना प्रधान माना गया है। अधमा में श्रद्धा से गुरु प्रभु की पूजा करना वर्णित है। इसी प्रकार वैराग्य मिश्रा भक्ति के भी उपरोक्त तीनों भाग किए गए हैं और कर्म मिश्रा सात्त्विकी, राजसी, तामसी उपभेदों में विभक्त हुई है। उनके भी पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं।

### (२) कर्म मिश्रा भक्ति



### (१) भक्ति



भक्ति मिश्रा के भेद- १-साधुसंग, २-भगवत्कथा, ३-प्रभु का गुणानुवाद, ४-प्रभु के गुणों की वाणी से व्याख्या, ५-निश्चय होकर आचार्यों की पवित्र स्वभाव से सेवा करना, ६-यम नियमादि के साथ भगवद् पूजा में निष्ठा, ७-अंग उपांगों सहित भगवत् मंत्र से उपासना, ८-समस्त प्राणियों में भगवान् की स्थिर सम्पत्ति की भक्ति की अधिक पूजा ९-भगवान् के स्वरूप का विचार और बाहरी विषयों में वैराग्य आदि।

१-सदाचार  
सारसंग्रह  
पृष्ठ ८२  
श्लोक ०८३।



भक्ति मिश्रा भक्ति को नारदीय पुराण के आधार पर १० भागों में विभाजित किया है जो साधन भक्ति तथा नवधामभक्ति के रूपान्तर कहे जाने चाहिये । इनमें भक्ति उदय होने के साधन बताए गए हैं ।

उपरोक्त पंक्तियों में भक्ति के भेद प्रभेदों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है वह प्रकारान्तर से साधन और साध्य (भाव) भक्ति की विशेषणविवृति कहनी चाहिये । रसाचार्यों और भक्तों ने अपने अपने दृष्टि कोणों से ममन-वृत्तिमें कहीं गुणों को प्रमुखता देते हुए, कहीं भय, विस्मय, उत्साह आदि मानव वृत्तियों को प्रधान मानते हुए, कहीं ज्ञान, कर्म वैराग्य पर विशेषण बल देते हुए उनका विशेष नाम करण किया है जो भक्ति मार्ग की सफल साधना में उन गुणों और भावों की विशेषता अथवा महत्ता का परिचायक है । वास्तव में विधि अर्थात् साधन समाश्रय और रुचि अर्थात् भगवान् के चरणों प्रेम भक्ति के ये ही दो प्रमुख आधार स्तम्भ हैं जिनको प्रमुखता देते हुए उसके वैधी और रागानुगा दो भेदों को प्रधानता दी गई है । वे साधन भक्ति के अंतर्गत हैं ।

वैधी और रागानुगा भक्ति । वैधी भक्ति भगवान् के ऐश्वर्य और जीव के लघुत्व की सूचक है । ऐश्वर्य में प्रभु अपने महामहिमावान् रूप में विराजमान है और जीव अपनी लघुता से आवद्ध जिसमें उनका स्वामी सेवक सम्बन्ध प्रमुख होता है । वैधी का लक्षण करते हुये कहा गया है - "जिसमें स्वतः राग न हो केवल नम-कैमि शास्त्रीय विधि वाक्यों या निर्देशों के आधार पर मनुष्य प्रवृत्त हो उसका नाम वैधी भक्ति है" । श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध में और पद्मपुराण में भी सर्वशक्तिमान् भगवान् के श्रवण, कीर्तन और स्मरण की आज्ञा दी गई है सारे विधि निषेध इन्हीं के अंतर्गत हैं । शेष सारे धर्म-कर्म इनके सामने गौण हैं । भगवान् का सदा स्मरण और कभी विस्मरण न करना ये दो सहज कर्तव्य हैं । वैधी भक्ति में विधि निषेध मयादा का कड़ाई से झालन करने की विधान है । उसमें

ध - - - - -

१ यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्ति रूप जायते ।

शासने नैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्ति रुच्यते ।

२ स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्यो न जातु चित्

सर्वे विधिनिषेधाः स्तुरेतयोरेव किंङ्करा ।

भक्ति रसा० सि० पू० वि० द्वि० सा०

पद्मपुराण

भगवान् के षोडशोपचार पूजन का भी भारी महत्व है जो शास्त्रानुमोदित होने चाहिये । वैधी भक्ति में वैदिक नित्यकर्म, वणाश्रम धर्म के नियमों का अनुकरण करते हुए प्रभु के ऐश्वर्य के प्रति अपने सर्वस्व का समर्पण होता है । उसमें साधक में भय, श्रद्धा और संप्रभु की प्रधानता रहती है । यह भक्ति प्रधानतः उनके ऐश्वर्य पर आधारित है । इसमें कर्म धर्म पर पूर्ण आस्था और बल रखते हुए भजन की ओर भी मन रहता है । वैधी भक्ति सारे वर्णों और आश्रमों का नित्य धर्म है । नैमित्तिक नहीं । किसी फल विशेष की प्राप्ति की कामना से किए जाने वाले जात कर्म और संस्कारादि नैमित्तिक कर्म होते हैं । उनका विशेष अभिप्राय होता है । परन्तु नित्य कर्म उनसे भिन्न होते हैं । 'प्रकरणो प्रत्यवाय साधनाति नित्याति' जिनके करने से कोई पाप उत्पन्न होता है उसकी नित्य कर्म संज्ञा है । इसी प्रकार वैधी भक्ति की गणना भी नित्य कर्मों में की जाती है । परन्तु जिस प्रकार एकादशी व्रत आदि नित्य कर्म होने के कारण जैसे उनका फल होता है उसी प्रकार शास्त्र में वैधी भक्ति के फल का भी निर्देश किया गया है । कर्म काण्ड के सन्ध्यावन्दन और वैधी भक्ति में विशेष मर्यादा है । सन्ध्यावन्दन आदि अनुष्ठान का फल मुक्ति लाभ माना गया है परन्तु वैधी भक्ति के हरि भजन, श्रवण, कीर्तन बहिर्मुख लोगों को उनमें रुचि उत्पन्न करने के निमित्त है । हरिभजन में प्रेम उत्पन्न कराना ही वैद्य अंगों का मुख्य फल है । साधन भक्ति केवल सिद्ध भक्ति को उदय कराने के लिये है । नारद पंचरात्र में कहा गया है भगवान् की आराधना के उद्देश्य से जो साधनभूत वैधी क्रियाएँ हैं वे उससे अगली उत्कृष्ट साध्य रूपा भक्ति का लाभ कराने वाली हैं ।

वैधी भक्ति के अधिकारी - भक्ति मार्ग में प्रवेश पूर्व जन्म के सुकृतों का फल है ।

जिन श्रेष्ठ पुरुषों के हृदय में महात्माओं के संतसंगादि के संस्कार विशेष्य से सांभाग्यवश भगवान् के सेवन में ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हो गई हो जिसमें न अत्यन्त आसक्ति हो और न जो सर्वथा वैराग्य युक्त ही हो वह वैधी भक्ति का अधिकारी होता है । हरि भक्त रसामृत सिंधु कार ने वैधी भक्ति के अधिकारियों के तीन भेद किये हैं । वे हैं - ह्युत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ।

१ सुरणो ! विहिता शास्त्रे हरि मुह्यिष्य या क्रिया ।

सैव भक्ति रिति प्रोक्ता तथा भक्ति परामवेत ॥२८॥ हि० भ० १० सि०, पृ० २६

२ यः केनाप्यति भाग्येन जात श्रद्धोदस्य सेवने ।

नातिसत्यो न वैराग्य भागस्यायधिकार्यसौ ॥ वही , पृष्ठ ५

इनमें से उत्तम भक्त शास्त्र और तर्क में निपुण, निश्चय किये हुए मार्ग पर सर्वथा दृढ़ और प्रौढ़ श्रद्धा वाला होता है। वह विवेकी, श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न अपने आग्रह का रक्षाक और आन वान से मुक्त होता है।

वैधी भक्ति का मध्यम अधिकारी तर्क, युक्ति और शास्त्र में विशेष प्रवेश न होने पर भी श्रद्धावान और परम आस्तिक होता है। कनिष्ठ अधिकारी शास्त्र, मुक्ति और तर्क में क्षीण तथा दुर्बल श्रद्धा वाला होता है। उसके लिए कोमल श्रद्धा शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका तात्पर्य है कि वह थोड़े से तर्कों और शास्त्रों के प्रमाण से मार्ग से विचलित हो सकता है।

इस वैधी (साधन भक्ति) के चौंसठ अंग माने गए हैं।<sup>१</sup>

अन्वय भाव से दस अंग - १- श्री गुरु पादाश्रय, २- श्रीकृष्ण दीक्षादि शिदा,  
३- विश्वास पूर्वक गुरु सेवा, ४- साधु मार्ग का अनुगमन,  
५-सद्धर्म की जिज्ञासा, ६- श्रीकृष्ण प्रोत्थर्थ में भोगादि का त्याग, ७-भक्ति तीर्थ में निवास, ८- यावत् निवाह हो उसका प्रतिग्रह ९- हरिवासर का सम्मान तथा गौ ब्राह्मणादि का सम्मान दान।

व्यतिरेक मुख में दश अंग - १- वहिर्मुख संग का त्याग, २- अनधिकारी शिष्यकरण का त्याग, ३- भक्ति ग्रन्थों को छोड़कर बहुशास्त्राभ्यास का वर्जन, ४- आढम्बर का त्याग, ५- व्यवहार में दोनता का अभाव, ६- शोकादि के वशीभूत न होना, ७- अन्यदेवादि के निन्दा परिहार, ८- अन्यजीवों को उद्वेग न देना, ९- सेवा-पराध एवं नामापराध का वर्जन, १०- श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तों की निन्दा विद्वेषादि को न सुनना।

इसके अतिरिक्त वैष्णव चिन्ह धारणादि से लेकर भगवद्धाम में निवासान्त तक ४४ अंग और हैं। इनमें भगवान् की सेवा पूजा, उनके प्रसाद का धारण, उत्सव, प्रिय वस्तु का प्रभु को समर्पण, ध्यान, साव्य आत्मनिवेदन, तीर्थ सेवन, स्वजाति साधु संग आदि प्रमुख माने गए हैं। वैधी भक्ति वह आधार स्तम्भ है। जिसकी सुदृढ़ पीठिका पर निरंतर आसीन होकर साधक साध्य रूपा अर्थात् भगवद् प्रीति रूपा प्रेम लक्षणा भक्ति की ओर अग्रसर होता है।

रागानुगा-भक्ति । साधन भक्ति का दूसरा अंग रागानुगा या रागमयी भक्ति है ।

यह सैकड़ों जन्मों के पुण्य दान, जप, सुकृतों का बीरब्राम है स्वरूप विशुद्ध अन्तःकरण वाले साधकों को प्रभु कृपा का वरदान है । प्रभु अपनी असोम कृपा से उन्हें भक्ति का वरदान देते हैं जिसमें भक्त का पुरुषार्थ नहीं बरन प्रभु की कृपा ही मुख्य कारण है । सांसारिक काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों से शून्य निर्मल चित्त में जब पूर्ण वैराग्य का उद्भव हो जाता है तथा शुद्ध विज्ञान का पूर्ण प्रकाश हुआ जाता है तब रागानुगा की सूत्रपात होता है । वैधी भक्ति ज्ञान का साधन है परन्तु रागानुगा भक्ति का उदय ज्ञान विधान के अनंतर होता है । यह महा आनंद प्रदायिनी है । इसके बिषयात्मन् आत्मा स्वरूप स्वयं भगवान् है । इसमें राग अर्थात् भगवान् के आत्यन्तिक स्नेह की प्रधानता रहती है । पाप रहित शुद्ध अन्तःकरण में भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सांसारिक सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वैराग्यः सत असत् पदार्थों का एवं निम्न स्वरूप पर स्वरूपादिक अर्थयंत्रक का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है परम तत्पश्चात् भगवच्चरणारविदों में अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति का स्वत्व अन्तःकरण में जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमा भक्ति के नाम से पुकारी जाती है । यह सर्वश्रेष्ठ अतः परम दुर्लभ है ।<sup>१</sup>

रागानुगा की मूल स्वरूपा रागात्मिका भक्ति है । अतः यहाँ पहले रागात्मिका भक्ति का रूप जानना परमावश्यक है ।

श्री ब्रजेन्द्र नंदन की प्राप्ति सभी ब्रज जनों का अभीष्ट है क्योंकि वे उन सबके इष्ट रूप हैं । वे उनके अभीप्सित प्रेम के बिषयात्मन् हैं<sup>२</sup> । श्री नंदनंदन की प्राप्ति के लिए अनेक चेष्टायें होती हैं जिनमें स्वारागिकी-स्वाभाविकी, परमाविष्टता-कायिकी, वाचिकी, मानसी सर्व प्रधान हैं । इनकी राग संज्ञा है । इन रागों में भी "तन्मयी राग" की विशेष स्थिति है । तन्मयी राग से प्रेरित जो भक्ति है वह

१ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना , पृष्ठ २

२ रागात्मिक निष्ठा ये वनवासनादयः । तेषां भावाप्तये लब्धो भवेदनाधिकारवान् तत भावादिमाधुर्यं श्रुते धीर्येदपेक्षते, नाम शास्त्रं युक्ति च तत्लोभोत्पत्ति लक्षणम् ।

रागात्मिका भक्ति कही जाती है। अपने दृष्ट में गाढ़ तृष्णा इसका स्वरूप लक्षण है।<sup>१</sup> दृष्ट में स्वारसि की परमाविष्टता इसका तटस्थ लक्षण है। अर्थात् अपने प्रेम के अनुरूप दृष्ट में संलग्नता और <sup>भाव</sup> विवर्दीन के निमित्त प्रयास वे गौण चेष्टायें हैं जो उनके प्रति रति स्थिर करने में सहायक होती हैं।

आविष्टता राग की कार्य रूपा है। उसके द्वारा विशेष चेष्टायें ग्रहण की जाती हैं। ये चेष्टायें कामिक, वाचिक दोनों प्रकार के होती हैं जिनके द्वारा श्री ब्रजेन्द्र नंदन की प्राप्ति अभीष्ट होती है। इनमें वाणी द्वारा प्रयास वागगता आविष्टता कहलाती है। शारीरिक अवयवों द्वारा हाव, भाव, अनुभावों की चेष्टायें कामिक और मानसिक के अन्तर्गत हैं। वागगता और कायमता जो आविष्टता है उसका कार्य ही मनोगता अर्थात् आविष्टता है। उसी को स्वगतादि रूपा कहा गया है। स्वगतादि रूपा आविष्टता दृष्ट में गाढ़ तृष्णा को दृढ़ करती है। वह रागात्मिका भक्ति को सबल सुदृढ़ता प्रदान करने वाली है। रागात्मिका भक्ति की अनुगता रागानुगाभक्ति है।

रागानुगाभक्ति का भगवान् के दया दादािण्य मिश्रित अनन्य प्रेम की लोभोत्पत्ति ही प्रधान लक्षण बतलाया गया है। भगवान् में प्रीति उत्पादक श्री मद्भागवतादि ग्रन्थों में रसिक भक्तों द्वारा रचित जो लीला प्रसंग हैं उनमें श्री नंद यशोदादि ब्रजवासीगणों का जो भाव, रूप, गुणादि समन्वित श्री कृष्ण सर्वेन्द्रिय में जो प्रीति प्रसारक वर्णन है उसकी माधुर्य मयी कहानी सुनकर तथा तत्पश्चात् उसे यदकिंचित अनुभूति करके और शाम्य की युक्तियों से निरपेक्षा होकर वृद्धि वृत्ति के प्रवर्तक से मन में 'मेरा ऐसा कब होगा' 'श्रीकृष्ण में कृपावल्लभ का मुझे कब आश्रय मिलेगा' उनकी दया दादािण्य कैसे मिले' इस प्रकार की माधुर्य भाव संकलित अभिलाषा करके ही प्रभु चरणों में लोभोत्पत्ति होती है। इस प्रकार की लोभोत्पत्ति प्रभु-चरणों में राग भक्ति की प्रथम प्रवृत्ति है। लोभोत्पत्ति में शास्त्र बुद्धि की अपेक्षा नहीं होती वह इसका कारण नहीं परन्तु जिस विषय में

१ दृष्टे गाढ़ तृष्णा राग यह स्वरूप लक्षण, दृष्ट आविष्टता राग तटस्थ

लक्षण-

चैतन्य चरितामृत कृष्णदास कविराज मध्य २८।८६

लोभ का उदय हुआ है उसकी स्थिरता एवं वृद्धि के निमित्त शास्त्रादि का अनुसंधान एवं शास्त्राक्त साधन का अनुसंधान अवश्य कर्तव्य है । इस प्रकार शास्त्राज्ञा से जो भजन है वह विधि मार्ग है और लोभ प्रयुक्त विधि मार्ग से जो भजन है वह रागमार्ग है । रागानुगा भक्ति वैधी भक्ति से अनेक अर्थों में सर्वथा भिन्न है । रागमयी भक्ति विधि या विधान का स्वतः ही त्याग होजाता है । विधि विधान को त्यागने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता वरन् वे स्वतः ही कूट जाते हैं । उनकी निरर्थकता और अग्राह्यता स्वयं सिद्ध प्रतीत होने लगती है ( रागमयी भक्ति का विकास स्थल हृदय है । यह हृदय की मनोरम मधुर साधना है । श्रवण कीर्तन आदि वैधी भक्ति तथा श्री गुरुपादाश्रयतादि भक्तियों की रागानुगा में उपयोगिता और अपेक्षा रहती है । साधकों को उनके निषिद्ध आचरण करना सर्वथा वर्जित है । इस प्रकार राग मार्ग और विधि मार्ग में वैभिन्न है वरन्तु विरोध नहीं । विधि और राग भिन्न तत्त्व होने पर भी विशुद्ध अवस्था में एक तात्पर्य विशिष्ट हैं । निर्मल विधि राग के बिणय में सहायक होती है । निर्मल राग भगवान् को इच्छा रूप विधि के अनुगत होता है । जड़ जगत में राग और विधि परस्पर विपरीत लक्षित होते हैं जिसका कारण राग की अस्वस्था मात्र है । राग को स्वस्थ रूप में पंहुचा कर विधि की आवश्यकता नहीं रहती । औषधि के साथ शरीर का जो सम्बन्ध है विधि के साथ राग का भी वही सम्बन्ध है । शरीर जब निरोग और दृष्ट पुष्ट होजाता है तो औषधि की आवश्यकता नहीं रहती उसे छोड़ दिया जाता है । उसी प्रकार विधि का कार्य राग की रक्षा और पोषण करना है । पुष्ट राग विधि की अपेक्षा नहीं रखता ।

रागानुगाभक्ति की प्रक्रिया - पूर्व में कहा जाचुका है कि बिणयी पुरुष को स्वाभाविक बिणय संसर्ग से बिणयों के प्रति विभिन्न रूपों में जो अत्यधिक प्रीति उत्पन्न होती है उसकी 'राग संज्ञा' है । जब राग के एक मात्र बिणय श्री कृष्ण ही बन जाते हैं तब रागभक्ति का उदय होता है । रागभक्ति में श्रीकृष्ण के प्रति विशेष लोभाकर्षण होता है । ब्रजवासियों के परम मधुर भावों को सुनकर उसमें से किसी विशेष भाव में प्रवेश करने के लिए लोभ होता है । साधक

१ वैध भवत्यधिकारी तु भावाविभाविना विधि :

अत्र शारत्रं तथा तर्कमनुकूलमपेक्ष्यते ॥

म० र० सि० २। १४६

सौचता है । ब्रजवासियों की कृपा के प्रति जैसा मधुर भाव था । क्या मुझे वैसा भाव प्राप्त होसकता है । इस प्रकार की उत्कण्ठा मय छटपटाहट या तीव्र लालसा ही उस लोभ की जननी है । साधक का जिस ब्रजवासी ( गोप या गोपी ) के सेवोत्कर्ष का लोभ उत्पन्न होता है रागानुगा का उपासक उसको सदा सर्वदा स्मरण करता है और भगवान् श्री कृष्ण की उसके प्रति जो लीलयाँ हैं उनमें निरत रहता हुआ ब्रज में निवास करता हुआ प्रत्येक समय उनका चिन्तन करता रहता है । उस भाव को बाने के लिये लोभ से अपनी अभिलाषित साधना ( ब्रजवासी का स्वरूप ) का अनुसरण करता हुआ वह बाहर से साधक रूप में और अंतरंग में सिद्ध देह की भावना पूर्वक सेवा करता रहता है । इस प्रकार आत्यंतिक अनुराग से सराबोर अतिशय प्रगाढ़ भाव निहित वह रागानुगामी भक्त भगवान् श्रीकृष्ण के परम लैक्य का अधिकारी बन जाता है । माता पिता से उत्पन्न भौतिक शरीर साधक देह है और अन्तर में अभीष्ट श्री राधामाधव की साक्षात् सेवा के उपयुक्त जिस देह(स्वरूप) की भावना की जाती है । सनत कुमार तंत्र<sup>१</sup> में माधुर्यो-पासना के अंतर्गत सिद्ध देह की भावना के सम्बन्ध में निर्देश दिया गया है कि गोपी भाव में अपने को रूप यौवन सम्पन्न परम मनोहर किशोरी के रूप में सिद्ध देह से भावना करना अभीष्ट है । तंत्र में आगे कहा गया है कि साधक ने जिस गोपी या सखी की भावना को अपनाने का व्रत लिया है उसी की आज्ञा के अनुसार सेवा व्रत में निरत रहते हुए श्री राधा जी के निमित्त स्वस्वरूप को ग्रहण करते हुए साधनों की सिद्धि रूपा इस मंजरी देह की अनवरत अनिवार्य रूप से भावना करनी चाहिये । मंजरी में केवल सेवा वासना का ही प्राधान्य है उसमें संभोग विषयक किंचित विचार लाना भी महान अनर्थ<sup>२</sup> है । उसे प्रिया प्रियतम की एक अत्यन्त मनोरम रूप यौवन सम्पन्न किशोरावस्था की सुंदरी के रूप में जो अनेक कलाओं में प्रवीण शिल्प कार्यों में ये दत्ता तथा अपने रूप गुण कार्य कलापादि से

१ आत्मानं चिन्तयेत् तत्र तासां मध्ये मनोरमाम् ।

रूप यौवन सम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम् । ५२-७ सनतकुमार तंत्र

२ नानाशिल्प क्लामिज्ञां कृष्णभोगानरूपिणीम् ।

प्रार्थितामपि कृष्णोन् तत्र भोग पराङ्मुखीम् ।

राधिकानचरो नित्य तत्सेवन परायणीम् ।

कृष्णदप्यधिकं प्रेय राधिकायां प्रकृतीम् ।

प्रीत्यानदिवस यत्नसेत तयोः संगमकारिणीम् ।

तत्सेवन सुखाल्लाद भावनाति सुनिर्वृताम् ॥

इत्यामानं विचिन्त्यैव तत्र सेवा समाचरेत् ।

ब्राह्मं मुहूर्तमारम्य यावत् स्यात् तु महानिशा ।

से श्रीकृष्ण भगवान् के उपभोग के अनुकूलन हो परन्तु श्री कृष्ण के द्वारा दिव्य संभोग की प्रार्थना किये जाने पर भी वह उधर से पराङ्गमुख हो, श्री राधा क्लेशोरी को ही प्रधान रूप से प्रेम करने वाली हो और उनकी अनुचरी बनकर उनकी सेवा में सदैव मन से निरत हो । तत्परता से उनकी आज्ञानुवर्तिनी होकर दोनों का सम्मिलन सूत्र दृढ़ करना उसका अभीष्ट हो इस में वह अपने को महाभाग्या समझे और ब्राह्म मुहूर्त से लेकर रात्रि के शेष भाग तक श्री राधा माधव की मानसी सेवा में मंजरी भावानुगत होकर मानसी सेवा में निरत रहे ।

रागात्मिका और रागानुगा ॥ रागमयी भक्ति का नाम रागात्मिका है । उसकी भक्ति के भेद ॥ अनुगता अर्थात् उसका अनुसरण करने वाली भक्ति रागानुगा है । श्री गोविन्द भाष्य में श्री बल्देव विद्या भूषण ने इसी को 'रुचि भक्ति' कहा है । श्री मद् भागवत में भगवान् में मन लगाकर उनकी भक्ति प्राप्त करने के काम से तथा अन्य सम्बन्धों के आश्रय से, दो प्रकार के साधन बताए हैं । उन्हीं के आधार पर रागात्मिका भक्ति के काम रूपा और सम्बन्ध रूपा दो भेद हैं ।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है काम से, द्वेष से, भय से, स्नेह से अपने मन को भक्ति में आविष्ट कर उन भावों के दोषों का परित्याग कर साधकों ने भगवत भक्ति प्राप्त की है । उनमें से गोपियों ने काम भाव से, कंस ने भय से, शिशुपालादिक ने द्वेष से, यादवों ने पारिवारिक सम्बन्ध सूत्र से पाण्डवों ने स्नेह से और नारदादि ऋषियों को भक्ति से भगवदाश्रयता मिली है ।<sup>१</sup> इन भावों में से भय और द्वेष दो प्रतिकूल भाव हैं । स्नेह एक अंश में सरल भाव से मुक्त होने के कारण वैधी भक्ति के अन्तर्गत है और प्रेम भाव से युक्त होने के कारण साधन क्षेत्र में उसकी उपयोगिता नहीं है ।<sup>२</sup> अब इस प्रकार भय, द्वेष, स्नेह और भक्ति इन चारों

१ कामद्-द्वेषाद्-भयात् स्नेहाद् यथा भवन्त्येश्वरे मनः

आवेश्य तदर्थं हित्वा बहवस्तद्-गतिं गताः ॥

गौप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैवालयो नृपाः ।

सम्बन्धाद् वृष्णायः स्नेहादयूयं भवत्या वयं विभो ॥ श्रीमद्भागवत ११।२६।३०

२ स्नेहस्य सर्वव्यापित्वाद्बोध भक्त्यनुवर्तिता ।

किं वा प्रेमाभिधातित्वान्नोपयोगो त्र साधने ॥



को पृथक् कर देने पर काम और सम्बन्ध दो भाव ही प्रमुख रूप से भक्ति के संचारकर्ता रह जाते हैं। राग मार्ग में काम और सम्बन्ध दो भाव ही कार्य करते हैं। उनके आधार पर रागमयी (रुचिपूर्णा भक्ति: रुचि भक्ति: ) दो प्रकार की (कामरूपा और सम्बन्ध -रूपा ) मानी गयी है।

काम रूपा भक्ति में काम की प्रधानता रहती है। काम शब्द से 'संभोग तृष्णा' का तात्पर्य होता है परन्तु भक्ति मार्ग में उसका अर्थ सर्वथा भिन्न है। यहाँ संभोग तृष्णा रागात्मिक भक्ति के स्वरूप में बदल जाने से वह अहैतुकी प्रीति में अहैतुकी प्रीति में परिवर्तित होजाता है। अर्थात् प्रीति संभोग में श्रीकृष्ण के प्रेम की लालसा रहती है। जो कुछ प्रेम के लिए प्रयास होता है वह श्रीकृष्ण के आनन्दवर्द्धन के निमित्त स्वयं के लिए भी कोई चेष्टा होती है तो वह भी श्रीकृष्ण की सुख-समृद्धि के लिए ही मानी जाती है। इस प्रकार की अपूर्व प्रीति व्रज की गोपांगनाओं में ही पायीजाती है उस प्रीति में आश्चर्यजनक माधुर्य रहता है जो अनेक अद्भुत प्रेम व्यापारों को जन्म देता है। रस मर्मज्ञ इसे 'काम' की संज्ञा देते हैं। व्रज वालाओं के इस अनूठे प्रेम में किसी प्रकार के कल्पना की संभावना नहीं उनका यह 'काम' अप्राकृत और सर्वथा वैमल्यपूर्ण होता है। उसमें वद्वज्जीवों के काम की सदोषता एकनिष्ठता और लोलुपता नहीं होती। वह नितान्त विशुद्ध और अत्यन्त आकर्षण युक्त होता है। उद्धव जैसे भगवान के प्रेमी ज्ञानी भक्त उस प्रेम (काम) की प्राप्ति के लिये लालायित रहते हैं। सर्वथा निस्पृह, निर्मल, रुचि पूर्ण होने से वह अद्वितीय माना जाता है। गोपियों के काम की तुलना किसी अन्य काम से हो नहीं सकती। कुब्जा के प्रेम से (काम से) गोपियों के काम की तुलना नहीं होसकती क्योंकि गोपियों का काम सर्वाकर्षक है कुब्जा का रति मात्र कहा जाता है। उसमें एकांगता है।<sup>१</sup>

सम्बन्धरूपा भक्ति      ॥ रागात्मिका भक्ति का दूसरा स्वरूप सम्बन्ध रूपा भक्ति है।  
श्रीकृष्ण का पितृत्व आदि भावों की गौरवानुभूति(अभिमान)

१ इत्युद्धवादयो म्ययेतं वाच्छन्ति भगवत् प्रियाः ।

काम प्रायः रतिः किन्तु कुब्जा या मेवं सम्यता ॥

अर्थात् 'मैं कृष्ण का पिता हूँ' 'मैं कृष्ण की माता हूँ' इत्यादि मोहजनक भाव से जो कृष्ण भक्ति होती है वह सम्बन्धरूपा भक्ति कहलाती है। नन्दवावा और यशोदा माँ इस सम्बन्ध रूपा भक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। श्रीमद्भागवत के श्लोक संख्या २०२ में जो सम्बन्धाद्वृष्णम कहा गया है उसमें कृष्णार्चसियों का उसलक्षण रूप होने से नन्दादि जो से सम्बन्धित अहीर आदि भी सम्बन्ध रूपा भक्ति के उदाहरण माने जाते हैं। इनकी श्रीकृष्ण में ईश्वरत्व बुद्धि होती नहीं पितृत्वादि रूप से राग में ही इनकी प्रधानता है इसलिए उनको सम्बन्ध रूपा भक्ति का ही आश्रय माना जाता है। काम और सम्बन्ध इन दोनों भावों में ही शुद्ध प्रेम का स्वरूप पाया जाता है। इस कारण इनकी नित्य सिद्ध भक्तों के आश्रय रूप में गणना की जाती है।

रागानुगा भक्ति के  
भेद  
कामानुगा और  
सम्बन्धानुगा

जैसा कि पूर्व में निर्दिष्ट कर चुके हैं। रागानुगा भक्ति रागात्मिका भक्ति का अनुगमन करती है इसका तात्पर्य है कि वह रागात्मिका भक्ति के ऊपर आश्रित होती है अतः उसके कामरूपा और सम्बन्ध रूपा दो भेद किये गये थे जिनमें उन्होंने की भांति रागानुगा के कामानुगा और सम्बन्धानुगा रागानुगा भक्ति के दो भेद किए गए हैं।

कामरूपा भक्ति का अनुगमन करने वाली कृष्ण बिषयक ललक(तृष्णा) कामानुगा भक्ति कहलाती है। जिनके मन में श्रीकृष्ण की मनोमोहक माधुरी मूर्ति को देखकर अथवा उनकी मधुर लीलाओं को सुनकर जो उनके प्रेम या तदयता की प्राप्ति की इच्छा होजाती है वे कामानुगा भक्ति के अधिकारी हैं। पद्मपुराण में लिखा है कि पूर्व काल में दण्डकारण्य वन में रहने वाले कृष्णियों ने जब सुन्दर शरीर-धारी विष्णु अवतारो राम को देखा तो वे स्वयं स्त्री बन कर उनसे संमोग की इच्छा करने लगे। इसी के परिणाम स्वरूप द्वापर में वे सब स्त्रीत्व को प्राप्त कर गोकुल की

१ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो, क्षेणच्चैवादयोऽनृपाः

सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्ययं भक्त्या वयं विभो । २०२ ॥

२ तद्भावेच्छाऽऽत्मिका तासां भाव माधुर्य कामिता ।

श्री मूर्तेमाधुरीं प्रेक्ष्य तत्कलीलां निश्चय वा ॥

की गोपियों के रूप में उत्पन्न हुए और काम के द्वारा हरि को प्राप्त करके भवसागर से पार होगए<sup>१</sup>। इससे यह तात्पर्य निकला कि कामानुगा भक्ति केवल स्त्रियों में ही नहीं वरन् पुरुषों में भी होती है।

कामानुगा भक्ति के भी दो भेद हैं - १-संभोगेच्छामयी और  
२- तन्तद्भावेच्छामयी ।

इनमें से संभोगेच्छामयी केलितात्पर्यमयी होती है। केलि का अर्थ क्रीड़ा से है। उसे संभोग नाम भी दिया गया है। व्रज की गोपियों की श्री कृष्ण के साथ जो अप्रकृत क्रीड़ा है उसे संभोग कहते हैं<sup>२</sup>। अतः केलि सम्बन्धी अमिलाणा से युक्त भक्ति का नाम संभोगेच्छामयी हुआ। तन्तद्भावेच्छामयी भक्ति संभोगेच्छामयी भक्ति से थोड़ी भिन्न है। व्रज-यूथेश्वरियों का श्रीकृष्ण के प्रति जो भाव और माधुर्य होता है वैसे ही उनके मन में मधुर भाव की कामना भी होती है। इस भावना की पूर्ति बिषयक जो लोभ है वह तन्तद्भावेच्छात्मक होता है। उसकी तृष्णा तन्तद्भावेच्छामयी भक्ति का मूल आधार है। भक्ति रसामृत सिन्धु के टीकाकार श्री मुकुन्ददास गोस्वामी ने अपनी टीका में इस बिषय को स्पष्ट करते हुए कहा है 'संभोग शब्द से श्रीकृष्ण को सुख देने के लिए उनके साथ श्री राधा आदि यूथेश्वरियों का अंग संगीति का अनुभवात्मक प्रेम विशेष का ही तात्पर्य मानना होगा। इस प्रकार प्रेम विशेष वाली नायिका भाव रूपा जो भक्ति है वह सम्भोगेच्छामयी है।

श्री ललिता, पद्मा आदि व्रज देवियों का जो भाव है अर्थात् श्रीकृष्ण के साथ श्री राधा, चन्द्रावली प्रभृति का अंग संगीति के बिषय में सहायता करना ही जो अपना अतिशय सुख है- नायक नायिका का जो सखी भाव स्वरूपा भाव विशेष है उससे ही अमिलाणमयी जो भक्ति है वह तन्तद्भावेच्छामयी है। इस प्रकार संभोगेच्छामयी भक्ति का आधार श्रीराधा आदि यूथेश्वरियों की पररंभना वासना (लोभ) तथा ललितादिक व्रज देवियों की उनके प्रति तत्सुखी अमिलाणा तन्तद्भावेच्छामयी की कुंजी है।

१ ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्चगौकुले

हरि सम्प्राप्य कामेन तौमुक्ता भवाणवात् ।

पद्मपुराण २०८ (हरि भक्ति रसामृत सिन्धु में उद्धृत पृ० ८६)

२ केलितात्पर्यवत्येव सम्भोगेच्छामयी भवेत् ।

म० र० सि० १०१, पूर्व विभाग द्वितीय साधन लहरी-१

वास्तव में बात यह है कि किसी भी पर पुरुष का पर स्त्री के साथ संभोग वांछनीय नहीं है चाहे वह भगवान् का स्वरूप या उनका अवतारी ही क्यों न हो । पुरुष का स्त्री रूप में संभोगेच्छामयी वृत्ति की तृप्ति के लिये जन्म लेना तो और भी अप्रकारक है अतः इस प्रकार की भक्ति के प्रसार से उसका उत्कर्ष नहीं हुआ यह आदर्श नहीं है । ऋषिगणों को राम के साथ संभोगेच्छा का प्रस्ताव और गोपी रूप में उसकी परिणति तो और भी ठीक नहीं । क्योंकि उसका विशुद्ध भगवद्भक्ति से कोई तारतम्य नहीं है । अतः कामरूपा और कामानुगा शीर्षक भेदों में भक्ति का विभाजन उसके उदात्त करण की ओर प्रत्यागमन नहीं है ।

सम्बधानुगा भक्ति : अपने मन के अंदर श्री कृष्ण के पितृत्व आदि के मनन तथा उस भाव के आरोपण के संस्कार रूप में जो भक्ति भाव होता है उसे भक्ति शास्त्र में सम्बधानुगा साधन भक्ति नाम से सम्बोधित किया है ।<sup>१</sup> इसमें दास्य, सखा और वात्सल्य तीन रसों की क्रियाशीलता संभव है । मैं कृष्ण का सेवक हूँ, कृष्ण मेरे प्रभु हैं, मैं कृष्ण का सखा हूँ अथवा 'कृष्ण का मैं पिता हूँ', अथवा 'उनकी माता हूँ' - ये सब सम्बध संभव हैं । सम्बधानुगा भक्ति ब्रजवासियों में अत्यन्त विशुद्ध रूप में मिलती है । श्रीकृष्ण के प्रति सखा वात्सल्यादि की जो भावना के लोभ परायण साधकों को स्वयं अपने में वास्तविक पितृत्वादि की कल्पना न करके आरोपित पितृत्वादि भावना से सम्बध रूपा भक्ति को करना अभीष्ट है । दुर्गम संगिनी कार ने लिखा है कि पितृत्वादि का अभिमान श्रीकृष्ण के पिता आदि के साथ अपेक्ष द्वारा और स्वतंत्र रूप से दो प्रकार से होता है । इनमें से अपेक्ष की भावना से अपने को कृष्ण के पिता से अभिन्न मानना और उसका अभिमान करना उचित नहीं है । क्योंकि जैसे कोई अपने को श्री कृष्ण से अभिन्न मानकर मैं स्वयं भगवान् हूँ इस प्रकार कहने लगे तो जैसे उसका अपने को स्वयं कृष्ण कहना अनुचित है उसी प्रकार साधन का अपने को श्री कृष्ण का पिता कहना भी असंगत है । इस कारण

१ सा सम्बधानुगा भक्ति प्रोच्यते समिद्धरत्मनि

या पितृत्वादि सम्बध मननारोपणात्मिका ।

२ लुब्धवत्सल्य सख्यादी भक्ति कार्याः । म० र० सि० १०५ पू० वि० द्वि० सा० लहरी पृ० ८७

ब्रजेन्द्र सुवलादीनां भावचेष्टित मुद्रया

३ रागानुगाविवृत्ति विनोदिनी-श्रीरूप कविराज प्रकाशक कृष्णदासबाबा, पृ० ७

श्री कृष्ण के पिता आदि की अमेद भावना से नहीं वरन् स्वतंत्र रूप से पितृत्वादि की भावना से की हुई भक्ति सम्बन्ध रूपा भक्ति कहलाती है । इसमें साधक को श्रीकृष्ण के पिता आदि के भाव और चेष्टाओं का अनुकरण करना ही उचित है । उसकी समस्त क्रियाएँ एक मयादा के अंतर्गत ही रहनी चाहिये । जिस प्रकार अपने को श्रीकृष्ण से अभिन्न मानते हुए ईश्वर समझकर घोर अपराध है उसी प्रकार सम्बन्धानुगा भक्ति में अपने को श्रीकृष्ण का पिता मानकर उपासना करना भी वर्जनीय है । कामानुगा और सम्बन्धानुगा दोनों प्रकार की साधन भक्ति में मयादा का पालना अत्यंत आवश्यक माना गया है ।

भाव के विकास की दृष्टि से रागानुगा भक्ति के शान्त, दास्य, सखा, वात्सल्य और शृंगार (मधुर) पांच भेद होते हैं । इनमें क्रमशः भाव की प्रगाढ़ता होती जाती है । शान्त से दास्य में विशेषता है, क्योंकि दास्य में शान्त भी आरुढ़ रहता है, दास्य सखा में, सखा वात्सल्य में और वात्सल्य मधुर में क्रमशः परिणत होता जाता है तथा पूर्व भाव की विशेषताओं से भी युक्त रहता है । उदाहरण के लिये दधि का स्वाद स्निग्ध, मधुर और शीतल होता है । उसमें चीनी डालने से मधुरता बढ़ जाती है । तदनन्तर केशर, कपूर, मेवा आदि के सम्मिश्रण से उसका जायका और भी रुचिवर्द्धक, अत्यन्त तृप्ति-कारक, सुवास परिपूर्ण बन जाता है तथा उसकी विशेषता में निरंतर वृद्धि होती रहती है उसी प्रकार इन भावों के क्रम-विकास में उत्तरोत्तर उत्कर्षदिक्ता जाता है । जिस प्रकार दधि से बने श्रीखंड में दधि के साथ चीनी मिलने पर दधि का गुण स्वाद सम्मिलित रहता है, फिर उसमें केशर मिलने पर दधि और चीनी का, कपूर मिलने पर दधि, चीनी व कपूर का, मेवा मिलने पर दधि चीनी, कपूर की विशेषताएँ बढ़ती हैं उसी प्रकार दास्य में दास्य और शान्त भी, वात्सल्य में वात्सल्य की प्रमुखता होते हुए दास्य भाव की भी, इसी प्रकार शृंगार में दास्य, सखा भावों के रहते हुए माधुर्य की प्रधानता रहती है । शान्त और दास्य परस्पर मित्र हैं, सखा और वात्सल्य उनसे उदासीन भाव रखते हैं । परन्तु उज्ज्वल रस से उनकी शत्रुता है । सख्य और उज्ज्वल की परस्पर मैत्री है ।

रागानुगा भक्ति के प्रेमा, परा और प्रीड़ा तीन भेद और बतलाए गए हैं । ये साधना मार्ग में क्रमशः प्रवेश उसमें गम्भीरता दृढ़ता और प्रभु सानिध्य की विशेषता पर निर्भर है ।

प्रेमा भक्ति - प्रभु के प्रति स्नेह वृत्ति का उदय जो सद्गुरु अव्या

सन्त भक्तों के सानिध्य में रहते हुए श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति की समुचित रूप से परिपालना करने के फल स्वरूप होता है उसे प्रेमा भक्ति कहते हैं। इससे साधक के समस्त दोष विकार और पाप तापों का शमन होकर उसमें प्रभु के प्रति प्रेम भाव वेग वान वर्णा की नदी की भाँति उमड़ने लगता है।

परा भक्ति - , परा का अर्थ है कुशलता अथवा प्रवीणता साधक जब अपने निजी लौकिक सत्त्व को छोड़कर प्रभु के साथ किसी संन्वय सूत्र(भाव)में दृढ़ता पूर्वक बंध जाता है उसमें परिपक्वता आजाती है, भावना में स्थिरता आकर वह स्थित प्रज्ञ होजाता है और अन्य समस्त भावों और व्यापारों का उसे विस्मरण होजाता है तो इस अनुभवगम्य भक्ति की स्थिति को परा भक्ति कहते हैं।<sup>१</sup>

प्रीढ़ा भक्ति - यह साधना की उच्चतम अवस्था है। इसमें उसकी समस्त वृत्तियों का एकान्त निरोध होकर प्रभु से तादात्म्य लाभ करता है। आचार्यों ने प्रीढ़ा भक्ति का शिलेक्षण करते हुए कहा है कि सर्व प्रथम साधक का महाप्रभु रसराज के लोक में प्रवेश होता है जिसका रसास्वादन करने पर उसे अपने दिव्य स्वरूप की क्रमशः पूर्ण आवेश मयी स्थिति बनजाती है और तदनन्तर तीव्र विरहानल का उदय होता है। जैसे चैतन्य महाप्रभु का राधाभाव। जिसमें उन प्रभु के साथ अपने को आत्मसात करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता। प्रेमा और पूरा भक्ति का दर्शन तो दास्य, सख्य और वात्सल्यादि रसों में होजाता है परन्तु प्रीढ़ा भक्ति की प्राप्ति का एक मात्र माध्यम रसराज शृंगार ही है। प्रीढ़ा भक्ति वास्तव में परमपुरुषार्थ स्वरूपा साध्या भक्ति है जिसे प्राप्त कर साधक स्थिरमन, स्थिर गति, और स्थित प्रज्ञ होकर एक मात्र प्रभु से तादात्म्य का अभिलाषी होता है।<sup>१</sup> उसके समस्त आश्रय छूट जाते हैं। केवल इन दिव्य युगल की शरणागति ही एक मात्र साधन रहजाती है।

प्रीढ़ा भक्ति का विकास - क्रम इस प्रकार है कि पहले दिव्य साकेत घाम अथवा वृन्दावन में युगल प्रभु के श्री अंगों से कौटि कौटि सखियों का उन प्रभु की लीला विलास की कामना की पूर्ति हेतु आविर्भाव होता है। इन सखियों की

कृपा दृष्टि से साधक के मन में प्रीतिरूपा भक्ति का उदय होता है और रसराज की उपासना में अधिकार लाभ होता है । साधना और सुकृति इस में सहायक अवश्य होते हैं परन्तु वास्तव में यथार्थ लाभ उनकी कृपा का ही परिणाम है ।

इस साधना और प्रभु कृपा के रसराज में प्रवेश, उन प्रिया प्रियतम के चिद्धिलास का दर्शन तथा पवित्र नित्य विहार का परात्परतम दर्शन लाभ विशेष फल है । जिन्हें पाकर जीव परम कृतकृत्य और पूर्ण काम होजाता है । इस आत्म रति या आत्मरमण की स्थिति में पुरुष या स्त्री सभी को समान रूप से प्रवेशाधिकार होता है क्योंकि जीव न तो स्त्री है न पुरुष है और न नपुंसक<sup>१</sup> । वह जो जो शरीर धारण करता है वह धर्मानुसार उसका अभिमानी होता है । भक्त और भगवान के मध्य स्वामी-सेवक, सखा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि किसी भी प्रकार का सम्बन्ध संभव है । अतः हम अगले अध्याय में साधना द्वारा सिद्ध देह की प्राप्ति भगवदाश्रयता की प्राप्ति का सम्यक लाभ इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करेंगे ।

---

१ नैव स्त्री न पुमानेषु न चैवाय नपुंसकः ।

यद्यच्छरीमाधये तेन तेन सरस्यते ।

श्वेताश्वरोपनिषद् ५।१०

## तृतीय - अध्याय

साधक से सिद्ध देह

---

संसार में प्रत्येक जीव की रुचि और प्रवृत्ति भिन्न भिन्न होती है । उसी के अनुसार उसकी अभीष्ट अथवा काम्य वस्तु निर्धारित होती है । जो जीव मायाबद्ध हैं उन्हें देह-इन्द्रिय सुख ही अभीष्ट होता है । वे केवल स्थूल-इन्द्रिय भोग-आहार-निद्रा-मैथुन ही जीवन का लक्ष्य बनाए हुए हैं । यह पाशविक स्थिति है । मनुष्यों में भी ऐसी पशु-प्रकृति के लोग हैं जो शिरनोदर-प्रायणता के बिना अन्य कुछ जानते ही नहीं । इनके इन्द्रिय सुख भोग के साधन या उपाय शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से समर्थन योग्य हैं या नहीं इस बात को उन्हें कोई चिन्ता नहीं है । इस श्रेणी का पुरुषार्थ "काम" कहलाता है ।

इनके अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी के मनुष्य हैं जो इन्द्रिय भोग तो चाहते हैं परन्तु उनके ( स्थूल भोगों के ) सम्बन्ध में जो साधन संगठित करने हैं उसके सम्बन्ध में वे विवेचनाशील हैं । उनकी भोगेच्छा एक नीति, एक सिद्धान्त पर प्रतिष्ठापित है जिससे उनके नैतिक जीवन की अधः पतन की बहुत कम सम्भावना रहती है । सिद्धान्त से गिरने पर उन्हें अनुताप होता है , आत्म शोधन का प्रयास उनकी रुचि का एक अंग होता है । वे संयम शून्य नहीं होते और समाज में मान सम्मान के एक स्तर पर प्रतिष्ठापित रहने की उनकी आकांक्षा रहती है । परोपकार में भी यथा शक्ति उनकी अनुकूलता रहती है । परोपकार में भी यथाशक्ति उनकी अनुकूलता रहती है जिसके लिए वे अर्थ-संचय में निरत रहते हैं । समाज में उल्लिखित रूप से जीवन यात्रा का निवाह उनका प्रधान लक्ष्य है । इस श्रेणी के व्यक्तियों का "अर्थ" पुरुषार्थ कहलाता है ।

---



तीसरी श्रेणी के वे व्यक्ति हैं जो दूसरी श्रेणी के लोगों की तरह भोग तो चाहते हैं परन्तु केवल संसार के भोगों से उनकी तृप्ति नहीं होती । वे मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग सुख भोगों की कामना के आकांक्षी होते हैं । और उनके लिये धर्मानुष्ठान करते हैं । शास्त्र का उद्घोष है कि - स्वधर्म अनुष्ठान से इह काल एवं परकाल के सुख भोग मिल सकते हैं । अतः स्वधर्मानुष्ठान उनका लक्ष्य बन जाता है । ऐसे लोगों का पुरुषार्थ 'धर्म' कहलाता है ।

उक्त तीनों प्रकार के पुरुषार्थों का पर्यवसान शरीर एवं ऐन्द्रिय सुख में है । स्वर्ग सुख भी देह का ही सुख है । स्वर्ग सुख भोगने के पश्चात् जीव को पुनः मृत्यु लोक में जाना पड़ता है ।

सांसारिक सुख दुःख सम्बन्धित है उसका प्रतीतफल दुःखमय एवं अनित्य है । अधिक से अधिक मृत्यु के समय तक वह स्थायी रहता है उसके अनन्तर तो जन्म-मृत्यु एवं नरक भोग का कष्ट जीव को उठाना पड़ता है ।

चौथी श्रेणी के लोग वे हैं जिन की धारणा है कि सांसारिक काम, अर्थ और धर्म वास्तविक निखरिन्न सुख प्रदान नहीं कर सकते । वे एक ऐसा सुख ढूँढना चाहते हैं जो अनित्य न हो । देह अनित्य है । अतः वे समस्त सुख भी वैसे ही हैं । अतः सिद्धान्त निकला कि जब तक जीव का अनित्य-देह-सम्बन्ध है तब तक जीव नित्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता । माया बंधन होने से जीव को मायिक देह सम्बन्ध लगा हुआ है माया बन्धन दूर होने पर ही वह सम्बन्ध छूटना संभव है । इस माया बंधन द्वारा किसी प्रकार जीवन निर्वह करके धर्मानुष्ठान एवं तत्त्व निर्धारिणी जिज्ञासा को अपना कर्तव्य मानते हैं । मोक्षा प्राप्ति के अनन्तर सांसारिक आवागमन का अवसान और दुःख की आत्यन्तिकी निवृत्ति होजाती है और नित्य चिन्मय ब्रह्म के साक्षात्कार की अनुभूति होती है । उपरोक्त चारों पुरुषार्थों में से प्रवृत्ति लक्षणा धर्म द्वारा विवर्ग(काम-अर्थ-धर्म) की प्राप्ति होती है और निवृत्ति लक्षणा धर्म द्वारा मोक्षा की प्राप्ति संभव है । फिर भी मोक्षा द्वारा जो चिन्मय ब्रह्मानन्द में लोभ उत्पन्न होता है वह सर्वोत्कृष्ट नहीं है क्योंकि

१ श्रीमद् वैष्णव-सिद्धान्त रत्न संग्रह रत्न १२ पृष्ठ १३५

२ 'दीणो पुन्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' श्रीमद् भगवत गीता ६-२१

ब्रह्मानन्द निर्विशेष ब्रह्म सामुज्य से प्राप्त होता है परन्तु निर्विशेष ब्रह्म में स्वल्प शक्ति का प्रसार न होने से उसमें आनन्द की वैचित्री नहीं है । वह केवल आनन्द - सत्ता मात्र है । ब्रह्म का पूर्ण तम विकास ही सर्वतम अभीष्ट वस्तु है । निर्विशेष ब्रह्म में रसत्व का न्यून तम विकास है , अतः वह जीव का परम इष्ट नहीं । इस प्रकार मोक्षा की निस्सारता स्वयं सिद्ध है ।

मोक्षा से भी ऊपर जीव का परम अभीप्सित लक्ष्य श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम ( इष्ट ) का प्रेम है । श्री कृष्ण का माधुर्यनिन्द अत्यधिक लोभ की वस्तु है इस कारण आत्माराम-जीव मुक्त ब्रह्मानन्द मग्न मुनिजन भी श्रीकृष्ण माधुर्य से सिक्त उन की कथा सुनते हैं और सदैव उस माधुर्य के आस्वादन की लीला में लालसा में उनकी प्रेमावलम्बि के लिए निरंतर भजन में रत रहते हैं ।<sup>१</sup>

नृसिंह तापिनी श्रुति<sup>२</sup> २-५-१६ एवं अन्य श्रुतियों में निर्दिष्ट है कि मुक्ति प्राप्त होने पर भी उपासना का विधान है और फलानुसंधान न रहने पर भी वस्तु के सौंदर्य प्रभाव से ही मुक्त व्यक्ति श्रीकृष्ण-भजन में विरत रहते हैं । इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जैसे पित दग्ध मनुष्य का मिश्री सेवन द्वारा पित नाश होजाता है परन्तु उसके सुस्वादु से तृप्त और उल्लसित होकर वह उसके भक्षण के लिए उत्सुक रहता है । उसी प्रकार मुक्तावस्था में भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य माधुर्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर<sup>मुक्त</sup> पुरुष उनके भजन में संलग्न रहते हैं । इस परम दिव्य आनन्द की राशि अपने इष्ट की माधुर्य राशि के अस्वादन का एक मात्र उपाय 'प्रेम' है । जो मोक्षा की अपेक्षा श्रेष्ठ है । इस प्रेम पुरुषार्थ के द्वारा चरमतम काम्य वस्तु की प्राप्ति होती है । साधक अवस्था में विधिविधान और कठोर यम नियमों का पालन करता हुआ जीव महान आनन्द मयी सिद्ध नेह की उपलब्धि कर भूखिरभाग बन जाता है उसका आगे की पंक्तियों में संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया जायगा ।

१ आत्मारामाश्रय मुनयो निर्ग्रन्था अस्यसम्प्रे ।

कुर्वन्त्य हैतुकी भक्तिमिथ्यम्भूतो गुणो हरिः ॥

श्रीमद् भागवत १-७-१०

२ 'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते'

नृसिंह तापिनी श्रुति - २-५-१६ शंकरभाष्य

‘तद भाव भावित स्वान्ताः कृष्ण भक्त इतीरता’ अर्थात् जिनका अन्तःकरण श्रीकृष्ण भाव से भावित हो चुका है जो श्रीकृष्ण प्रेम की अनन्यता से पूर्ण रूपेण सम्पृक्त हो चुके हैं - वे श्रीकृष्ण भक्त हैं । उनके दो प्रकार हैं ( १ ) साधक भक्त दूसरे ( २ ) सिद्ध भक्त ।

साधक भक्त वे हैं जिनकी श्रीकृष्ण के विषय में रुचि तो पैदा होगयी है परन्तु सम्पूर्ण रूप से जिनके अनर्थों की निवृत्ति नहीं हो पाई है । उनमें अनेक शुभ लक्षणाओं का समावेश होगया है । इन लक्षणाओं से युक्त कृष्णम सद्भावात्कार की योग्यता प्राप्त कर वे साधक भक्त कहलाते हैं । श्रीमद् भागवत में इन भक्तों के लक्षणाओं की चर्चा करते हुए उनकी ४ विशेषताओं का उल्लेख किया गया है ।

१- ईश्वर के प्रति प्रेम - परम आराध्य सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के प्रति

प्रेम (शुद्ध भक्ति) अर्थात् उनके प्रति अन्य

सभी कामनाओं से रहित होकर समस्त चेष्टाओं का परित्याग करके इन्द्रियों द्वारा उनका अनुशीलन । यही उनका वास्तविक प्रेम है । साधक भक्तों में प्रभु प्राप्ति के साधनों की चेष्टा से भाव और प्रेम की दशा प्राप्त होती है ।

२- भगवान् के अधीन भक्तों के प्रति ‘मैत्री भाव’ - जिन भक्तों के हृदय में उत्तम या शुद्ध भक्ति का आविर्भाव हो चुका है वे भगवान् के अधीन भक्त कहलाते हैं । साधक भक्त उनक अधीन भक्तों से मैत्री भाव रखता है । साधक भक्तों से पूर्व की स्थिति कनिष्ठ भक्तों की है जो भगवान् के अधीन शुद्ध भक्त नहीं होते और वे शुद्ध भक्तों का समादर भी नहीं करते । उनमें केवल अर्चा पूजा की प्रधानता होती है उनके मुख से शुद्ध कृष्ण नाम भी नहीं निकलता केवल नामाभास होता है । ऐसे भक्तों की सेवा शुद्ध वैष्णवी सेवा नहीं है । अतः साधक भक्त सदैव अधीन भक्तों की अभ्यर्थना करते हैं, उनसे प्रेमालाप के लिए उत्सुक रहते हैं और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लालायित रहते हैं । उनकी कुलूपता से घृणानहीं करते और उनकी रुग्णता से जुगुप्सा नहीं करते ।

१ ईश्वरे तद्धीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु च

प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

श्रीमद् भागवत ११।२।४६

३- बालिशों पर कृपा - बालिश शब्द से मूढ़ या मूर्ख मनुष्य का तात्पर्य है ।

जो प्रतत्त्वज्ञ है, जिन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिली है, जो यद्यपि भक्ति और भक्तों से विद्वेष्ट नहीं करते परन्तु साथ ही अहंता और ममता के आधिक्य से उनमें ईश्वर में श्रद्धा का अभाव और समंन्वित विषया शक्ति की प्रवृत्ति होती है । वे बालिश मनुष्य हैं । पढ़ लिख कर जो पांडित्य परायण हैं परन्तु जिनके मन में भगवान् का विश्वास नहीं वे भी बालिश हैं । साधक भक्त इन बालिशों से कृपा का व्यवहार करते हैं । उनके द्वारा बालिशों में शुद्ध हरिनाम में रुचि उत्पन्न होती है और भगवान् के प्रति सम्बन्ध तत्व की स्थिरता होती है ।

४- द्वेषी मनुष्यों की उपेक्षा - प्रेम की विरोधी प्रवृत्ति का नाम 'द्वेष' है इसे 'मत्सरता' भी कहते हैं । प्रेम के एक मात्र इष्ट भगवान् ही हैं अतः ईश्वर के प्रति हमारे मन में जो प्रीति है उसके विपरीत उनसे संघर्ष रखना, उदासीनता का भाव रखना अथवा प्रतिकूल आचरण करना 'द्वेष' कहलाता है । इस द्वेष के पाँच प्रकार बतलाए गए हैं -

(१) भगवान् में विश्वास न रखना ।

(२) उनकी कर्म मल्ल फल से उत्पन्न स्वभाव शक्ति मानना ।

(३) भगवान् की विशेष शक्ति, सामर्थ्य और उनके कृपा फल में अविश्वास करना ।

(४) जीवों को ईश्वर के नित्य रूप के अधीन न मानना ।

(५) दयाशून्यता ।

उपरोक्त दुर्गुणों से पूर्ण व्यक्ति किसी भी दशा में शुद्ध भक्ति प्राप्त नहीं कर सकते । वे तो भगवान् की अर्वा भक्ति से भी शून्य होते हैं । जीवों को ईश्वर के नित्य रूप के अधीन न मानना और उनके प्रति दया का व्यवहार न करना एक प्रकार की नास्तिकता ही है । साधक भक्त ऐसे व्यक्तियों के प्रति 'उपेक्षा' का भाव रखते हैं । उपेक्षा से तात्पर्य लोक-समाज में रह कर पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धों का विच्छेद नहीं करना जहाँ तक पारमार्थिक व्यवहार का प्रश्न है उन विषयों में साधक भक्त उनका संग नहीं करते । परमार्थ के विषयों में उनसे मिलना, बातलाप करना, परस्पर उपकार सेवा का आयोजन इस प्रकार के कार्य

पारमार्थिक संग कल्लाते हैं। इन अवसरों पर विद्वेष्टी व्यक्तियों का मेल्योग न करना ही उपेक्षा भाव है। द्वेष्टी व्यक्ति प्रायः विभिन्न प्रकार के मतवादों में पड़ जाते हैं और भक्ति तथा भक्तों की प्रशंसा से द्रुव्य होकर वाद विवादों में आलू देखे जाते हैं उनसे किसी प्रकार के कल्याण अथवा उपकार की आशा नहीं, वरन् उनके निरर्थक तर्कों से दूर रहना श्रेयस्कर है। अतः ऐसे पुरुषों का साधक भक्त व्यावहारिक संग मात्र करते हैं। इनका स्थान वालिशों से भी निम्न कोटि का है। श्री मद् भागवत में निर्देश किया गया है<sup>१</sup> कि धर्म में निष्ठा रखना जीव मात्र का गुण है और उसके विपरीत चेष्टा करना हो दोष है। अतः उपकार करना साधक का अभीष्ट है परन्तु उसमें अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है।

साधक भक्त में अन्तर्मुख या कृष्णोन्मुख श्रेणी के व्यक्तियों के गुणों का समावेश भी परमावश्यक माना गया है। ~~कृष्णोन्मुख श्रेणी के व्यक्तियों के गुणों का समावेश भी परमावश्यक माना गया है।~~ कृष्णोन्मुख पुरुष धर्मपरायण एवं कर्तव्याकर्तव्य के विवेक से पूर्ण होते हैं। इन लोगों के लिए मनुस्मृति में निर्दिष्ट किया गया है कि धृति (सन्तोष), दामा, दूसरों के अपकारों के बदले उपकार, दमस्त्रि (विकार का कारण उपस्थित होने पर भी मन को विकृत न करना), अस्तेय (चोरी), शौच (पवित्रता) स्नेह-मरम-मन-क्रो-विकृत-न-करना- इन्द्रिय निग्रह, धी (शास्त्र आदि का तत्त्वज्ञान), विद्या (आत्म ज्ञान) सत्य, अक्रोध (क्रोध का कारण उपस्थित रहने पर भी क्रोध न करना) धर्म के दस लक्षण हैं। जिनमें से प्रथम ६ तो अपने प्रति कर्तव्य से सम्बन्धित हैं। शेष ४ दूसरों के प्रति कर्तव्य हैं। इन दसों का पालन करने से सम्पूर्ण मानव जीवन कल्याण मय होजाता है। विष्णु धर्मोत्तर में कृष्ण भक्ति से शून्य मनुष्य को मनुष्य कल्लाने का अधिकारी नहीं माना है। अतः साधक भक्त में भक्ति के प्रारम्भिक संस्कार की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। साधक भक्तों में एक कनिष्ठ भक्त भी है। जिन लोगों ने भक्ति मार्ग में प्रवेश भर किया है परन्तु

१ स्वे स्वे धिकारे या निष्ठा सः गुणः परकीर्तितः ।

विषयस्तु दोषः स्यादुभयोरेण निणयिः ॥ श्रीमद्भागवत ११।२२।२

२ धृतिः दामा दमस्त्रि स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धी विद्या-सत्यमक्रोधो दशकं कर्म-लक्षणम् ॥ मनुस्मृति ६।६२

३ जीवितं विष्णु भक्तस्य वरपंचदिनानि च ।

न तु कल्पे सहस्राणि भक्ति-हीनस्य केशवे ॥ विष्णुधर्मोत्तर

भक्तों की पूरी विशेषताएँ जिनमें विकसित नहीं हो पाई हैं वे "कनिष्ठ भक्त" कहलाते हैं। साधना की दृष्टि से वे साधक भक्तों से हीन हैं। उनमें श्री मूर्ति की श्रद्धापूर्वक पूजा अर्चा की प्रवृत्ति तो लक्षित होती है परन्तु वे भगवान् के भक्तों की और दूसरे अन्य जीवों की विशेष सेवा सुश्रूषा नहीं करते। अतः "कनिष्ठ भक्त" या प्राकृता भक्त कहे जाते हैं। क्योंकि -

अर्चयामेव हरये पूजां यः श्रद्धये हते ।

न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्रकृतः स्मृतः ॥

श्रीमद् भागवत ११।२।४७

श्रीमद्भागवत को उक्त के अनुसार श्रद्धा ही भक्ति की जड़ है। और श्रद्धा पूर्वक भगवान् की पूजा करने से ही भक्ति की प्राप्ति होती है परन्तु यह भी सर्वथा सत्य है कि भक्त की सेवा सुश्रूषा किये बिना केवल भगवान् की पूजा मात्र को शुद्ध भक्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि उससे भक्ति के पूर्ण स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं होती। उसके द्वार में प्रवेश मात्र होता है। भगवान् भक्तों के वशीभूत हैं इस कारण भगवत् कृपा की परम कृपा सापेक्षा है। हमारा पाँच भौतिक स्थूल देह जब भगवद् साधना में संलग्न होजाता है जब उसे साधक देह कहते हैं। साधक देह की प्रति परिपक्वावस्था सिद्ध देह कहलाती है। इसकी साधक देह वाले महानुभाव भावना करते हैं और उस भावना मय सिद्ध देह के द्वारा भगवान् की मानसी सेवा में रत होजाते हैं। कुछ ऐसे सौभाग्यशाली साधक होते हैं जिनको ही सिद्ध देह की भावना नहीं करनी पड़ती वरन् उन्हें भगवत्कृपा से स्वयं स्फूर्ति ही सिद्ध देह की प्रमुख विशेषता है। उससे महान सौभाग्यशाली साधक सिद्ध देह के द्वारा श्री राधा माधव की मधुर तम निकुंज सेवा में नियुक्त रहकर नित्य निरतिशय परमानन्द सागर में नियन्त्रित रहते हैं। अतः सिद्ध देह साधारण साधकों की अस्मि-मांस-रक्त मय जड़ देह नहीं है और वह सांख्य शास्त्रोक्त सूक्ष्म वा कारण देह भी नहीं है वरन् इन सबसे परे दिव्य आनन्द से युक्त चिन्मय रस से भावित नित्य शुद्ध परम सुन्दरतम सच्चिदानन्द रसमय विग्रह है। वैष्णव साधना के क्षेत्र में इस दिव्य साधना को रसमयी मूर्ति को 'मंजरी' की संज्ञा दी गई है। यह देह नित्य सुंदर, नित्य मधुर, नित्य नव सुषमा सम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल है। उस

पर देश काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इसमार्ग की साधना की परिपक्व अवस्था में सिद्ध देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है ।<sup>१</sup> पांच्य भौतिक देह नष्ट होजाती है परन्तु सत्ति सच्चिदानंद रस मय विग्रह संपुष्ट मंजरियों व्रज सुन्दरियों का भावावेश लिए भगवान् के प्रेम धाम में आनन्द स्फूर्ति धारण किये श्री युगल स्वरूप की सेवा में संलग्न रहती है । इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि साधन द्वारा जब भाव स्फुरण होकर महाभाव की प्रगाढ़ता आने लगे और भावदेह की अवस्थिति में प्रवेश होजाय तब सिद्ध देह की प्राप्ति होने लगती है। सिद्ध देह में मंजरियों की स्फूर्ति और उनकी तद्रूपता प्राप्त होजाती है । यह साधना परम गोपनीय है । इस भाव मार्ग के ८ स्तर माने गए हैं । यथा रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव । इनमें रति की स्थिति सर्व प्रथम है । रति से तात्पर्य है कि जब लोक परलोक के सम्स्त भोगों से विमुख होकर यहाँ तक कि मोक्षा से भी विरति होकर साधक की बब केवल भगवच्चरणारविन्द में लगन, लगजाय तब 'रति' की अवस्था है । साधक के मन में यह भावना अत्यन्त दृढ़ रूप से बैठकर जाय कि लोक परलोक में सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा मेरा श्रीकृष्ण अथवा श्री राम के अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मीय कभी किसी काल में भी नहीं है- और इस प्रकार दूरी वस्तु मात्र या तत्त्व का अभाव होजाय तब रति का जाग्रण मानना चाहिये । इस अवस्था में द्वैत के अभाव से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, असूया आदि दोषों का स्वयं परिहार होजाता है । एक प्रकार से ये सब तो साधक देह में ही सम्प्राप्त होजाते हैं । सिद्ध देह में तो निरंतर कृष्ण लीला-नुभूति के अतिरिक्त और कुछ अवशेष रहता ही नहीं ।

रागानुगा मार्ग में मधुरमग्न के उपासकों का सिद्ध देह गोप किशोरी देह है । साधक का इस देह में राधा दासी का अभिमान होता है । श्री राधा की दासियों को 'मंजरी' कहते हैं । उनमें श्री राधा की नित्यसिद्धा मंजरियों भी होती हैं जो स्वल्प शक्ति का विलास हैं । इन नित्यसिद्धा मंजरियों में श्री रूप मंजरी सर्व प्रधानात्मक है । सिद्ध देह धारण किये साधक को मन-मन में चिन्तना करनी चाहिये कि श्री राधा कृष्ण की अष्टकालीन लीला में वह श्री युगल किशोर की रूप मंजरी के आनुगम में गुरु रूपा मंजरी के आदेश से सेवा संलग्न है । इस प्रकार की चिन्ता 'मानसी-सेवा' की सहोदरा है । शास्त्रों में सिद्ध देह को पार्श्व देह की संज्ञा से भी सम्बोधित किया गया है ।

सिद्ध देह की प्राप्ति की प्रक्रिया - पिछले पृष्ठों में भक्ति का आश्रय लेकर युगल  
 किशोर की नित्यलीला प्रवेश के जो संकेत दिये  
 गये हैं उनसे स्पष्ट है कि भगवान् की मधुर लीला में प्रवेश के लिये साधना की  
 आवश्यकता है। साधना के लिए श्रद्धा की अनिवार्यता है। जिसमें श्रद्धा है वही  
 भक्ति का अधिकारी है। भक्ति के अनुष्ठान द्वारा उसी को फल प्राप्त होसकता  
 है। श्रीमद् भागवत् में कहा गया है कि श्री कृष्ण की महिमा जानने वाले सद्  
 भक्तों का संग करने से उनके मुख निरसृत हरि गुण कीर्तन रूपी रसायन के श्रवण द्वारा  
 श्रद्धा का उदय होता है। श्रद्धा युक्त व्यक्ति के चित्त में भक्ति का विकास होता  
 है। श्रद्धा का उदय प्रभु कृपा से भाग्यवशात् ही होता है। उससे ही साधुसंग की  
 प्राप्ति होती है। साधु संग से श्रवण कीर्तन आदि भजन - क्रिया का सूत्रपात होता  
 है। उससे ( भजन क्रिया से ) दुवासिनाओं का विनाश और अनर्थों की निवृत्ति  
 होती है। अनर्थ निवृत्ति से भक्ति के अंगों में निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठा  
 पूर्णता से भक्ति अंगों का अनुष्ठान करते करते श्रवण कीर्तन आदि में रुचि उत्पन्न  
 होती है और प्रभु में आसक्ति बढ़ती है। आसक्ति के गाढ़ होने पर श्री कृष्ण  
 रति विषयक भाव उत्पन्न होता है। यही रति गाढ़ होकर प्रेम नाम की प्राप्ति  
 होती है जो श्री कृष्ण सानिध्य की उपलब्धि का मुख्यहेतु है।

श्रद्धा के उदय से लेकर श्रीकृष्ण रति की उद्भावना तक की समस्त  
 प्रक्रिया वैधी और रागानुगा भक्ति के विकास क्रम के अंतर्गत है। वैधी और रागानुगा  
 भक्ति का साधना क्रम एक ही है। उनका अंतर केवल यह है कि वैधी भक्ति प्रारम्भिक  
 दशा है जिसमें शास्त्र शासन की भय और भगवान् को ऐश्वर्य मानना का निरंतर  
 ध्यान साधक भक्त के हृदय में बनारहता है। रागानुगा भक्ति उसकी यथेष्ट  
 विकसित दशा है जिसमें भक्त श्रीकृष्ण के माधुर्य में आप्लावित हुआ उनके सेवा-

१ सतां प्रसङ्गान्ममवीर्यसंविदौ भवन्ति- त्कणरिसायनाः कथाः ।

श्रीमद्भागवत ३-२५-२४

२ एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध, तुलसी संगति साधु की हरे कोटि अपराध  
 रामचरितमानस

३ आदौ श्रद्धा ततः साधु संगों थ भजन क्रिया,  
 ततो नर्थ निवृत्तिः स्योततो निष्ठा रुचिस्ततः ।  
 अयासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदयति,  
 साधकानामय प्रेम्नः प्रादुर्भावो भवेत्तत्क्रमः ॥

भक्ति रसामृत सिन्धु १-४-११



सानिध्य की योग्यता की प्राप्ति के निमित्त भजन में प्रवृत्त रहता है । ब्रजवासी जिस प्रेमासक्ति के साथ श्रीकृष्णानुराग में अनुरक्त रहते हैं उसकी अनुगता भक्ति रागानुगा है । इसमें श्रीकृष्ण सेवा का लोभ और उनके माधुर्य का आकर्षण भजन का प्रेरक है । वैधी और रागानुगा भक्ति के अनुष्ठानों में बाहरी दृष्टि से अंतर नहीं है परन्तु साधकों की मनोवृत्ति की दृष्टि से उनमें विशेष्य पार्थक्य है । "वैष्णव-सिद्धान्त-रत्न-संग्रह" में इसे स्पष्ट करते हुए इंगित किया गया है कि जैसे पाकशाला के रसोइये का उद्देश्य भोजन बनाकर भोजन कर्तव्यों का काम निपटाकर अपनी नौकरी पर सुरक्षित रखने से तात्पर्य है वैधी भक्ति का साधक उसी प्रकार नरक के भय से एकादशी व्रतादि के अनुष्ठान रक्ता है परन्तु उसमें वास्तविक प्रीति नहीं होती परन्तु जैसे माँ या पत्नी या पुत्र<sup>पुत्र</sup> के लिये जिस रुचि और प्रीति से भोजन बनाकर अतिशय निष्ठा सहित उनको भोजन कराती है रसोइया उससे सौ-सौ कोस दूर है । रागानुगा भक्ति का साधक भगवान् का प्रीति-लाभ एक मात्र उद्देश्य समझता हुआ उसी निमित्त एकादशी व्रत आदि का अनुष्ठान करता है । इस प्रकार दोनों में भाव का अंतर है । साधन का नहीं ।

वैधी भक्ति के साधन के ६४ अंगों का शास्त्रों में वर्णन है । इनमें से श्री गुरुपादाश्रय ग्रहण से आमल के पीपल आदि वृक्षां को गौरवदान प्रथम दस ग्रहणात्मक अंग साधन हैं । उससे आगे संख्या ग्यारह कृष्ण विमुखों का संग त्याग से लेकर श्रीकृष्ण की एवं भक्तों की निन्दा में असहिष्णुता वर्जनात्मक अंग साधन हैं जिनका त्याग करना साधक का प्रमुख कर्तव्य है । इन बीस प्रकार के अंगों को भक्ति का प्रवेश द्वारा समझना चाहिये । शेष ४४ उन्मेषक (अंग) साधन कहलाते हैं । यथा- (२१) वैष्णव चिन्ह धारण- (२२) हरिनाम के अक्षरों को धारण करना (२३) निमाल्यादि का धारण (२४) भगवान् के सम्मुख नृत्य (२५) श्री गुरु वैष्णव और भगवान् को दण्डवत् प्रणाम (२६) उन्हें दर्शनकर आसन से उठकर अभिवादन, (२७) श्री मूर्ति की अनुव्रज्या अर्थात् अनुगमन करना, (२८) भगवान् के मंदिरों में जाना, (२९) मंदिर परिक्रमा, (३०) अर्चन, (३१) परिचर्या (सेवा), (३२) गान, (३३) भगवत् कृपा की प्रतीक्षा, (३४) त्रिसंध्याओं में आचमन पूर्वक जप, (३५) विज्ञप्ति अर्थात् दीनता पूर्वक प्रार्थना करना, (३६) स्तव (कीर्तिगान), (३७) भगवत् प्रसाद का आस्वादन, (३८) श्री चरणामृत पान करना (३९) धूप-माल्यादि का सौम्य ग्रहण, (४०) श्री मूर्ति का स्पर्श (४१) श्री मुनि का दर्शन, (४२) वारंती और उत्सव आदि के दर्शन, (४३) श्री हरि के

१- इस निबंध की पृष्ठ सं० २५ अध्याय २ भक्ति के भेद ।  
२- भक्ति रसामृत सिन्धु पूर्व विभाग। साधन भक्ति लहरी पृष्ठ ४२

रूप, गुण और लीलाओं का श्रवण, (४४) संकीर्तन, (४५) स्मरण, (४६) ध्यान, (४७) दास्य, (४८) सख्य, (४९) आत्म समर्पण, (५०) कृष्ण को सर्व प्रिय वस्तु का समर्पण, (५१) श्री कृष्ण के सुख के लिए निरंतर चेष्टा, (५२) मगवान् के चरणों में शाखागति, (५३) तुलसी सेवा, (५४) श्रीमद्भागवत आदि भक्ति ग्रन्थों को सम्मान देना, (५५) मगवान् के आर्षिभाव स्थान मथुरा आदि का माहात्म्य श्रवण और कीर्तन करना तथा उन घामों की परिक्रमा आदि करना, (५६) वैष्णवों की सेवा (५७) शक्ति के अनुसार प्राप्त सामग्रियों में से साधुओं की गोष्ठी में महोत्सव, (५८) चातुर्मास्य व्रत और विशेष रूप से कार्तिक मास में नियम सेवा का पालन (५९) मगवान् के जन्म के दिन उत्सव, (६०) श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्ति की पूजा (६१) रसिक भक्तों के साथ श्री मद्भागवत का अर्थ आस्वादन करना, (६२) स्वजातीय स्निग्ध अथवा अपने १ श्रेष्ठ साधुसंतों का संग, (६३) श्री नाम संकीर्तन और (६४) मथुरा आदि मगवद्वाम में भक्ति ।

इनमें अंतिम पांच अंगों का वर्णन यद्यपि श्री रूप गोस्वामी ने अन्य अंगों के साथ ही किया है परन्तु इन पांचों को अत्यन्त श्रेष्ठ माना है । इनका नाम पंचांग-भक्ति भी है । इन सब अंगों का शरीर, इन्द्रियाँ और अंतःकरण के द्वारा पालन कर श्रीकृष्ण की उपासना की जाती है ।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन, परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन जो नवधा भक्ति के अंतर्गत हैं वे इन ४४ अंगों का सार हैं । संख्या २१ से ४९ तक के अंग कृष्ण दीक्षा आदि ग्रहणात्मक अंग संस्था (अर्थात् श्रीकृष्ण दीक्षा शिक्षा के अंतर्गत हैं) इन चवालीस अंगों में से १-श्री साधु संग, २-श्रीनाम संकीर्तन, ३- श्री मद् भागवत श्रवण, (४) मथुरावास या व्रजवास, ५- श्रद्धा सहित श्री मूर्ति पूजन इन पांच अंगों का उत्कर्ष महाप्रभु ने स्वीकार किया है ।<sup>१</sup> इन पांचों में भी श्री नाम संकीर्तन को सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । वह सर्व विधि भक्ति साधन है ।<sup>२</sup> कलियुग में उससे अच्छा कोई उपाय नहीं है ।

१ कृष्ण प्रेम जन्माय एह पांचैर अल्प संहग ।

२ नवधा भक्ति पूर्ण ह्य नाम हैते ॥

नाम-संकीर्तन क्ली परम उपाय ॥

संकीर्तन यज्ञे क्ली कृष्ण आराधन ।



सिखा है कि वेद की मली मांति जानने वाले भगवत्सेवा परायण, ब्रह्मज्ञानी  
सद्गुरु के पास भगवद् वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर  
गमन करना चाहिये । इस प्रकार भगवत् सानिध्य कराने में सद्गुरु का बहुत  
अधिक महत्त्व है ।

शास्त्रों में सद्गुरु की महत्ता के साथ उनकी विशेषताओं का  
विस्तृत वर्णन किया गया है । उनके लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है  
कि शुद्ध चरित्र से सम्पन्न, भक्ति तत्त्व का ज्ञाता, सरल, निर्लौभ, मायावाद से  
परे और कार्य दक्ष पुरुष ही सद्गुरु है, उपरोक्त गुणों से युक्त समाज में  
लघु प्रतिष्ठ पुरुष यदि ब्राह्मण हो तो और भी उत्तम है क्योंकि ऐसे व्यक्ति  
से आर्य वंश में उत्पन्न वर्णाभिमानि समाज में कुछ सुविधा रहती है अन्यथा वर्णाश्रम  
का विचार छोड़कर उच्चवर्ण के उपयुक्त गुणों से सम्पन्न किसी व्यक्ति को गुरु  
रूप में स्वीकार किया जा सकता है । मूल तात्पर्य यह है कि वस्तुतः उपयुक्त व्यक्ति  
ही गुरु है । गुरु शिष्य को अधिकारी मानते हुए उस पर कृपा करें । शिष्य  
गुरु को श्री कृष्ण का पाण्डि मानकर उनके प्रति श्रद्धा का भाव रहें ।

शिद्धा गुरु दीक्षा गुरु भेदों से गुरु दो प्रकार के हैं ।  
इनमें ' शिद्धा गुरु' अनेक हो सकते हैं क्योंकि भक्त को जीवन भर कुछ न कुछ  
शिद्धा अवसर-अवसर पर लेनी पड़ती है । दीक्षा गुरु एक होते हैं उनके शुद्ध  
सत्त्वोज्ज्वल चित्त में भगवदाविर्भाव सम्भव है और भगवदाविर्भाव होने पर भगवद्-  
-नुमति सम्भव है । भगवद्नुमति गुरुदेव का प्रमुख लक्षण माना गया है । केवल  
मंत्राधिकार ही गुरुदेव का प्रयोजन नहीं है वरन् उनके प्रभावी गरिमामान शुद्ध भक्त  
व्यक्तित्व से प्रसूत अनुग्रहा शक्ति एवं कृपा के निमित्त ही गुरु की आवश्यकता है ।  
श्री कृष्ण ही गुरुशक्ति का मूल आश्रय हैं । वे समष्टि गुरु हैं और अपने प्रियतम  
भक्त विशेष में गुरु शक्ति का संचार कर उसके द्वारा भजनार्थी पर कृपा करते हैं ।<sup>१</sup>

दीक्षा गुरु की अनुपस्थिति में शिद्धा गुरु भजन सम्बन्धी  
की विशेष शिद्धा देते हैं । साधक के अंतर्करण में परमात्मा रूप से प्रवेश कर  
उसको हिताहित का उपदेश करने वाले प्रथम शिद्धा गुरु हैं । दूसरे प्रकार के  
शिद्धा गुरु भक्त श्रेष्ठ रूप हैं जो साक्षात् भाव से शिद्धा उपदेश देकर जीव को

१ गुरु रूपे कृष्ण कृपा करें भक्त गणे

चैतन्य चरितामृत(वै० सि० १६६)

कृतार्थ करते हैं। दीक्षा गुरु को त्याग करने की आज्ञा नहीं है परन्तु परिस्थितिवश यदि अल्पज्ञ, तत्त्वज्ञता और वैष्णवता विहीन किसी गुरु का वरण होजाय और पीछे गुरु से दृष्ट की पूर्ति न हो रही हो तो गुरु का परित्याग कर सकते हैं। कुसंग के प्रभाव से दूषित अथवा वैष्णव विरोधी गुरु के त्याग की शास्त्र में आज्ञा दी गई है।<sup>१</sup>

श्री गुरुदेव में विश्वास साधक मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता है शिष्य उन्हें सर्वदैव मय मानें और उनकी कमीअवज्ञा न करें। श्री गुरु के निकट भगवद् अर्चन और भागवत धर्म की शिक्षा ग्रहण करते हुए सरल भाव से श्रीकृष्ण सेवा और कृष्णानुशीलन करना चाहिये। सम्बन्ध ज्ञान, अमिधेय ज्ञान और प्रयोजन ज्ञान की अलग अलग शिक्षा गुरुदेव से लेनी चाहिये ये शुद्ध भक्ति का रहस्य हृदयङ्गम कराने के प्रारम्भिक सोपान हैं।

अनर्थ निवृत्ति - श्री कृष्णानुभव में आनन्द की पराकाष्ठा मानी गई है। उसकी उपलब्धि उस समय तक संभव नहीं जब तक जीव में उस आनन्द के आस्वादन की योग्यता उत्पन्न नहीं होजाती। प्राकृत शरीर धारण किये वह माया मोह और सांसारिक प्रपञ्चों की मलिनता में ग्रस्त रहता है और उन आनन्द स्वरूप के सानिध्य में आनंदास्वादन की योग्यता नहीं रखता। जीव के अनर्थ उसमें बाधक होते हैं।

श्री कृष्ण कामना तथा उनकी भक्ति की कामना ही जीव का प्रमुख अमिधेय है। इसके अतिरिक्त मुक्ति-मुक्ति की स्पृहा आदि जो दुवासिनारें हैं उनकी अनर्थ संज्ञा है। अनर्थ ४ प्रकार के माने गए हैं।

१- दुष्कृत जातः - राग-द्वेष-दुरभिनिवेश आदि को कहते हैं।

२- सुकृत जातः - सांसारिक मोगों में अतिशय रुचि सुकृत जात अनर्थ के अंतर्गत है।

३- अपराध जातः- नामापराध, सेवापराध जनित अनर्थ अपराध जात कहलाते हैं।

४- भक्ति जातः - भक्ति की सहायता से धन संतान प्रभृति सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति की वांछा भक्ति जात अनर्थ के अन्तर्गत है। ये भक्ति से उत्पन्न होकर स्वतः ही उसके उद्देश्य को विफल करने वाले होते हैं।

साधु संग - सभी प्रकार के अनर्थों की निवृत्ति साधु संग और श्रीकृष्ण की महत् कृपा से होती है। साधु पुरुष वे हैं जिनकी सर्वविध मलिनता साधन के प्रभाव और भगवत् कृपा से दूर हो चुकी है और जिनका चित्त शुद्ध सत्त्व-आविर्भाव को प्राप्त कर चुका है। वे सर्वत्र समदर्शी, सरल चित्त और कूटिलता रहित होते हैं तथा शान्त स्वभाव, भगवत्निष्ठा बुद्धि युक्त, क्रोधहीन सबके मित्र दामाशील और अदोषादर्शी होते हैं। भगवत् प्रीति ही उनका परम पुरुषार्थ होता है। लोभ उन्हें कू तक नहीं जाता धन-कलत्र में नर उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं होती। ये महत्-व्यक्ति भगवान् के हृदय हैं और भगवान् उनके हृदय हैं। इनकी कृपा से जीव की बिणय वासनाएं अन्तर्हित हो जाती हैं और भक्ति का उद्बेक हो जाता है। भगवान् की कृपा शक्ति के सहयोग से माया मलिन जीवों के दोषों का निवारण होकर सत्त्वात्मिका भक्ति का संचार होने लगता है।

अनर्थ निवृत्ति के पाँच प्रकार हैं :-

१- एक देश-वर्तिनी, २- बहु देश-वर्तिनी, ३- प्रायेःकी, ४- पूर्णा और ५- आत्यन्तिकी। इनमें आत्यन्तिकी अनर्थनिवृत्ति सबसे दुर्गम है। श्रीकृष्ण प्रेमी भक्तों के प्रति अपराध होने पर अनर्थ पुनः जागरित हो जाते हैं आत्यन्तिकी में उसकी भी सम्भावना नहीं रहती सामान्य अपराधों की निवृत्ति अन्य अनर्थ निवृत्तियों में हो जाती है। उनकी विशेषता उनके नामों से स्पष्ट है।

अनर्थों के सृजन का मूल पाप-अपराध है। अतः वैधी अथवा रामानुगा दोनों भक्ति मार्गों के साधकों को अपराधों से सदा बचना चाहिये। अपराध विशेष प्रकार के असदाचार संवलित दुष्कृत कार्य हैं जिनसे साधक भक्तों का दूर रहना आवश्यक है क्योंकि उनका कुफल सहज में नहीं मिटता। अपराध दो प्रकार के हैं -

१- सेवापराध तथा २- नाम- अपराध।

इनमें नामापराधों का फल अधिक कष्टदायी है। सेवापराध तो निरंतर भगवत् सेवा करने से दूर हो जाते हैं।

सेवापराध भगवत् सेवा बिणयक निषिद्धाचार है। यथा विधि भगवत् सेवा अनुष्ठान न करना सेवापराध की कौटि में आ जाता है। भक्ति -

रसामृत सिंधु विन्दु में ३२ प्रकार के सेवापराधों का वर्णन किया गया है । जो निम्नलिखित हैं -

१- पादुका लेकर मंदिर में जाना, २- सवारी में बैठकर मंदिर में जाना, ३- इष्टदेव के उत्सवों का निरादर करना, ४- भगवान् के आगे प्रणाम न करना, ५- उच्छिष्ट अवस्था में भगवद् वन्दन, ६- अशौच, ७- एक हाथ से प्रणाम, ८- देवता को पीठ दिखाकर प्रदक्षिणा, ९ से १६ तक भगवद् मूर्ति के सामने पाँव मेल फैलाना, हाथों से घुटने बांधकर बैठना, सोना, मौजन करना, मिथ्याभाषण करना ऊँचे स्वर से बर्ते करना, रौना, १७- मूर्ति के आगे किसी पर निग्रह अनुग्रह करना, १८- निष्ठुरता से बालना, १९- कम्बल धारण कर सेवा करना, २०- से २३ तक परनिन्दा, पर स्तुति, अश्लील भाषण करना और अधो वायु त्यागना, २४- सामर्थ्य रहते हुए साधारण सेवा करना, २५ से २७ तक - विना मोग लगाए खाना, ऋतुफल आदि अर्पण न करना, काम आर द्रव्य में से भगवद् अर्पण, २८- पीठ करके बैठना, २९- मूर्ति के सामने अन्य को प्रणाम करना, ३० गुरु के प्रश्न करने पर मौन रहना ३१-३२ अपनी प्रशंसा, देवता की निन्दा करना ।

बाराह पुराण में इनके अतिरिक्त कृष्ण और सेवापराधों का वर्णन है जिनमें राजा का अन्न खाना, पूजा में मल मंत्र त्यागने जाना, अशौच में का स्पर्श, उच्छिष्ट द्रव्य का संग्रह आदि प्रमुख हैं । अन्य शास्त्रों में भी भगवद् मूर्ति सेवापराधों की गणना कराई गई है जिनमें वैष्णव शास्त्रों के स्थान पर अन्य शास्त्रों का प्रवर्तन, श्री मूर्ति के समक्ष ताम्बूल चर्पण, अण्ठीआ आदि के निनिषिद्ध पत्ते का पुष्पाद पूजा हेतु रखना, आसुरकाल में पूजा, तिर्यक पुण्ड्र धारण करना, अवैष्णव के सम्मुख पूजा करना और उसके द्वारा बनाये पदार्थों को श्री हरि के अर्पण करना, भगवान की शपथ खाना आदि । साधकों को इन सेवापराधों

१ यानैवा पादुकेवा पि गमनं भगवद्गृहे

देवोत्सवाथसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ॥

उच्छिष्टे वा प्यशौचेवा भगवद्वन्दनादिकम्

एक हस्तप्रणामस्य तत्पुरस्तात्प्रेदक्षिणम् ॥

पादुप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कवन्दनम् ।

शमनं मद्भाषणं चापि मिथ्याभाषणमेव च ॥

उच्चैर्भाषणमिथो जल्पो रोदनादि तदग्रतः ।

निग्रहानुग्रहाच्च निष्ठुरकूरभाषणम् ॥

कम्बलावरणश्चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।

अश्लीलभाषणं चैव अधोवायु विमोक्षणम् ॥

शक्ती गोपीपचारश्च अनिवेदित मद्भाषणम् ।

तत्कालाद्भवानां च फलादीनामनपेक्षाम् ॥

से बचना चाहिये और प्रमादवश कोई अपराध हो जाय तो श्री हरि के शरणागत होकर उनके नाम का जप करना चाहिये ।

सेवापराधों की तुलना में नामापराधों के अधिक अहितकारी प्रभाव का शास्त्रों में वर्णन है । नामापराधों की संख्या १० है । इनके अतिरिक्त ६ वैष्णवापराध और बताये गये हैं जो नामापराधों के अंतर्भूत हैं । १-साधुनिन्दा, २- श्री विष्णु के नामों से शिव के नाम गुणादि को पृथक् मानना, ३- गुरुदेव की अवज्ञा, ४- शास्त्र निन्दा मर, ५- श्री हरिनाम का अर्थ साधन में प्रयोग, ६-श्री हरिनाम केवल पर पाप में प्रवृत्ति -७- श्री हरिनाम का व्रत होमादि के तुल्य फल मानना , ८- श्री हरिनाम श्रवण में अथवा ग्रहण में निष्क्रियता और असावधानी, ९-श्रीनाम माहात्म्य सुनकर भी नाम ग्रहण को प्रधानता न देकर भोग बिषयादि में रुचि रखना, १०- श्रद्धाहीन और हरि विमुख व्यक्तियों को उपदेश देना ।

किसी वैष्णव से सम्मिलन-मम-संतप-होने-मर की निन्दा। उस पर प्रहार, द्वेष, अनादर, क्रोध करना अथवा वैष्णव से सम्मिलन या संताप होने पर प्रसन्नता प्रकट न करना वैष्णव अपराध माने गए हैं । जिस वैष्णव की निन्दा की गई हो अथवा जिसके प्रति रूढ़ा व्यवहार या दुर्व्यवहार किया गया हो उससे क्षमा याचना करने अथवा सेवादि द्वारा उसे संतुष्ट करने से इन अपराधों की निवृत्ति होजाती है ।

भक्ति के विकास क्रम में दृष्टिके प्रति आसक्ति और प्रेम की उद्भावना में उनके नाम, रूप, गुण लीला, धाम और परिकर का भारी महत्व है । इनके निरंतर चिंतन, ध्यान मग्न रहने एवं प्रत्येक क्षण इन्हें साधन का अंग बनाने से दृष्ट के प्रति सहज राग उत्पन्न होजाता है और जो धीरे धीरे विकासशील होता हुआ दृष्ट और आरम्भ के तादात्म्य का कारण बनजाता है । दोनों में कोई अंतर नहीं रहता । इसी का नाम सिद्ध देह है ।

विनियुक्ता वशिष्टस्य व्यंजनादेः समर्पणम् ।

पृष्ठीकृत्यासनं चैव परेषामभिवन्दनम् ॥

गुरौमौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ।

अपराधास्तथा विष्णोर्द्धा त्रिंशत् परिकीर्तिता ॥

भक्ति रसामृत सिन्धु विन्दु पृष्ठ ६



नाम - नाम ' नम् ' धातु से बना है जिसका अर्थ है बचना या फुक्का

-----  
'नमयति इति नाम्' नाम शब्द का अर्थ है नमस् कराने वाला ।

नाम ग्रहणाकारी और नामी अर्थात् स्वयं श्री भगवान् को फुका देता है ।

नाम जप से नाम ग्रहणाकारी अभिमान रूप पर्वत से 'दैन्य' रूपी महापर्व की ओर फुक्का जाता है । दूसरी ओर स्वयं भगवान् नाम के प्रभाव से प्रभावित होकर अपने धाम से अवतीर्ण होकर 'नाम जापक' को कृतार्थ करने आते हैं ।

श्रीकृष्ण नाम उनके रूप, गुण, लीला आदि का मंत्र रूप है । श्रेष्ठ प्रतीक है । संकीर्तन में वह सर्वोत्कृष्ट रूप से विराजित है <sup>१</sup> । श्री कृष्ण की भांति उनका नाम सच्चिदानन्द विग्रह है जो प्राकृत इन्द्रियों द्वारा सहज ग्राह्य नहीं है । अतः श्री कृष्ण आदि नामों की सेवा में समावृद्ध रहने पर इन्द्रियों में नामादि स्वतः ही स्फूर्ति होने लगती है । श्री भरत और चैतन्य महा प्रभु के 'नाम रट' के आदर्शों से यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है । इसके अतिरिक्त नाम 'स्वप्रकाश' है

अर्थात् साधक जीव की जिह्वादि इन्द्रियाँ जब नाम ग्रहण करने के लिए उन्मुख होती हैं तो नामादि कृपा करके आप ही आप जिह्वादि पर उदय होते हैं । नाम कीर्तन के समय भी देखा जाता है कि नित्य कीर्तन करने वालों में विशेष रूप से और अन्य लोगों में सामान्य रूप से नाम कीर्तन की योग्यता स्वतः उत्पन्न होजाती है । जो जीव भगवत् सेवोन्मुख हैं वे जब मनुष्य देह छोड़कर अन्य देह में प्रवेश करने लगते हैं तो भी उनकी जिह्वा पर भगवत् नाम स्फूर्ति होता रहता है । भरत जी महाराज की मृगशावक में आसक्ति थी अतः उन्हें मृत्यु पर्यंत मृगदेह प्राप्त हुई । जब वे उस मृग देह का परित्याग करने लगे तो उनके मुख से 'नारायण हारये नमः' <sup>२</sup> आदि भगवान् की स्तुति सम्बन्धी शब्द निकले जिससे उनका कल्याण हुआ । ग्राह द्वारा अक्रान्त गजेन्द्र पिकली योनि में भगवद् परिकर में से था । शाप वश उसे गज योनि प्राप्त हुई थी । जब उसकी सब चेष्टायें व्यर्थ होगईं तो पूर्व संस्कारों से उसके मुख से भगवद् नाम निसृत हुआ । अपनी रक्षा के निमित्त

-----  
१ श्री मद् भागवत महापुराण ६-३-२२

२ श्री मद् भागवत ५-१४-४५

मगवान् का शरणागत होने के लिये उसने जैसे ही 'ओह्म नमो भगवते तस्यै' इत्यादि का उच्चारण किया स्तववाक्य उसकी जिह्वा पर अंगे लगे थे । नाम जप में एक बड़ी विशेषता यह है कि जीव जब श्रीकृष्ण नाम ग्रहण करने की इच्छा करता है तो भगवान् आतुर होकर उसके पास जाकर दर्शन देते हैं परन्तु श्री भगवान् के दर्शन की इच्छा मात्र से वे किसी को दर्शन नहीं देते । यह नाम का वैशिष्ट्य है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी से भगवदासक्ति की उद्भावना में नाम के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव की ओर संकेत किया है । उनके अनुसार नामी की अपेक्षा नाम का अधिक चमत्कार है ।

राम भगत हित नर तनु धारी, सहि संकट किए साधु सुखारी ।  
 नाम सप्रेम जपत अनयासा, भगत होंहि मुद मंगल वासा ।  
 राम एक तापस तिय तारी, नाम कौटि खल कुमति सुधारी ।  
 मँवर राम आपु भव चापू, भव भय मँजन नाम प्रतापू ।  
 दंढक वन प्रभु कीन्ह सुहावन, जन मन अमित नाम किए पावन ।  
 निसिवर निकर दले रघुनंदन, नामु सकल किल क्लृण निकंदन ।  
 सवरी गीथ सुसेवकनि सुमति दीन्ह रघुनाथ ॥  
 नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥ २

जो अपने साधक भक्त सप्रेम भगवत नामोच्चार करते हैं वे अनायास ही सांसारिक माया मोह से निवृत्ति पा लेते हैं । वे सुखमग्न स्वप्न में भी शौच से दूर भगवद् प्रेम से आप्लावित रहते हैं । भगवान् शंकर, शुक सनकादि ऋषिगण, भक्त मुनि नारद, भक्ति शिरोमणि प्रह्लाद, ध्रुव, पवन पुत्र आदि ने पवित्र भगवद् नाम का जाप करके 'श्रीराम' को अपने वशीभूत कर रखा था । ३

१ श्रीमद् भागवत - ८-३-२

२ श्री रामचरित मानस- गो० तुलसीदास बालकाण्ड दोहा २४

३ ,, ,, ,, ,, दोहा २६

गौड़ीय कवि कृष्णदास ने हरिनाम को भगवद् प्रेम साधना का प्रथम सोपान माना है । उनके अनुसार इस साधना का एक क्रम है जिसमें अभिराम भगवद् नाम की सर्वोत्कृष्टता है :-

हरिनाम बिना हरि काम कहाँ, काम बिना कहाँ बीज ।  
 बीज बिना हरि तनु कहाँ, तनु बिना कहाँ बीज ।  
 हरि राग बिना हरिभाग कहाँ, भाग बिना कहाँ मोग ।  
 मोग बिना सुख मोग कहाँ, सुख मोग बिना कहाँ जोग ।  
 हरिरंग बिना सत् संग कहाँ, सतसंग बिना कहाँ अंत ।  
 अंत बिना एकान्त कहाँ, एकान्त बिना कहाँ कंत ।  
 कंत बिना कंतार कहाँ, गौर बिना कहाँ श्याम ।  
 श्याम बिना अभिराम कहाँ, अभिराम बिना कहाँ नाम ।<sup>१</sup>

नाम अविनाशी और चिन्मय है । अवतारी भगवान् विशेष उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त अवतरित होकर अंतधानि हो जाते हैं परन्तु नाम भगवान् के अंतधानि होने के अनंतर भी उसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये जगत में नित्य व्यापक रहता है ।

नाम नामी से अभिन्न होने से नामी की भांति पूर्ण, निश्चय शुद्ध अप्राकृत चिन्मय है । सांसारिक जीव मूर्खता वश नाम अक्षरों को प्राकृत जानते हैं परन्तु वस्तुतः नराकृति परब्रह्म जिस प्रकार सच्चिदानंद हैं उनका नाम एवं नाम अक्षर भी उसी प्रकार सच्चिदानंद है । प्राकृत जिह्वा द्वारा जो नाम उच्चारण होता है वह भी अप्राकृत चिन्मय है ।<sup>२</sup> उसका मागोरथी गंगा का सा प्रभाव है जो कर्म धर्म, शोक, दुःख मोह, मान, मय, काम, क्रोधादि सांसारिक कल्पों की राख को बहा ले जाती है और मनुष्य शरीर रूपी मरघट मर घाट को भगवान् के दिव्य उपवन रूप में परिवर्तित कर देती है ।

१ श्री गौरनाम रस चम्पू - कृष्ण कवि अंक २, छंद ६ ।

२ कृष्णनाम, कृष्णगुण, कृष्ण लीलावृन्द ।

कृष्णो र स्वरूप सम सब चिदानंद ॥

रूप - जैसे स्वयं भगवान् और उनके नाम का अभिच्छिन्न सम्बन्ध है । उसी

प्रकार उनके नाम से उनके रूप का सम्बन्ध भी है । नाम और रूप भगवान् के नैकृत्य के दो सूत्र हैं- उनके निकट परिचय हैं उनमें कौन किससे बड़ा या छोटा है यह कहना भी महापाप है क्योंकि रूप का साक्षात्कार नाम से होता है और बिना नाम परिचय के रूप ज्ञान निरर्थक है । नाम संज्ञा के बिना रूप आभास मात्र है । नाम और रूप का तादात्म्य है उनकी गति की अव्यनीय कथा है जिस का हृदयंग्म करना आनंद पूर्ण है परन्तु वर्णन करना असंभव है । निगुण और सगुण के बीच नाम दुमाणिका है । नाम और लीला गुण के बीच रूप दृढ़ सम्बन्ध संस्थापन सेतु है ।

रूप नेत्रों का बिषय है । आसक्ति का मूल है । इस कारण भगवान् में रुचि और आसक्ति की उद्भावना के लिए भक्ति मार्ग में रूप माधुरी को प्रधानता दी गई है । उनके नाम प्रभाव के साथ सौंदर्य-माधुर्य का समावेश करके उनके गुणों, और लीलाकण्ठा में विशेषता आगई है । रूप या सौन्दर्य के दो विशिष्ट लक्षण हैं १-अहेतु और २-शान्ति । अहेतु का तात्पर्य है निस्वार्थता या प्राकृतिक रूप से प्रेमाकर्षण । श्री राम या श्रीकृष्ण पतितोद्धारक हैं और हमारा उद्धार करने इस लोभ से उनके प्रति आकर्षण नहीं वर्त्तन उनका निर्मल निष्कलंक सुन्दर रूप, सहज माधुर्य, स्वाभाविक शील-सौष्ठव समन्वित मुख मण्डल, आनंद मयी मुद्रा स्नेहोद्देक के कारण बन जाते हैं । सौन्दर्य की दूसरी विशेषता है 'शान्ति' अर्थात् भगवान् के रूप दर्शन के साथ विरोधीभाव का शमन, परस्पर संदर्शन एवं सम्मिलन की बढ़ती आकांक्षा, संभाव्य प्रीति से सन्तोष लाभ की सम्भावना शान्ति के विशेष लक्षण हैं । हृदय में अकारण प्रेमानुभूति, उनके प्रति अनायास आत्मसमर्पण के लिये भावोद्देक और एक प्रकार की ममता का उद्गम रूपा सक्ति के सहोदय हैं । गुणों के चिन्तन और लीला विनिवेश के प्रयास से रूपासक्ति, भावासक्ति और प्रेम पदार्थ में परिणत होजाती है । भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में निर्दिष्ट किया है कि जो भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्य युक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तुएँ हैं वे सब उन्हीं के (श्रीकृष्ण भगवान्) तेज अंश से उत्पन्न हुई हैं । अतः रूप माधुर्य भगवान् को विशेष विभूति है । उनका अंश रूप है।

१ यद्यद्विभूति सत्सत्त्वं श्रीमदर्जितमेव वा ।

तत्तेजवावगच्छ त्वं मम तेजो श संभवम् ॥ गीता अध्याय १०, श्लोक ११

ब्रजगोपियां उनके दिव्य रूप दर्शन के साक्षात्कार के अनंतर सर्वथाहसुप्रम होकर प्रेमानुभूति में अभिमूत हुई रह जाती हैं :-

देखो माई सुंदरता की सागर ।

बल, विवेक बुधि पार न पावत सुखी होत मन नागर ।

तनु, अति स्याम अगाध अम्बुनिधि कटि पटपीत तरंग ।

चिंतितचलत अधिक रुचि उपजत मंवर परत अंग अंग ।

- - -

देखि सख्य सखल गोपीजन रहों निहारि निहारि ।

तदपि सूर तरि सकों न सोमा, रहों प्रेम पचि हारि।।<sup>१</sup>

मणि रसामृत सिन्धु में रूप की विभाव की संज्ञा दी गई है । वहाँ कहा गया है कि वैधी साधन मणि के द्वारा जिनके दोषों का शमन होगया है अतएव प्रसन्न और निर्मल चित्वाले रसिकजनों के संसर्ग में रहने वाले मणों के हृदय में उज्ज्वल आनन्द रूपा रति ही कृष्णा आदि के रूप विभाव द्वारा आनन्द की पराकाष्ठा को प्राप्त होकर मणि रस कल्लाती है । रूप दो प्रकार का होता है । आवृत और प्रकट ।

आवृत - कोई पुरुष किसी दूसरे का रूप धारण करले तो उसे आवृत रूप कहते हैं ।

इसका उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है कि कृष्णा अनेक ग्वाल वालों के बीच में खेल रहे हैं । उनके हाथ में बड़ड़ा है । उस बड़ड़ा वाले गोपाल बाल की ओर बलदेव जी का विशेष आकर्षण हो रहा है । क्यों ? इसका कारण नहीं समझ पा रहे । इस सबत्स रूप से उनमें अन्यो की अपेक्षा विशेष स्नेह आ रहा है । इस प्रकार यहाँ अन्य रूप से (वत्स पाल रूप से) विशेष आकर्षण आवृत रूप है ।

- - - - -

१ सूरपंच रत्न , रूप माधुरी , सम्पादक ला० भगवानदीन पृष्ठ ११७

२ आवृत प्रकट चेति स्वरूपं कथितं द्विधा ।। म० र० सि०, ४० वि०, प्रथमा विभाव लहरी १८

३ अन्यवेषादिनाऽऽच्छन्नं स्वरूपं प्रोक्तमावृतम् ।। म० र० सि०, ४० वि०, प्र० वि० ल० १८

प्रकट- प्रकट रूप में कृष्ण का बालम्बन होना ही प्रधान है - कारण है ।

यथा : -

“ शंख की सी गर्दन वाले, सोने की सी सुन्दर कान्तियुक्त,  
तमाल की सी श्यामल देह सुंदराले वालों का सिर पर कृत्र साधारण किये  
छोटे श्रीवत्स चिन्ह से अंकित शंख तथा चक्र हाथ में लिए यह सुन्दर शरीर वाले  
कृष्ण मुझे अत्यन्त आनंद दे रहे हैं ।”

गुण - ब्रह्म के निराकार और साकार रूपों में गुण की विशेषता है । गुणों  
से उनके शुष्क रूप में सरसता का संचार होजाता है । ब्रह्म-ज्ञानियों के  
तत्त्वज्ञान से सम्प्राप्त दुर्वेषिता संवलित निगुण ब्रह्म गुणों के कारण सुबोध और  
रसप्रेम दिखाई देते हैं । “बाके रूप रस कछु नाहीं” उसका देखना अत्यन्त  
निवेक्षणीय ज्ञानी को भले ही सम्भव हो दर्शन और वेदान्त के अभ्यासों उनके  
संस्पर्श में भले ही अटकलवाजी करते रहें परन्तु सामान्य लौकिक पुरुष  
अव्यावहारिकता और सूक्ष्मता के कारण उस अव्यक्त और अनिर्दिष्ट स्वरूप  
की सहज अनुभूति नहीं कर सकता । गुण परमात्मा को हमारे स्वरूप के निकट  
ले जाते हैं, उनसे हमारी आत्मीयता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । वे हमें  
अपने निज के रक्षाक, पोषक, माता-पिता, बंधु, सखा, प्रिय, प्रेमी तुल्य दिखाई  
देने लगते हैं । गुणों से ही हमारी रीझ सीझ होती है जो प्रभु में आत्म-  
समर्पण की ओर ले पहुँचती है । हमारे मानव पुरुषार्थ थक जाते हैं । आत्म-  
निवेदन, श्रवण कीर्तन में विभोर हम उन प्रभु की साधिका बनकर सर्वथा अनाथ  
हुए उन्हें अपना नाथ स्वीकार कर लेते हैं ।

श्रीकृष्ण जी के ६४ गुणों का शास्त्रों में उल्लेख है इनमें  
से ५० उनके निजी गुण हैं । उसके अतिरिक्त ५ गुण गिरिश(शिवजी) के ५  
विष्णु(लक्ष्मीश) के और ४ गोविन्द के विशेष गुण हैं ।

१ हन्त मे कथमुदेति सवत्से वत्सपालपटले रत्निरत्र ।

इत्यनिश्चितम् निर्वलदेवो विस्मयस्तिमित मूर्ति रिवासोत ॥

म०र०सि० दक्षिण विभाग प्रथम विभाग

लहरी, श्लोक २४२

मक्ति रसामृत सिन्धु में इनके लक्षण और उदाहरणों द्वारा चर्चा की गई है। यहाँ केवल उनके नाम संकेत किये जाते हैं।

- १- श्रोतृष्ण का पहला गुण है 'सुरम्यांग' शरीर के अवयवों का श्लाघनीय विन्यास सुरम्यांग कहलाता है।
- २- सर्व लक्षणांश्वित- शरीर में गुण और चिन्हों से युक्त सुलक्षणात्ता।
- ३- रुचिर - सौन्दर्य द्वारा नेत्रों को आनन्द देने वाला।
- ४- तेजोयुक्तता- दीप्त और प्रभाव से शत्रुओं को दमन करने की शक्ति।
- ५- अत्यन्त बलवन्ता - महान पौरुषा संयुक्तता।
- ६- वयसान्वित - किशोर अवस्थावाला निर्मल सौन्दर्य, माधुर्य, ईषाद् हास हास से युक्त सुन्दरियों के आकर्षण का केन्द्र।
- ७- विविधाद्भुत - भाषाविद् - विविध और अद्भुत भाषाओं का ज्ञाता।
- ८- सत्यवाक्य - जिसका वचन कभी झूठा सिद्ध न हो।
- ९- प्रियवादी - जो कभी कठोर वचन न निकाले।
- १०- वावदूक - सुन्दर लगने वाली बात कहने वाला और वाणी के गुणों से युक्त।
- ११- सुमण्डित- विद्वान और नीतिज्ञ।
- १२- बुद्धिमान - जिसके प्रत्येक कार्य में बुद्धि की विशेषता हो।
- १३- प्रतिमान्वित - प्रसर मेधावान।
- १४- विदग्ध - कलाओं के विलास से युक्त।
- १५- चतुर - एक साथ अनेकों का समाधान करने वाला।
- १६- दक्ष - दुष्कर कार्य को तुरन्त करने वाला।
- १७- कृतज्ञ - उपकार के प्रति मन में आभार।
- १८- सुदृढव्रत - दृढ़ निश्चयी।
- १९- देश-काल सुपात्र - जो वस्तु स्थिति के विचार से कार्य करे।
- २०- शास्त्र-चक्षु - शास्त्रानुमोदि आचारवान।
- २१- शुचि - पावनों को पावन करने वाला, कपट शून्य।
- २२- जितेन्द्रिय - वशी।
- २३- स्थिर - स्थित प्रज्ञ।
- २४- दान्त - उचित होने पर भी दुःसह क्रोधा को सहने वाला।

- २५- कामाक्षील - अपराधों को सहन करने वाला ।
- २६- गम्भीर - जिनके मन की बात बहुत देर में समझी जा सके ।
- २७- धृतिमान - क्षोभ का कारण होने पर भी शान्त ।
- २८- सम - राग द्वेष से रहित ।
- २९- वदान्य - जो दान देने में वीर हो ।
- ३०- धार्मिक - जो स्वयं धर्म का अनुष्ठान करता हुआ दूसरों से करवाता हो ।
- ३१- शूर - युद्ध में उत्साह रखने वाला और अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग में निपुण ।
- ३२- करुणा - जो दूसरों के दुख को सहन कर सके ।
- ३३- मान्यमानकृत- गुरु, बृद्ध और ब्राह्मणों का मान सम्मान करने वाला ।
- ३४- दक्षिण - उत्तम स्वभाव के कारण कोमल चरित्रवाला ।
- ३५- विनयी - उद्धतपन को दूर रखने वाला ।
- ३६- ह्रीमान - काम विषय में शालीन और संकोची ।
- ३७- शरणावत पालक- शरणागतों का रक्षक ।
- ३८- सुखी - सुख का भोग करने वाला और दुःख से दूर रहने वाला ।
- ३९- भक्त सुहृत् - सहज प्रसन्न होने वाले और भावों के मन की करने वाले ।
- ४०- प्रेमवश्य - प्रेमी के कष्ट अथवा परिश्रम से सहज द्रवी भूत ।
- ४१- सर्वशुभङ्कर - सबके कल्याणकारी ।
- ४२- प्रतापी - अपने पराक्रम से शत्रुओं को भयभीत रखने वाला ।
- ४३- कीर्तिमान- उज्ज्वल शुभ गुणों के कारण विख्यात ।
- ४४- रक्षलोक - समस्त लोगों के अनुरागों का पात्र ।
- ४५- साधु समाश्रय- केवल सज्जनों का पदापात करने वाला ।
- ४६- नारीगण मनोहारी- सुन्दरियों के समूह को मोहित करने वाला ।
- ४७- सविराध्य - सब की पूजा के योग्य ।
- ४८- समृद्धिमान - महान सम्पत्ति से सम्पन्न ।
- ४९- वरीयान् - सबसे मिलने को इच्छुक ।
- ५०- ईश्वर - स्वतंत्र , जिसकी आज्ञा का उलंघन न किया जा सके ।
- ५१- सदास्वरूप सम्प्राप्त- माया रूप कार्यो में लिप्त न होने वाला ।
- ५२- सर्वज्ञ - जो अतीत और अनागत सब की जानकारी रखता है ।
- ५३- नित्यनूतन - सौन्दर्य के कारण आश्चर्य उत्पन्न करने वाला ।



- ५४- सच्चिदानन्द सान्द्राङ्ग - चैतन्य और आनन्द से पूर्ण आकृतिवान ।  
 ५५- सर्वसिद्धि निषेवतः - समस्त सिद्धियाँ जिसके वश में हैं ।  
 ५६- अविचिन्त्य महाशक्ति- दिव्य स्वर्भादि बनाने की सामर्थ्य, ब्रह्मादि देवों को मोहने की सामर्थ्य, मर्कों के प्रारब्ध भोगों को भेटने की सामर्थ्य से युक्त ।  
 ५७- कोटि ब्रह्माण्ड विग्रह- जिनके शरीर में करोड़ों ब्रह्माण्ड समाये रहते हैं ।  
 ५८- अवतार बली बीज- अनेक अवतारों के धारण करने वाला ।  
 ५९- हरिगत दायक - अपने द्वारा मारे गए शत्रुओं को उन्नत गति देने वाला ।  
 ६०- आत्मारामगणाकर्षि- आत्म ज्ञान में रमण करने वाले योगियों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने वाला ।

उपरोक्त दशषष्ट गुणों के अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण में ४ गुण विशेष पाये जाते हैं । वे हैं -१- सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण लीलारूपी तरंगों के अगाध आश्रय, २- अतुलनीय प्रेम माधुर्य द्वारा अपने प्रिय पात्रों के मंगल स्वरूप , ३- त्रिलोक आकर्षिणी मुरली कीतान , ४- चराचर को चकित करने वाली अमृत पूर्व रूप श्री ।

प्रारम्भिक ५० गुण जीवों में विन्दु रूप में पाये जाते हैं परन्तु साधना और भगवत सानिध्य के अनुसार में उनमें घटवढ़ होती रहती है । शिव, ब्रह्म, सूर्य गणेश, इन्द्र आदि देवगण भी भगवान् के आंशिक गुणों से युक्त होते हैं । उनके परिकर भी उनके विशेष गुणों से पूर्ण होते हैं । ये सभी भगवत दास हैं । वे कृपा कर अनन्य कृष्ण भक्ति दान करते हैं और जीवों के गुरु रूप में नित्य पूजित होते हैं ।

लीला-धाम और परिकर तत्व - लीला भगवान् के गुणों की व्यापक व्याख्या है उनका साकार रूप है । गुण में जो तत्व समिहित है लीला उसका वाह्य विश्लेषणात्मक स्वरूप है । लीलाकेद्वारा साधक उनके गुणों को हृदय में ग्रहण करता हुआ अपने प्रभु पर बार-बार रीफिता -खीफिता है और उन्हें अपना सर्वस्य मानकर तादात्म्य का अभिलाषी होता है । श्री भगवान् मायातीत हैं, उनके धाम, लीला, परिकरादि भी सभी मायातीत वस्तुएँ हैं । माया को उनके निष्कट-जाने का अधिकार नहीं है । जीव स्वरूपतः , चिदवस्तु होते हुए भी माया के

निज धाम श्री वृन्दावन का योगपीठ



जय वृन्दावन नित्य जय नित्य कुंज सुखसार ।  
जय श्री राधा पिय जहाँ बिहरत नित्य बिहार ॥

दाँव में पड़कर मायिक शरीर को अंगीकार कर चुका है जिससे स्वरूपानुबन्ध-सेवा प्रच्छन्न हो चुकी है। भगवान् की करुणा तथा साधन द्वारा माया मलिनता दूर होकर प्रभु की लीला, उनके धाम और परिकर साकार और सार्थक दिखाई देने लगते हैं। वे भी प्रभु रूप ही हैं।

श्री कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं एवं रसिक शेखर हैं। उनकी लीला का मुख्य कारण स्वयं लीला रसास्वादन करना है और उस रस का परम विस्तार करते हुए अपने परिकर और भक्तों में उसके माधुर्य की परम रागमयी भक्ति में मग्न कर देना होता है। इस लीला या क्रीड़ा के लिए एक निश्चित स्थान एवं उसके विस्तार में योगदान करने वाले सहायक परिकर आवश्यक होते हैं। वास्तुतः भगवान् का स्वरूप शक्ति वृषि मूत-शुद्ध सत्त्व लीलार्थ धाम एवं परिकर के रूप में प्रकट होकर श्रीकृष्ण को अनन्त लीलारस वैचित्र्य का आस्वादन कराता है। अनन्त भगवत स्वरूपों के अपने अपने धाम और परिकर वर्ग हैं। ये समस्त धाम नित्य सिद्ध और चिन्मय हैं।<sup>१</sup>

भगवान् की सन्धिनी शक्ति अंश प्रधान शुद्ध सत्त्व रूपा आधार शक्ति ही धाम रूप में प्रकट होती है। श्रीकृष्ण के धाम का नाम श्रीकृष्ण लोक है <sup>उत्तरी गिरिधर अभिरुक्ति आराम, मधुरा एवं गोकुल (जहाँ होती है)</sup> परन्तु उनमें गोकुल का वैशिष्ट्य है। गोकुल का दूसरा नाम व्रज है। उसे वृन्दावन एवं श्वेतद्वीप भी कहते हैं। अन्यान्य भगवत स्वरूपों के धाम परव्योम के अन्तर्युक्त है। परव्योम श्रीकृष्ण लोक से निम्नदेश में स्थित है। श्रीकृष्ण लोक से और परव्योमस्थ भगवत स्वरूपों के सविशेष <sup>धाम प्रसन्न हो जायें, धाम में हो लता रश्मी</sup> उपकरणों से युक्त है। परन्तु प्राकृत ब्रह्माण्ड के वृक्षालता आदि की भाँति वहाँ प्राकृत वस्तुएँ नहीं हैं। परव्योम के बाहर सिद्ध लोक धाम है जो अव्यक्त-शक्तित्व ब्रह्म का धाम है। उसकी भी परव्योम में गणना है। सिद्ध लोक के चारों ओर चिन्मय जलपूर्ण कारण समुद्र है जो विरजा भी कहलाता है।

व्रज रस एवं व्रज परिकर - गोकुल या व्रज में श्री कृष्ण की नर लीला है, गोप अभयान एवं गोपवेश है। इसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावी का आस्वादन होता है। दास्य रस के रत्सक, पत्रक आदि परिकर हैं ये श्रीकृष्ण में ममता रखते हुए दासोचित सेवा द्वारा उनका प्रीति विधान करते हैं। सख्य-  
के परिकर सुवल, मधुमंगल आदिक हैं। इनमें दास्य परिकरों की अपेक्षा अधिक

ममत्व है। वे उनके साथ खेलते, खिलते हैं कभी श्रीकृष्ण के कन्धे पर चढ़ते हैं कभी उन्हें अपने पर चढ़ाते हैं तथा उनके मुख में अपना उच्छिष्ट फल भी देते हैं। दम्स दास्य रस में गौरव बुद्धि जात संकोच है, सत्य में इस प्रकार का कोई संकोच नहीं है। श्री कृष्ण नन्द महाराज और माता यशोदा आदि वात्सल्य रस के परिकर हैं। ये सन्धिनी अंश प्रधान शुद्ध सत्त्व रूपा आधार शक्ति की चरम परिणित हैं। वे श्रीकृष्ण को लाल्य एवं अपने का श्रीकृष्ण का लालक समझते हैं और इसी अभिमान के अनुकूल व्यवहार भी करते हैं। मधुर भाव में वात्सल्य से भी अधिक ममता है। श्री राधा आदि गोपीगण इस भाव के परिकर हैं। श्री राधा मगवान् की ह्लादिनी शक्ति की मूर्तिरूप हैं। उनका अभिमान है कि वे श्री कृष्ण की प्राणवल्लभाः- उनकी प्रेयसी हैं। श्रीकृष्ण भी उन्हें तदनु रूप मानते हैं। वे उनकी निजा का द्वारा सेवा करती हैं।

अतः ममता बुद्धि का अधिक्य ही परिकर स्वरूप की मगवत् निकटता का माप दण्ड है। जहाँ जितनी अधिक ममता बुद्धि होगी धनिष्ठता भी उतनी ही अधिक होगी। ऐश्वर्य ज्ञान से प्रेम शिथिल हो जाता है, समानता अथवा कनिष्ठता में अधिक ममता होती है। इनमें प्रेम का संचार अधिक है।

राम भक्ति की रसिक शाखा में लीला घाम के साकेत और अयोध्या दो रूप माने हैं, दिव्य लोक में साकेत और भूलोक में अयोध्या। साकेत को परा लिलन-भूमि-है-+श्री-रम-लिलन-भू अयोध्या भी कहा जाता है। साकेत मगवान् की नित्य क्रीड़ास्थली है अयोध्या लीला भूमि है। श्री काम सीता की मानवी लीला में मयदिता की प्रधानता होने से अयोध्या को धर्मस्थान माना जाता है। साकेत के अंतर्गत मध्य भाग में कनक भवन नामक एक दिव्य प्रसाद है जो युगल सरकार का रंग महल है। चारों दिशाओं में साकेत के चार द्वार हैं जिन पर चार अंतरंग पार्श्व पूर्व द्वार पर सुग्रीव, पश्चिम पर विभीषण, उत्तर पर अंगद और दक्षिण पर हनुमान का पहरा रहता है। दक्षिण द्वार के पास ही संतान कवन नामक क्रीड़ा स्थली है। उसकी पश्चिमी दिशा में सरयू बहती है।<sup>२</sup> साकेत में पंच भावों पासकों के पूज्य स्थान हैं यथा:- सखी भाव का कनक-भवन, सखाभाव का

१ श्रीमद् वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह - पृष्ठ ६८

२ रामनवरत्नसार संग्रह - पृष्ठ ३३

रंग मवन, दास्य भाव का रत्न सिंहासन, वात्सल्य का जन्म भूमि और शान्ति भाव का समग्र अयोध्या जिसमें ऐश्वर्य भाव की उपासना की प्रधानता है। लीलाओं के अनुरूप ही परिकर वर्ग की व्यवस्था है।

सामान्यतया परिकरों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

१- सामान्य परिकर - इसमें देश(स्थान, धाम), काल और पंच तत्त्व प्रधान माने जाते हैं जो लीला पुरुषों की इच्छानुसार दाण दाण में विविध वस्तुओं और परिस्थितियों का रूप धारण कर लीला विस्तार में सहायक होते हैं।

२- सम्बन्ध मूलक परिकर-इसमें श्री सीताराम की अवतार लीला से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले सभी स्त्री पुरुष जानाते हैं उनकी पांच श्रेणियाँ सखी, सखा, दास, गुरुजन और प्रजा हैं। इन सम्बन्धों पर ही भक्ति रस के पाँच सम्बन्धों का विकास हुआ है।

वैधी भक्ति सांगोपांग पूर्ण कर लेने पर साधक का रागानुगा भक्ति में प्रवेश होता है। इसमें शुद्धा भक्ति के साथ श्री कृष्ण सेवा लालसा जागृत हो सकती है। रागानुगा के अनन्तर रागात्मिका भक्ति है। इष्टदेव में गाढ़ तृष्णा इसका स्वरूप लक्षणा और उनमें आविष्ट होना इसका तटस्थ लक्षणा है। रागमयता ही रागात्मिका की विशेषता है। इसके प्रभाव से साधक श्री कृष्ण सेवा के लोभ से व्रजवासियों की चर्चा का अनुगमन करता है तब उसे शास्त्र युक्ति की अपेक्षा नहीं रहती। रागानुगा भक्ति के बाह्य और अंतर दो प्रकार के साधन हैं। बाह्य और अंतर दो प्रकार के साधन हैं। बाह्य साधन में साधक शरीर से श्रवण कीर्तन आदि का अनुष्ठान करता है और अंतर साधन में मन द्वारा अपनी सिद्ध देह की भाविना करके निरंतर श्री कृष्ण का सेवन करता है। व्रजवास इस की परम आवश्यकता है। वास्तव में व्रजभाव की प्राप्ति के लोभ का नाम ही रागानुगा भक्ति है। व्रजवास करते हुये श्रीकृष्ण श्रेष्ठ परिकर में जो परिकर अपने भावानुकूल पड़ते हैं उनके अनुगत होकर निरंतर साधना करती होती है। श्रीकृष्ण परिकरों के ४ भाव हैं उनमें अपने अभीष्ट भाव के अनुकूल आनुगत्य से सेवा की जाती है।

श्रीकृष्ण परिकरों से जीव कर सेवा भाव भिन्न है। मधु मंगल, श्रीनंद, यशोदा जी एवं राधादि परिकर श्री कृष्ण की स्वरूप शक्ति हैं। उनकी स्वातंत्र्य मयी सेवा में इनका अधिकार है। उनकी सेवा को रागात्मिका कहते हैं।

परन्तु जीव स्वरूप शक्ति नहीं है, वह स्वरूपतः श्री कृष्णदास है । श्रीकृष्ण की आनुगत्मयी सेवा में दास का अधिकार होता है । अतः रागात्मिका भक्तों का आनुगत्म लेकर उनकी रागात्मिका का सेवा के अनुकूल साधक को सेवा विधान रखना चाहिये ।

दम्भ, द्रोह, द्वेष, काम, लोभ और विषाया सक्ति साधक मार्ग के छे दोषा हैं । विषाया सक्त पुरुष को गोपी भाव की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती क्योंकि उनका मन सुंदर, रूप, स्वादिष्ट पदार्थ, मनोहर गन्ध कोमल स्पर्श और सुरीले स्वरों पर रीफ़ जाया करता है । त्यागी विरागी महात्मा ही इस प्रेम मार्ग के अनुगामी हो सकते हैं । इस निमित्त विषायासक्ति को त्यागकर निम्न रूप से भावना करना साधक का अभीष्ट है ।

- १- स्वयं को श्री राधा जी की अनुचरियों में से एक तुच्छ अनुचरी मानना ।
- २- श्री राधा जी की सेविकाओं की सेवा में ही अपना परम कल्याण मानना ।
- ३- मनमें प्रत्येक समय यह आकांक्षा रखना कि मैं श्री राधिका जी की दासियों की दासी किसी प्रकार बनी रहूँ और श्री राधा कृष्ण के मिलन साधन के लिए विशेष रूप से प्रयत्न कर सकूँ ।

जिनके हृदय में कुछ भी काम विकार होता है उन्हें इस मार्ग में पैर रखना अग्नि में जाने के तुल्य है । इस कारण इधर आने से पूर्व कायिक, वाचिक, मानस व्रत किये जाते हैं । उनसे तीनों प्रकार की शुद्धि होकर राग मार्ग में प्रवृत्ति होती है । नारद-भक्ति - सूत्र में कहा गया है कि दिन भर में एकवार जो कुछ मिल जाय उसे खा लेना, रात को उपवास करना कायिक व्रत है । वेदाध्ययन भगवत् नाम गुणों का कीर्तन, लीलाओं का स्मरण, सत्यभाषण, किसी की चुगली न करना कायिक व्रत है और अहिंसा, सत्य, किसी वस्तु पर मन न चलाना, ब्रह्मचर्य पालन करना और कपटाचरण से वचना मानस व्रत है । इनका पूर्ण पालन करना चाहिये ।

भगवान् की इस उपासना में अनन्य भाव होना परमावश्यक है । प्रेमी साधक को प्रेम रूप भगवान् से अनन्य प्रेम और उनकी अवैतुकी कृपा की निरंतर याचना करते रहना आवश्यक है । मोक्षा, ज्ञान, ऐश्वर्य, रुद्धि-सिद्धि कीर्ति कुछ भी नहीं चाहिये । किसी अन्य की आशा करना भी पाप है । कोई भी दूसरा भरोसा

१ श्री राधामाधव चिंतन- हनुमान प्रसाद पोद्दार पृष्ठ ४१७



या विश्वास रखना हृदय की जड़ता है । जब तक भोग या मोक्ष की पिशाची इच्छा हृदय में विद्यमान है तब तक प्रेमानन्द का उदय कैसे संभव है ।

उपासना का यह रहस्य अत्यन्त गूढ़ है । उसे राधाकृष्ण तत्त्व के मर्मज्ञ सद्गुरु की सेवा में रहकर, उनके शरणागत होकर श्रीकृष्ण मंत्र दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये और भक्ति पूर्वक गुरु महाराज की सेवा करते हुए निरंतर इष्टदेव के भजन में रत रहना चाहिये । लोक परलोक की समस्त चिन्ताओं का परित्याग कर दें और भगवान् श्री कृष्ण स्वयं मंगल करेंगे ऐसा विश्वास करके निश्चित हो जाय और उनकी पूजा में लगे रहें । भगवान् के पूजन को बिषयानन्द का साधन कभी भी नहीं बनाना चाहिये । बहुत समय से विदेशगये हुये पति की परायणा स्त्री जैसे केवल उस पति पर प्रेम रखती हुई तथा एक मात्र उसी के संग की आकांक्षिणी होती हुई दीन बनी हुई जैसे सदा सर्वदा पति के गुणों को गाती और सुनती है इसी प्रकार अधिकारी शिष्य को एक मात्र श्रीकृष्ण में आसक्त होकर उनके गुणों और लीलाओं को सुनना, गाना और स्मरण करना चाहिये । अपने इष्ट देव को छोड़कर दूसरे का ध्यान भी नहीं आना चाहिये । अपने इष्ट देव के अनुकूल आचरण करना और प्रतिकूल का त्याग करना परमावश्यक है । चातकी वृषि से उनके अनन्य शरण हो निरंतर श्रीकृष्ण का स्मरण करता रहे ।

जिस प्रकार महा मन्त्र गजराज को वश में रखते हुए कार्यरत रखने के लिये अंकुश की आवश्यकता होती है साधना में मंत्र का भी वही स्थान है । श्रद्धा विश्वास पूर्वक मंत्र का आश्रय ग्रहण करने पर श्री राधाकृष्ण की सान्निधि प्राप्त होजाती है । युगल स्वरूप की प्राप्ति के लिये १-“गोपीजनवल्लभवरणान् शरणं प्रपद्ये” यह षोडशाक्षर मंत्र है । २- नमो गोपीजनवल्लभाय **जमदग्नि** यह अष्टादशाक्षर मंत्र है । ३- **वल्लीं** राधाकृष्णाय नमः यह अष्टाक्षर मंत्र है । ४- **वल्लीं** कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा यह अष्टादशाक्षर मंत्र है । मंत्री दीक्षा का निणयि बहुत कुछ सद्गुरु के ऊपर निर्भर रहता है । वे अपनी अलौकिक शक्ति से चित् देह से परम पुरुष के संस्पर्ध का स्वरूप निर्धारित करके साधक को तदनुसार सेवा का उपदेश देते हैं । सद्गुरु साधक रूपी, आत्मा

के परम पुरुष हैं जो अधिकारी शिष्य रूपी तरुणी के भोजता हैं । जब अधिकारी शिष्य ज्ञान और भक्ति की युवावस्था को पंहुच जाता है तो प्रेम संयोग के निमित्त भगवान् प्रियतम गुरु अथवा सद्गुरु रूपी दूती भेजकर उसे अपने आस बुलाते हैं । उनका संदेश प्राप्त कर चेतन को अपने नित्य सम्बन्ध का स्मरण हो जाता है । गुरु अथवा सन्त रूपी सखियाँ साधक शिष्य को इसी स्थिति में साथ लेकर प्रियतम ~~सुख-अवस्था~~ से सम्मिलित कराती हैं । उन्हें श्रीकृष्ण के प्रेम सानिध्य में पंहुचा देती हैं । सद्गुरु दम्पति के अंश से उत्पन्न श्रीकृष्ण के लीलाधाम की नित्य लीलानुरत्मा सखियों के अवतार हैं । जीव उन्हीं के अनुग्रह से लीला रस का सम्यक् प्रकार आस्वादन कर सकता है । सद्गुरु रसिक भावना का सम्बन्ध देते हैं । कामदेन्द्र-मणि जी ने इसी कारण उन्हें 'महल रस भेदी' कहा है ।<sup>१</sup> ऐसे रसज्ञ की सेवा करके साधक युगल सरकार से अपने नित्य सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

सद्गुरु का सबसे महान् उपकार शिष्य अथवा साधक के महाकारण या चित् शरीर में उस प्रकार की भावना प्रतिष्ठित करना है जिससे उसके समस्त <sup>आधिक</sup> ~~लौकिक~~ सम्बन्धों और व्यवहारों का विच्छेद होकर श्री राधाकृष्ण के चरणों में दृढ़ अनुराग स्थापित हो जाता है । उसके प्राकृत अहंकार से वह स्थूल शरीर के माता पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र आदि सम्बन्धों को अपना समझता था परन्तु दीक्षापरान्त इस नये शरीर में अप्राकृत अहंकार की स्थापना से वे सब सम्बन्ध निरर्थक हो जाते हैं और दम्पति का नाताही एक मात्र नाता रह जाता है । वे सम्बन्ध सादि, सान्त अस्थिर और माया जनित थे परन्तु यह सम्बन्ध दिव्य और स्थायी होता है । इस लौकिक सम्बन्ध भावना की अलौकिक सम्बन्ध भावना में परिणित<sup>२</sup> में रसिकों ने भाव परिष्कार की एक अन्यन्त स्वाभाविक पद्धति को अपनाया है । भक्ति की इस रागात्मिका स्थिति में सिद्ध देह से नित्य धाम में लीला आस्वादन होता है । सद्गुरु की दीक्षा अष्ट सखियों में से किसी एक के आनुगत्य या चर्चा

१ नित्य महल रस भेद के, भेदी भाव उदार ।

ऐसे सद्गुरु खोजिये, उर धरि सरस विचार ॥

श्री सीताराम भट्ट केलिकादम्बिनी पृ० ३

२- लोके पि दुष्यते साक्षात्सम्बन्धस्य प्रगल्भता

किमुनर्जान की जानी सर्व भाव प्रभूरके ॥ अगस्त्य संहिता पृष्ठ १३४



अनुकरणा विधायक होती है जिसमें मंजरी के द्वारा प्रवेश होता है । यह काम और सम्बंध दो प्रकार की है । कामरूपा या कामप्राया जैसे कुब्जा की रति सम्बंध रूपा जैसे नंद, यशोदा, गोपादि की जिसमें श्रीकृष्ण से माता, पिता, मित्र जैसा सम्बंध होता है । निकुंज भाव या गोपी भाव के उपासकों को ललिता आदि किसी महान प्रेमिका गोपी को गुरु मान कर उनसे उपरवर्णित किसी मंत्र की दीक्षा लेनी होती है । भक्त और भगवान् के बीच मधुर, सख्य दास्य, वात्सल्य और शान्ति पांच प्रकार के भाव सम्बंध हैं । भावना सम्बंध देते समय सद्गुरु साधक को इनमें से किसी रस विशेष का उपदेश देते हैं उसी के अनुकूल परिकर रूप के वर्ण, वय, सेवा और नाम आदि निर्धारित करते हैं । इन्हें उपासक परिस्मृति कहा जाता है । इस में ग्यारह भाव हैं । यथा -

(१) सम्बंध (२) बयस (३) नाम (४) रूप (५) यूथ (६) वेश (७) आज्ञा (८) वाज (९) सेवा (१०) पराकाष्ठा श्वास एवं (११) पात्य दासीभाव ।

उपासक परिस्मृति में सम्बंध-भाव की प्राप्ति ही न सबमें प्रमुख है ।

सम्बंध भाव - उपासक की स्वाभाविक वृत्ति के अनुरूप ही सम्बंध का निर्धारण होता है । और सद्गुरु साधक शिष्य से सम्बंध सूत्र एवं रस भोग की प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं । उसके अन्तःकरण में उस भाव के सतत स्फुरण और परिपक्वता के लिए सम्बंध के विविध तत्त्वों को विस्तार पूर्वक हृदयङ्गम कराते हैं । साधक को ऐसी प्रतीति होने लगती है कि श्री राधारानी मेरी जीवनेश्वरी हैं और मैं उनकी परिचारिका हूँ । श्री ब्रजेश्वर ही हमारे प्राणेश्वर हैं ।

वयस - सम्बंध भाव निर्णयित हो जाने पर सद्गुरु साधक के चित् शरीर के वय का निर्णय करते हैं और उसे दिव्य दम्पति की सखियों की किसी श्रेणी में स्थान देते हैं । आयु भेद से उनको मधुर सखी, मंजरी, मुग्धा, वय, सन्धिनी, मध्या, प्रोढ़ा और नायिका सात श्रेणियों में से किसी एक में सेवा के अनुरूप स्थान दिया जाता है । इस सम्बंध में यह विचारणीय होता

है कि श्रीकृष्ण जी से सखी का जो सम्बन्ध है उसी के अनुरूप साधक के एक अपूर्व स्वरूप का आविर्भाव होगा जिसे व्रज ललना स्वरूप की संज्ञा दी जायगी। सेवा के अनुरूप ही स्वरूप की आवश्यकता है जो दस वर्ष की आयु से सोलह वर्ष की आयु ही तक माना जाता है। व्रज ललनाएँ नित्य किशोरी हैं उनमें अवस्था भेद से होने वाले परिवर्तनों का कोई विचार नहीं होता।<sup>१</sup> साधक अपने किशोरी रूप में ही भावना करता है।

**नाम -** वय और सेवा के अनुरूप साधक के चित् शरीर का नाम भी सद्गुरु निश्चित करते हैं। यह नाम मंत्र दीक्षा के समय दिये गये शाखा-गति नाम से सर्वथा भिन्न होता है और परिचय की निकटता से विशेषा सम्बद्ध होता हुआ स्नेह स्निग्धता परक होता है। इस सखी भाव से उपासना करने वालों के नामों में पीढ़े अली, सखी, प्रिया, कला, कली, मंजरी आदि क्षणें लगी रहती हैं। नाम साधक की रुचि देखकर दिया जाता है और व्रज ललनाओं के बीच मनोरमता का प्रकाशक होता है।

**रूप -** रूप का सखी भाव में विशेषा महत्व है क्योंकि अचित्य चिन्मय रूप-यौवन सम्पन्न किशोरी ही श्री राधारानी की परिचारिका की योग्यता रख सकती हैं। अतः रूप का निर्णय भी सद्गुरु के द्वारा होता है। वे किस यूथ में सखी को स्वीकार किया गया है। उसके परिप्रेक्षा में किंरी किशोरी के रूप यौवन वैशिष्ट्य के अनुरूप उसका वेश, चाल ढाल, व्यवहार, तथा अन्य क्रिया कलापों का नियमन करते हैं। ये सभी रूप के अन्तर्गत हैं। स्वरूप इससे थोड़ा भिन्न है। उसमें रूप के अतिरिक्त अन्य विशेषताओं का समन्वय होता है।

**यूथ -** रसिक उपासना में श्री राधा ही मुख्य यूथेश्वरी हैं। उनकी अष्ट सखियाँ हैं जिनके ८ प्रसिद्ध यूथ हैं। इन्हीं अष्ट सखियों में से किसी एक के यूथ में रहकर उपासक को कर्म करना होगा। ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि किसी सखी के यूथ में रहकर यूथेश्वरी की प्रमुख सेवा

१ राम रसिक साहित्य में मधुर उपासना, भुवनेश्वर मिश्र माधव पृष्ठ ८१

कायविली में से कोई हल की सेवा का दायित्व उसे संभाला जाता है ।

यूथेश्वरी की जो सेवा है वही किंकरा की सेवा भी मानी जाती है । यूथेश्वरी के नाम पर यूथ का नाम होता है ।

सेवा - श्री राधा जी मुख्य यूथेश्वरी हैं । चन्द्रावली, ललिता आदि अन्य यूथेश्वरियों और उनकी यूथ परिचारिकाओं के सहयोग से लीला सम्पादन के लिए नित्य निरंतर प्रयत्नशील रहना और पदा विपदा बनाकर रस वृष्टि हेतु तदनुकूल भाव ग्रहण करना उनकी प्रमुख परिचर्या है । श्रीकृष्ण की लीला की ये सभी अपनी अपनी योग्यतानुसार अभिमानिनी हैं । जिनकी जो सेवा है वही उनका अभिमान है । इसी सेवा के अनुसार विविध विधि के गुणों को धारण करने की सद्गुरु आज्ञा देते हैं । जो सेवा के अन्तर्गत है ।

ये आज्ञायें नित्य और नैमित्तिक दो प्रकार की होती हैं अष्ट काल में जहाँ जैसी आवश्यकता हो निश्चितता और प्रसन्न मुद्रा से उसकी पूर्ति करनी चाहिये । समय परिस्थिति और उपयोगिता की दृष्टि से इस सेवा में परिवर्तन भी होते रहते हैं ।

वास - विशेष नामधारिणी किंकरा का व्रज के किस ग्राम में वास होना चाहिये, उसका जन्म कहाँ हुआ था, कहाँ व्याही गई किस कुंज में निवास है इस धारणा में दृढ़ता से विश्वास किये साधक-सखी को अपनी यूथेश्वरी की भावना करनी पड़ती है ।

सेवा - सेवा से तात्पर्य है यूथेश्वरी की आज्ञा का पालन । यूथेश्वरी जिस काम को करने का निर्देश करती है सखी नित्य दासी भाव से उन्हीं कार्यक्रमों में रत रहती है । उनकी आज्ञा के बिना स्वतंत्र होकर श्री कृष्ण के प्रति रति प्रकाश करना भी अनुचित है । सेवा इसी विशुद्ध अर्थ में सेवा है । श्री राधा की अष्टयाम सेवा दासी का प्रमुख कर्तव्य है । इनमें सर्वश्रेष्ठ पात्य दासी भाव है । इस भाव में दासी के सेवा भाव में थोड़ी घृष्टता देखी जाती है । वह विदग्ध विदग्धतापूर्वक प्रतिदिन युगल क्षीर को विहार कराती है और चतुराई से अपनी

सखी राधा को मान की शिदा भी देती है । वही यूथेश्वरी ललिता हमें अपनी पात्य दासी बनाले, उसकी अनुचरी बन कर मैं प्राण प्रिय राधाकृष्ण के आनुगत्य के आनन्दोल्लास का लाभ मुझे मिलता रहे साधक सखी की यही कामना रहती है ।<sup>१</sup> ताम्बूल रचना, पयदान, चरण मर्दन, संगीत वाद्य द्वारा मनोरंजन सेवा के मुख्य कार्य हैं ।

वेश - वेश रूप और स्वरूप का साधक है । वह चाल ढाल, चर्चा और स्वभाव का प्रारम्भिक अंग है । वेश अनेक अंशों में किसी के व्यक्तित्व का अग्रदूत बनकर प्रकृति के अंतरंग का उद्घाटन कर्ता भी बन जाता है । गोपी या सखी वेश, सौन्दर्य, माधुर्य, औदार्य, लालित्य, उल्लास और सख स्नेह का प्रतीक है । उसमें सहज आत्म समर्पण और सरलता का भाव होने से श्रीकृष्ण सेवा में वह विशेष अनुकूल पड़ता है । सद्गुरु साधक को इसी वेश को दृढ़ता से निभाने का निर्देश देते हैं ।

सम्बध व्याख्या के अनुसार उसके सच्चे रस भोग और बोध के लिए सद्गुरु अपने शिष्य को निरन्तर सम्पूर्ण सम्बधों का चिंतन करते रहने का निर्देश करते हैं । उसकी सुदृढ़ता के निमित्त अष्टयाम भावना और मानसी पूजा का विधान है । मानसी पूजा को ही प्रकारान्तर से अष्ट याम लीला कहा जाता है जिसका चिंतन साधक को अपने उपास्य से सच्चा नाता स्थिर करने में सहायक होता है । सांसारिक फगड़ों से हटकर उसका मन युगल सरकार की नित्य केलि भावना में तबाकार होजाता है । इसी को रस भोग की दशा कहते हैं ।

१ सान्द्रप्रेमरसः प्लुता प्रियतमा प्रागल्भ्यमाप्तातयो :

प्राणश्रिष्ठ क्यस्ययोरनुदिनं लीलाभिसंग्रहैः ॥

वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिदां रसैः ।

ये यं करापतीह हन्त ललिता गृह्लातु सा मां गणी ॥

अष्टयाम भावना में व्रजलीला या साकेत लीला के अंतर्गत प्रिया प्रियतम की नित्यलीला में पंचकाल (अष्टयाम) एवं अष्ट कुंज सेवा का ध्यान किया जाता है। यह रसिकोपासना का प्रमुख अंग है। सभी साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अष्टयाम लीला का बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया गया है। उसका प्रारम्भ ब्राह्म मुहूर्त से ही होजाता है। साधक उत्थान से लेकर शयन वेला तक की युगल विहार लीला का क्रम से ध्यान करता है जिससे गोलोक की लीला की फाँई दीख पड़ती है। और धीरे धीरे उसमें तन्मयता बढ़ती जाती है। जिस भाव विशेष में साधक की जितनी अनुरक्ति बहरी होती है उतने ही समय तक वह इसमें निमग्न रहता है। और कालान्तर में भावना के सिद्ध होने की स्थिति बन जाती है। साधक को अपने इष्ट की विहार लीला का चाहे जब साक्षात्कार होने लगता है। उसके लिए काल का कोई प्रतिबंध नहीं रहता। लीला की प्रत्येक समय पुनरावृत्ति होती रहती है जिसकी अनुमति से किसी समय साधक में वांछित भाव प्रविष्ट हो सकता है। रसिक सन्त इस भाव मग्न स्थिति में दिव्य लीला का दर्शन करते हैं जो इस साधना का प्रत्यक्षा फल है। और जिसमें साधक सदैव मुक्ति का सुख भोग करता है।

अष्ट सखी, अष्ट मंजरी के नाम, वर्ण, सेवा, वस्त्र, वय सम्बन्धी एक परम्परागत मान्यता इस साधना मार्ग में निरंतर चली आती है जिसमें सखी और मंजरियों की दिशा आदि की प्रतिष्ठा की गई है। इनके द्वारा सखी-मंजरी-संवत्सरे श्री राधा माधव की सेवा का विधान है जिसके माध्यम से गुरु रूपानित्य सिद्धा सखी के वाङ्मय पार्श्व में रहकर उनकी अनुगता से होकर साधक सदा सर्वदा सेवा सुख भोग करता हुआ प्राकृत कृत्य होजाता है।

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र का रंग	वयस	सेवा
	श्रीनंद नंदन	इन्द्रनीलमणि	नीला	१५ वर्षी, ६ मास	
	श्यामासुन्दर			७ दिन	
	श्रीमती राधिका	तप्त स्वर्ण	पीत	१४ वर्षी, २ मास	
	रासेश्वरी			१५ दिन	

सखी

oooooooooooo

उपर	श्री ललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४,३,१२	ताम्बूल
ईशानकोण	श्री विशाखा	विजली	तारावर्ण	१४,२,१५	वस्त्रादि
पूर्व	श्री चित्रा	काश्मीर	कांचिवर्ण	१४-१-४	चित्र
अग्निकोण	श्री इन्दुलेखा	हरिताल	दाहिमपुष्प	१४,२,१२	अमृतासन
दक्षिण	श्री चम्पकलता	चम्पापुष्प	चील वर्ण	१४,२,१४	चंवर
नैऋत्यकोण	श्री रंगदेवी	पद्मकिंजल्क	जवा पुष्प	१४,२,८	चंदन
पश्चिम	श्री तुंगविद्या	काश्मीर	पाण्डुवर्ण	१४,२,२०	गानवाद्य
वायव्यकोण	सुदेवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४,२,८	जल

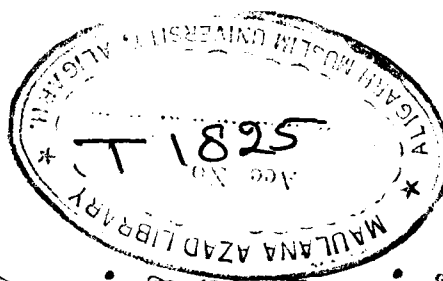
मंजरी

oooooooooooo

उपर	श्री रूपमंजरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१३,६,०	ताम्बूल
ईशानकोण	श्रीमंजुलीला मंजरी	तप्तस्वर्ण	किशुक पुष्प	१३,६,७	वस्त्र
पूर्व	श्री रसमंजरी	चंपापुष्प	हंस वर्ण	१३वर्ण	चित्र
अग्निकोण	श्री रतिमंजरी	विजली	तारावर्ण	१३,२,०	चरणसेवा
दक्षिण	श्रीगुण मंजरी	विजली	जवापुष्प	१३,२,२७	जल
नैऋत्यकोण	श्री विलासमंजरी	स्वर्णकितकी	भ्रमरवर्ण	१३,०,२६	अंजनसिंदूर
पश्चिम	श्रीलवंगमंजरी	विजली	तारावर्ण	१३,६,१	माला
वायव्यकोण	श्रीकस्तूरीमंजरी	स्वर्णवर्ण	कांचिवर्ण	१३ वर्ण	चन्दन

भक्ति ग्रंथों में इन सखी मंजरी नामों में अन्तर पाया जाता है । उनकी सेवा आदि भी भिन्न बताई गई है । उपरोक्त सूची के अतिरिक्त भी कुछ और नामों का उल्लेख मिलता है । यथा : -

- (१) श्री अनङ्ग मंजरी, (२) श्री मधुमती मंजरी, (३) श्री विमला मंजरी  
 (४) श्री श्यामलता मंजरी, (५) श्री पालिका मंजरी, (६) श्री मंगला मंजरी,  
 (७) श्री धन्या मंजरी, (८) श्री तारका मंजरी- इनकी दो दो मंजरियाँ अथवा नर्म सखियों के नाम इस प्रकार वर्णित हैं ।



(१) श्री लवंगा मंजरी, (२) श्री रूप मंजरी, (३) श्री रस मंजरी, (४) श्री गुणमंजरी  
(५) श्री रति मंजरी, (६) श्री मृदु मंजरी, (७) श्री लीलामंजरी, (८) श्री विलास  
मंजरी (९) श्री विलास मंजरी द्वितीय, (१०) श्री केति मंजरी, (११) श्री कुंदमंजरी  
(१२) श्री मदन मंजरी, (१३) श्री अशोक मंजरी, (१४) श्री मंजु लीला मंजरी,  
(१५) श्री सुधा मंजरी, (१६) पद्म मंजरी । इनके साथ प्रधान अष्ट सखियों के  
नाम भी अवान्तर से पाये जाते हैं । उनकी संख्या भी बहुत अधिक बताई गई है ।

इस भजन पद्धति में सबसे पहले असत्संग ( धन, मान, स्त्री  
आदि) और इन्द्रिय सुख भोग का त्याग, जन संसर्ग में अरति, श्री कृष्ण के नाम  
रूप, लीला, गुण आदि के चिंतन के अतिरिक्त किसी भी अन्य बिषय के श्रवण  
कथन, मनन आदि से चित्त की सहस्र विरक्ति, भेषडा तक का त्याग, और अपने  
को व्रज में निवासित क्षीरी वय वाली सुंदरी गोपिका के रूप में मंजरी देह प्राप्त  
गोप कुमारी के रूप में लेजाकर- मन से ऐसा मान कर विशुद्ध रागमयी ललिता  
आदि सखियों, रूप मंजरी आदि मंजरियों एवं तदनुमा नित्य सिद्धा अन्यान्य व्रज  
देवियों में से किसी एक के अनुगत होकर उसके मधुर सेवा भाव का अवलम्बन करके  
उक्त गुरु रूपा सखी की वाणी और रहकर निरंतर सेवा संलग्न रहना- अर्थात्  
मन में ऐसा भाव रखना कि मैं एक क्षीर वय की परम सुंदरी गोपी रूपा हूँ,  
मेरे हृदय में इन्द्रिय सुख, नाम कीर्तिलोक परलोक या योग मोक्षा- किसी की  
वासना का लेश नहीं है । श्री राधा माधव की सुख-सेवा रसास्वादन ही मेरा  
स्वभाव है और मैं अपनी इन गुरु रूपा नित्य सिद्धा सखी के वाम पार्श्व में रहकर  
सदा सर्वदा श्री राधा माधव की यथोचित सेवा में संलग्न हूँ ।

वाह्य रूप से प्रतिष्ठा श्री कृष्ण नाम का मधुर जप और  
संसार के समस्त भोग पदार्थ एवं प्रपंचों से नित्य उपरामता की चेष्टा भी इस  
दिशा में बहुत आवश्यक है ।

साधक देह से सिद्ध देह की प्राप्ति के उक्त विश्लेषण से  
तात्पर्य निकला कि उपासक के मन में शनैः शनैः यह दृढ़ निश्चय होना अनिवार्य है

किं भगवान् श्री कृष्ण के प्रतिबिम्बित संसार में उसकी कोई अन्य गति नहीं है वे ही उसके प्रिय, आराध्य, पालनकर्ता, सर्वस्व हैं। ऐसी दशा में दूसरे तत्त्वों का अभाव होने लगता है और विकारों की निवृत्ति हो जाती है। यह निश्चित है कि भौतिक या प्राकृत देह से भगवत्प्राप्ति संभव नहीं है। प्राकृत देह के स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन भेद हैं परन्तु वे तीनों ही इस दृष्टि से निरर्थक हैं। साधक देह भी प्राकृत देह नहीं। साधक देह भी साधनाश के योग से प्राप्त होती है। कारण देह भी आनन्दात्मक है परन्तु उसमें अविद्या की निवृत्ति नहीं होती इसकी निवृत्ति होने पर महा कारण देह का आविर्भाव होता है परन्तु स्वभाविक रूप से नित्य भगवदाश्रय एवं भगवद्प्रतीति और चित्स्वरूप में जीव का भगवद्लीला आस्वादन सिद्ध देह का मुख्य लक्ष्य है। इस सिद्ध देह की प्राप्ति की तीन श्रेणियाँ हैं। पहली भाव देह या भक्ति देह इसमें स्थायी रूप से भगवत्प्रतीति का सम्पादन होने लगता है और वह नष्ट नहीं होता। भाव देह की प्राप्ति के पूर्व ही परभाव की निवृत्ति हो जाती है जिससे भाव स्वभाव के रूप में स्थिर होने लगता है उसमें सम-रसता और स्थायित्व आने लगता है। गुरु के उपदेश से स्वभाव खुल जाता है। तब से उसे विधि निषेध की आवश्यकता नहीं रहती स्वभाव ही स्वतः निर्देशक बनकर स्वयं नियंत्रक बन जाता है उसे बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती। स्वभाव एक अन्तर्वर्ती शक्ति है जो अन्दर से भक्त को परिचालित करती है। स्वभाव प्राप्ति के अनन्तर इच्छा लौट नहीं करती। न बाह्य शास्त्र और यम नियम की आवश्यकता ही रहती है। भाव का विकास ही प्रेम है। प्रेमावस्था की प्राप्ति ही पूर्णता की अवस्था है। प्रेम देह में सम्मिलन, आसक्ति की तीव्रता, निश्चलता, अखण्ड विश्वास, सर्वतोभावेन दृष्ट से अद्वैतता एसोद्गम् का प्राधान्य होता है। प्रेम देह से सिद्ध देह की प्राप्ति होती है। "भाव देह विरह का देह है, प्रेमदेह मिलन का और सिद्ध देह में न विरह है, न मिलन, वह तो नित्य अखण्ड लीला आस्वादन की अवस्था है" १

१ भक्ति रहस्य- म० गोपीनाथ कविराज, कल्याण हिन्दू संस्कृति, अंक, पृ० ४४३



### चतुर्थ अध्याय

====

### \* सम्बन्ध योजना \*

एकत्व एकान्त और अनेकत्व स्तब्ध का प्रयोजक है । महत् सिद्धि के लिए अनेकत्व अनिवार्य है अतः महान् पुष्पाँ और देवत्व की शक्तियों से युक्त महत्जनों का आश्रय प्राप्त करने की परिपरा युगयुगान्तर से चली आ रही है । महत्जनों के नामाश्रय से ही छोटी मोटी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । उनका नाम लेकर ही जिन्से कार्य निकलना है उनको प्रभावित कर लिया जाता है । नाम के साथ महत्जनों की गुण गरिमा, चरित्रावली, स्वस्म का सम्बन्ध है जिनका अपना विशेष महत्त्व होता है । अतः छोटे और आश्रित प्राणी बड़ों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने को उत्सुक रहते हैं । छोटी से बड़ी का भी गौरव होता है, अतः महत्जन भी छोटी को आश्रय देने में और उसके निर्वाह में महानता की अनुभूति करते हैं । दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । भगवान् अपने लीला विस्तार के निमित्त विभिन्न परिकरों को जन्म देते हैं । उनकी विभिन्न शक्तियाँ इस सर्जनत्मक प्रसार में पूरा पूरा योगदान करती हैं । नाता या सम्बन्ध की स्थापना प्रीति की दृढ़ता का प्रथम सोपान है । नाते से ज्ञान पहचान होती है ज्ञान पहचान से प्रीति, प्रीति से प्रतीति और प्रतीति सर्व सिद्धियाँ-समस्त कल्याणों का मूल है ।

भौतिक शरीर और सप्ताहिक सम्बन्धों की प्रगटता जब इतनी महिमावान् है तो अप्राकृत शरीर से भगवदाश्रय में प्रभु से सम्बन्ध निर्वाह की तो बात ही क्या है । जिससे जिसका जो नाता या सम्बन्ध होता है सम्बन्धी के हृदय में उसका एक अभिमान होता है । यह अभिमान सम्बन्ध की प्रगटता में सहायक है ।

1- जाने बिनु न होय परतीती, बिनु परतीति होइ नहीं प्रीति ।

प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई, जिमि भगपति जल के चिकनाई ।।

-रा0च0मानस उत्तरकण्ठ चौपाई 89

- 2 -

श्रीमद्भागवत् में ऐसे ही सभी भावों को सांसारिक जनों से हटाकर परमात्मा को समर्पित करने का निर्देश दिया गया है; काम, क्रोध, भय, स्नेह और सुहृदभाव इनमें से कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय तो वह भाव लौकिक रूप बंध कर ईश्वरीय हो जाता है। अस्मदर्शन रूप-ज्ञान ही पुण्य के मोक्ष का कारण है और वही उसकी अहंकार रूपी हृदय ग्रंथि का वेदन करने वाला है।<sup>1</sup> अतः संधि-विग्रह, प्रेम-प्रीति, ईर्ष्या-प्रसूया सभी भावों में भगवद् सम्बन्ध से ही निर्वह करना चाहिये। जिस स्थिति में जिससे जो भाव स्थापित हो उसका भगवान् के सम्बन्ध से ही प्रतिकार करना चाहिये। भक्तवर तुलसीदास जी ने भक्तिमती मीराबाई ने कुछ इसी प्रकार का परामर्श दिया था।<sup>2</sup> कारण यह है कि सधक की भगवान् के प्रति जिस प्रकार का भाव होता है वे भी उसी भाव से उससे उस सम्बन्ध का निर्वह करते हैं। गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं चौधपा की है - 'हे अर्जुन। मुझे जो जिस भाव से भजता है, मैं उसी प्रकार के भाव से उससे मिलता हूँ। इसलिए बुद्धिमान पुण्य सबप्रकार से मेरे अनुवर्ती रहते हैं।'<sup>3</sup> अतः सभी कथनों का यह अभिप्राय है कि भगवान् से किसी न किसी प्रकार के भाव या सम्बन्ध की स्थापना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध से सदा सर्वदा उनका स्मरण ध्यान बना रहता है वे इन भावों के अस्मन्वन

1- "ज्ञान निः सार्थयि, पुण्यस्यात्मदर्शनम्।

यदादुर्बन्धि तन्ते हृदय ग्रंथि भेदनम् ॥" - श्रीमद्भागवत् 3/26/2

2- "जाते सवै राम के मनियत सुहृद सुखेत्य जहाँ लो।

अजन कहा अक्षि जो फूटे, बहुतक कहौ कहा लो ॥

तुलसी सी सब भाँति परम हित फूज्य प्रान ते प्यारो।

जासी होय सनेह रामपद, सतो मतौ हमारो ॥;"

- विनय पत्रिका, गो० तुलसीदास पद संख्या 174

3- ये यथा मां प्रपद्यन्ते तस्मैव भजाम्यहम्।

मम कर्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

- गीता, अध्याय 4, श्लोक ॥.

- 3 -

बने रहने से साधक की चंचल मनोवृत्ति सब ओर से हट कर भगवान में ही केन्द्रीभूत हो जाती है । साध्य-साधन की भाषा में इसकी 'भावयोग' संज्ञा है ।

भक्तों के विभिन्न सम्बन्ध अथवा अनुराग की पूर्ति भगवान की प्रेमानुगा भक्ति के अंतर्गत है । इसके प्रचार के लिए वे मानव विग्रह धारण करते हैं । कौंसदि दुष्टों का विनाश तो इनकी इच्छा मात्र से, बिना अवतार लिए भी हो सकता था । मला जिनके मृकुटि क्लृप्त से विश्व की उत्पत्ति-स्थिति प्रलय होती है उसे कौंस-रावण-कुम्भकर्ण हिरणाक्ष्य जैसे तुच्छ कीड़-मकोड़ों के संहार के निमित्त निज स्वल्प से, <sup>अवतार की क्या आवश्यकता! यह जाना जा उठता है कि भगवान के-</sup> अवतार का एक कारण दुष्टों का दमन भी है परन्तु वास्तव में उसका मुख्य हेतु प्रेमी भक्तों को अपने प्रेमास का रसस्वादन कराना तथा भक्तों के दिव्य प्रेम का स्वरूप रसग्रहण कराना ही हो सकता है । इसीलिए श्रीमद्भगवत् में कुन्ती ने उनसे कहा था - "भगवन् आपने परमहंस, निर्मल आत्मा मुनीश्वरों में भक्तियोग का विधान करने अथवा भाव योग की स्थापना करने के लिए ही अवतार धारण किया है । हम स्त्रियों इस गूढ़ तत्त्व को किस प्रकार जान सकती हैं ।

सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा का निर्गुण निराकार रूप भी है । जानी भक्त इस लोक और पालोक के भोगों में पूर्ण वैराग्य धारण कर विषयों के तात्त्विक रूप को समझ लेते हैं । इससे उन्हें सत् और असत् का विवेक हो जाता है जिसके परिणाम स्वल्प विवेकी को संसार के समस्त विषय (पदार्थ) दुःख स्वल्प ही प्रतीत होते हैं<sup>2</sup> । ऐसा मानकर उनमें हेय बुद्धि रहते हुए वे केवल ब्रह्म में आसक्ति रखते हैं । श्रवण, मनन, निदिध्यासन ज्ञानियों के

1- तथा परमहंसानां मुनीनाम मलात्मनाम् ।

भक्तियोग विधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ श्रीमद् भगवत् 1/8/20

2- परिणामताय संस्कार दुःश्रेणवृत्तिविरोधान्च दुःखमेव सर्वविवेकिनः ।

- 4 -

प्रधान साधन है । इनमें बुद्धितत्त्व की प्रधानता रहती है और स्वभाव से वे कठोरता सहन करने के अभ्यासी होते हैं । भगवान् से जानियों का केवल बुद्धि विवेक से तात्त्विक स्वस्म्य निदर्शन का ही प्रयोजन है । यह बड़ा ही दुर्गम मार्ग है । वास्तव में बात यह है कि जहाँ योगीश्वरों मुनीश्वरों की मनवाणी की पहुँच नहीं - वह निर्गुण, निराकार, सवन्तियामी, सत्यज्ञान अनन्त स्वस्म्य भू या ब्रह्म स्थूलबुद्धि वाले पामर प्राणियों को कैसे प्राप्त हो सकता है । शक्ति भाव से ज्ञान की उपासना में श्रद्धा की प्रधानता अपेक्षित होती है । जिसके आलम्बन शक्ति माता-पिता, गुरु और महामुग्ध होते हैं । उनके प्रति श्रद्धा का निर्वाह किसी महाभाग के द्वारा हो सकता है । श्रद्धाविहीन मनुष्य तो मृतक कंकालवत् है, सर्वथा भयावह है । वह अपने अतः कारण में दुष्टी रहता है । मन इन्द्रियों का संयम, वैराग्यपूर्वक सब लोकों के अधीश्वर, सर्वसुहृद् भगवान् की आराधना विधि-विधान संस्तिष्ठ जीवन चर्या, बड़ी संशय सम्पन्न और अनिश्चित स्थिति है । श्रुति कहती है, "श्रद्धात्त्व सोम्य" "अजश्चाश्रददवानश्च संशयात्मा विनश्यति" ।

अस्तु राग मार्ग ही सुलभ और निरापद मार्ग है जिस पर विभिन्न प्रीति सम्बन्धों का निर्वाह करता हुआ साधक निरंतर अग्रे बढ़ता जाता है । अपने राग के अनुसार ही हम अपने प्रभु का स्वस्म्य निर्धि करते हैं - अपने से आकार प्रकार और स्वभावधारी व्यक्ति में ही हमारी प्रीति हो सकती है । गीता में अपनी योग्यता के अनुसार वे प्रभु प्राणीमात्र पर अनुग्रह करके अवतार धारण करते हैं और अपनी क्रीड़ाओं से भक्तों की अनुरजन करते हैं । इन लीला और चरित्रों का श्रवण कीर्तन भक्तों को भगवान् में अनुरक्त करता है ।

-----

1- अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।

भजते तादृशीः क्रीडायाः श्रुत्वात्तत्परो भवेत् ॥

श्रीमद् भागवत 10/33/37

- 5 -

भगवान के प्रति रागानुरक्ति पूर्ण दो प्रकार के सम्बन्धी का भक्ति ग्रंथों में उल्लेख है (इन्हें रागात्मिका या पराभक्ति भी कहा गया है) । इनमें से प्रथम है राग सम्बन्ध जन्य और दूसरा है कामजन्य, राग सम्बन्ध जन्य या सम्बन्धानुगा अनुरक्ति की अवस्थिति उन ब्रजवासियों में मानी गई है जिनका श्रीकृष्ण के प्रति भाई, पुत्र, मित्र, सभा जैसा प्रेम था । सभी की उनमें स्वाभाविक प्रेम-मयी तृष्णा थी । वे सभी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य माधुर्य से मोहित होकर स्वाभाविक प्रेम-प्रयास में उनसे अनुराग रखते थे पान्तु उपरान्त में से कोई सम्बन्ध भी इस आकर्षण के सक्रिय सहयोग का कारण बना हुआ था ।

दूसरी कामजन्य भक्ति । इसका लौकिक काम वासना अथवा स्वसुख की तृष्णा प्रधान और सागात्मक दूषित मनीवृत्ति से तत्पर्य नहीं है । काम से यहाँ गोपियों के उस स्वसुख के त्यागमय प्रेम से तत्पर्य है जिसमें स्वार्थ का लवलेश नहीं, निजी सुख कामना की तनिक भी वृद्धि नहीं और जिससे वासना का कोई संस्पर्श नहीं । श्री कल्लभाचार्य जी ने गोपियों के इस काम के सम्बन्ध में लिखा है:

प्रेमेव गोपारम्भणां काम इत्यगमत प्रथाम् ।<sup>2</sup> ।

गोपियों का श्यामसुन्दर के प्रति यह 'प्रेम' ही 'काम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि उनके हृदय में निजी सुख की इच्छा का लवलेश भी नहीं था । उनका उद्देश्य निश्चय ही श्री कृष्ण जी को सुख पहुँचाना था । उनका ज्ञानपान, शृंगार, केश प्रसाधन, सुगन्धि प्रयोग सब कुछ इसलिये कि श्री कृष्ण का आनन्दवर्द्धन हो । स्वसुख की निषिधात्मक इस भावना के कारण ही उनकी रागात्मिका भक्ति सर्वोत्कृष्ट मानी गई है । यही गोपियों के जीवन का मुख्य लक्ष्य था<sup>2</sup> । इस हेतु से

1- गीतमीय तंत्र

2- यदस्या कृष्णसौम्यार्थमिव केवलमुदयमः । — पद्मपुराण, पातालखंड

- 6 -

गोपियों की भक्ति 'कामज' होने पर भी उनके प्रेम के लिए 'काम' शब्द का प्रयोग हुआ है। परन्तु उसमें काम की तनिक भी गंध नहीं है।

गोपियों के 'कामज सम्बन्ध के अतिरिक्त' केवल कामज - सम्बन्ध और माना गया है। 'केवल काम प्रधान भक्ति' कुब्जा की थी। उसने भगवान् के अनुपम स्म सौंदर्य, केशोरावस्था जन्म अंग सौष्ठव पर मुख होना उन्हें अंगारग का अर्पण किया था। श्रीकृष्ण इससे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके कुवट्ट का विकार हटा कर उसे उत्तम प्रमदा बना दिया था। वह विविध स्म गुणों से सम्पन्न हो गई और मन्द मुसकती हुई श्रीकृष्ण का उत्तरीय पकड़ कर उनसे बोली "पुष्प श्रेष्ठ, मेरी साथ चलो। मैं अब आपको छोड़ नहीं सकती।" आपके दर्शनों से मेरा चित्त उन्मादित हो गया है, कृपा कीजिए। भगवान् ने अवसर आने पर उसकी इच्छा पूर्ण की। उसकी भक्ति काम वासना से प्रेरित थी। अतः इसे 'केवल कामज सम्बन्ध' कहा गया है। यह सम्बन्ध अत्यन्त निकृष्ट कोटिका है। सर्वथा दुष्प्राप्य, परब्रह्म परमात्मा स्वस्म, मीमांसावाता सर्वशक्तिमान प्रभु से याचना भी की तो समीगच्छा की तृप्ति की।

व्यास जी ने उसे 'दुर्मगा' कहा है<sup>2</sup>। भगवान् की आसगिनी होने का सौभाग्य वाली कुब्जा जिसका भाग्य कोई प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ था प्रणयवासना के कारण निरर्त्तज 'काम किंकरी' की श्रेणि में आ गई। ऊक्लनील मणिकार ने कुब्जा के प्रेम का 'साधारण रति'<sup>3</sup> सम्बन्ध माना है।

- 1- ततो स्म गुणोदार्य सम्पन्ना प्राह केशवम् ।  
उत्तरीयान्तमाकृष्ण स्मयन्ती जातदृक्कया ।।  
एहि वीर गृहं यामी न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।  
त्वमीन्मथितन्वितायाः प्रसीद पुष्पधर्मि । - श्रीमद्भगवत् 10/42/9 व 10
- 2- सै व कैक्यनार्थं तं प्राप्य दुष्प्रापमीरवरम् ।  
अंगारगपिनाहो दुष्मिदम्याचत् ।  
आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनाति कति चिन्मया  
रमस्व नीतनेह त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण । - श्रीमद् भगवत् 10/48/8 व 9
- 3- ऊक्लनीलमणि स्थायी भाव 30 - वां श्लोक

- 7 -

प्रेम के उक्त सभी प्रकार के सम्बन्धी को श्री स्वामी ने दो भागों में विभाजित किया है और उन्हें मुख्य भक्ति रस एवं गौण भक्ति रस की संज्ञा से अभिहित किया है। मुख्य भक्ति रस के अन्तर्गत उन्होंने पाँच रस-शान्ति, प्रीति, प्रेम, कसल तथा मधुर - बताये हैं गौण भक्ति रस के अन्तर्गत हास्य, वैभक्त्य, अद्भुत, वीर भयानक और कल्प है। प्रीति और प्रेम भावों की क्रमशः दास्य और सख्य नामों से पुकारा गया है। अन्य भक्ति मार्गीय आचार्य श्री प्रायः इसी वर्गीकरण का अनुसरण करते पाये जाते हैं। शान्ति रस का स्थायी भाव निर्वेद या धृति है जो अन्य भावों में होने वाली रति से भिन्न है। शैष्य, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भावों की रति उनके अनुसार होती है।

भक्ति के इन रसों की अनुभूति के संबंध में श्री स्वामी ने हरिभक्ति रसामृत सिंधु में विस्तार से विचार किया है। उनके अनुसार विभाग अनुभाव आदि से परिपुष्ट भक्ति ही परम रस स्व ग्रहण कर लेती है। कृष्ण विषयक रति इसका स्थायी भाव है जो विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा संचारियों से पुष्ट होकर भक्ति रस के आस्वादन में समर्थ होता है। भक्ति रस के आस्वादन के अधिकारी के ही लोग हैं जिनके हृदय में पूर्व जन्म की अथवा इस जन्म की सद्भक्ति की वासना स्थित होती है। जिनके पाप दोष भक्ति के कारण दूर हो चुके हैं जिनका चित्त भगवद् प्रेरणा से आनन्दमय और उज्ज्वल है जो भगवत् आदि भक्तिग्रंथों में रस लेते हैं और रसिकों के सत्संग में निरत हैं, भक्तों के हृदय में उसी से प्रीटानन्द एवं चमत्कार की पराकाष्ठा प्राप्त होती है।<sup>1</sup> इस प्रकार भक्ति रस की निष्पत्ति श्री स्वामी के अनुसार सहृदय एवं पूर्वजन्म के संस्कारों से परिदृष्टित हृदयों में ही मानी गई है।

अभिनवगुप्त एवं मध्वाचार्य आदि कव्यशास्त्रकारों का रस निष्पत्ति सम्बन्धी अभिमत इससे थोड़ा भिन्न है। उनके अनुसार भी सहृदय व्यक्तियों के

-----

1- हरिभक्ति रसामृत सिंधु दक्षिण विभाग प्रथम लहरी, अच्युत ग्रंथ माला कारी.

हृदयों में रस की निष्पत्ति की वासना रहती है और पूर्व संस्कार संबलित व्यक्तियों में ही रस का संचार होता है परन्तु उनके कथनानुसार रति आदि स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और घटनास्थल में स्थिति होते हैं वे ही काव्य अथवा नाट्य (अभिनय) के द्वारा प्रगट होकर विभाव, अनुभाव तथा संचारी कहलाते हैं और उनसे व्यक्त होकर स्थायी भाव काव्य में ही रस स्मृता जाता है ।<sup>1</sup> । परन्तु भक्ति रस का निष्पत्ति आधार आलम्बन ~~रस~~ भक्त हृदय में पहले से ही होता है । भक्ति रस में आराध्य श्री कृष्ण एवं आराधक भक्त दोनों ही अलविन विभाव हैं । भक्त हृदय आधार आलम्बन है और ~~भगवान्~~ भगवान् मुख्य विषय आलम्बन हैं ।<sup>2</sup> भक्त की यही अनुभूति शब्दों में अभिव्यक्त होकर सहृदय पाठक, श्रोता अथवा प्रेक्षक समाजिकों में भी रस की अभिव्यक्ति करती है । ' रसी वै सः ' श्रुति के अनुसार आनन्द स्य भगवान् ही भक्तों के हृदय का आलम्बन है । जीव या भक्त की आत्मा उस का और स्य है जो अविद्या के आवरण से परिच्छन्न होने के कारण श्री स्य परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता परन्तु प्रेमानुभूति की प्रेरणा तथा सत्त्व गुण के उदय होने से जब अविद्या का आवरण हट जाता है तो आत्मा सत्य स्वस्य आनन्द एवं श्री स्य परमात्मा की अनुभूति करने लग जाता है । उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होने लगता है । यही भक्तों का अलक्ष्ण, सतत् ब्रह्मानन्द है । योगीजन समाधिस्थ होकर जिस ब्रह्मानन्द की अनुभूति करते हैं उसमें विभावादि का सम्पर्क नहीं होता<sup>3</sup> । भक्ति मार्ग में जिस आनन्द रस की अनुभूति होती है उसमें विभावादि कारण होते हैं । काव्य रसों के साथ तो लौकिक विभावादि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता ही है ।

1- कारणान्यथ कायणि सहकारिणि यानि च ।

इत्यादौः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्य काव्ययोः । 27 ।

विभावानुभावश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणीः ।

-काव्य प्रकाश चतुर्थ उल्लास आनन्दाश्रय मुद्रणालय पूना पृष्ठ 88

2- कृष्णरचय कृष्णभक्तश्च बुधैरालम्बना मताः

भक्त रत्यादेर्विषयत्वेन तथा बुधैरालम्बना अपि च ॥ 16 ॥ -हरिमक्ति रसामृत सिंधु,  
दक्षिण विभाग, शतहरी पृष्ठ 122

3- रसगंगाधर निर्णय सागर प्रेस पृष्ठ 23



भक्ति रस और काव्य रस में दूसरी मौलिक भिन्नता यह है कि भक्तगण जिस रस की अनुभूति करते हैं उसकी अनुभूति जैसा दृश्य, श्रव्य काव्यों और कलाओं के माध्यम से भारतादि आचार्यों ने काव्यरसों के सम्बन्ध में होने वाली अनुभूति के सम्बन्ध में कहा है उस प्रकार नहीं होती वरन् भक्तों के हृदय में रसानुभूति रक्षा-नुभा भक्ति सर्व श्री कृष्ण लीला में दृढ़-अनुराग के कारण ही होती है । भक्तों के विशावादि काव्य समर्पित विभावादि नहीं होते वे जिस समय अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कवि रूप में अथवा कीर्तनादि के माध्यम से करते हैं अथवा काव्य रचना द्वारा करते हैं उस समय उनके हृदय में भक्ति रसानुभूतिवत् सामाजिकवत् काव्यरस की भांति ही होती है इसी अनुभूति का आनंद ही भक्ति काव्य के श्रोता या पाठक लेते हैं । यह भक्ति रस अपने अप्राकृत सर्व प्राकृत दोनों रूपों में विद्यमान रहता है । रस रूप ब्रह्म से जीव अपने विविध सम्बन्ध स्थापित कर जिस आनंद की अनुभूति करता है वह अप्राकृत (अलौकिक) रस है । कार्य, कारण तथा सहकारी भावों से युक्त होकर जब यही अनुभूति भजन (गायन) प्रवचन, कीर्तन और काव्य रचना के रूप में उपस्थित होती है - चाहे वह भक्त की स्वानुभूति हो अथवा अन्य भक्त की अनुभूति हो तब वह प्राकृत भक्ति रस की कोटि में आता है । इसका दूसरा नाम 'भक्ति काव्य रस' भी हो सकता है ।<sup>1</sup> मम्मटादि काव्याचार्य भक्ति रस को भाव कोटि में ही स्थान देते हैं । मानव अनुभूति के अनेक भाव हैं जो रस की संज्ञा से अभिहित होते हैं । भक्ति मार्ग के आचार्यों ने उनमें से केवल प्रेम-प्रीति के भावों को ही चुना है और लौकिक श्रेणी से उठा कर अलौकिक में पहुंचा दिया है । आत्मा और परमात्मा के ये मधुर संबंध अत्यन्त सरस रूप धारण कर जीव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं ।

शान्त भक्ति रस - इस रस में शान्ति रति स्थायी भाव है । नराकृति परब्रह्म चतुर्भुज नारायण परमात्मा इसके विधायालम्बन है जो अनेक गुण विशिष्ट है । विमुक्ता, ऐश्वर्यादि उनके विशेष गुण हैं ।<sup>2</sup> चतुर्भुज नारायण ईश्वर स्वस्व है,

1- अष्टकाप और कलभ सम्प्रदाय पृष्ठ 597, श्री दीनदयालु गुप्त ।

2- अथशान्त रसे नराकृति परब्रह्म चतुर्भुजः नारायणः परमात्मा इत्यादि गुणः

श्री कृष्णो विधायालम्बनः । सनत सनन्दन सनातन सन्तुकारादय आश्रयालम्बनाः

तपस्विनः । ज्ञानिना अपि मुमुक्षुस्तत्त्वा श्रीकृष्ण भक्त कृपया भक्ति वासनायुक्ता यादस्युस्तदातिशयाश्रयालम्बनाः ।-- भक्ति रसानुभूति सिन्धु विदुः विवनाथ चक्रवर्ती पृष्ठ 23

अतः उनका अनुभव सुख का कारण है । निर्विशेष ब्रह्मानन्द में अथवा योगियों के आत्मानन्द में भी शान्तरस की अनुभूति होती है परन्तु वह अत्यन्त सीमित और शिथिल है । ईश्वर आनन्द उससे श्रेष्ठ है ।

शान्त पुण्य शान्त रति के आश्रयालम्बन हैं । भगवान् के विषय में श्रद्धालु आत्माराम, तपस्वीजन ही शान्त पुण्य हैं । सनक, सनन्दन, सनातन कुमार आत्माराम हैं। उनके अतिरिक्त जिनके ~~विशेष~~ <sup>विशेष</sup> वैराग्य द्वारा नष्ट हो चुकी है, जिनकी विषयासक्ति दूर हो चुकी है और जो मुक्ति के अभिलाषी हैं वे सत तपस्वीजन इस रस के आश्रयालम्बन के अधिकारी हैं । केवल वे ही शान्तरस में प्रवेश कर सकते हैं । ज्ञानी पुण्य भक्तिवासना से मुक्त होने पर इसके आश्रयालम्बन हो सकते हैं ।

शान्त रस के उद्दीयन विभावों में अ उपनिषदों का श्रवण, पर्वतादि पर्वत काननादि का निर्जन वास, साधुजनों का संग, तत्त्वों का विवेचन, भगवान् के विख्यापक स्म का आदर, सिद्ध क्षेत्र में आसक्ति मुख्य है । इनके अतिरिक्त भगवद् प्रसाद में अनुरक्ति, शिष्यध्वनि, गंगा-गोदावरी आदि पवित्र नदियों के अंजल में निवास और विष्णुओं का क्षय करने की प्रवृत्ति अर्थात् पाप दूर करने की अभिलाषा और कल भी भगवद् स्वस्म है एवं सब बंधनों से मुक्त करता है ऐसी विश्वासपेयी धारणा इस रस के अन्य विभाव है ।

नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि, अवधूत की सी चेष्टा, ज्ञानमुद्रा दिखलाना, भगवद्विद्वेषी के प्रति द्वेष रहित होना, भगवान् के प्रेमीभक्तों के प्रति भक्ति की कमी, संसार ध्वंस और जीवमुक्ति के प्रति आदर, निरपेक्षता, निर्मलता, निरहंकार और मौन शान्त रति की विशिष्ट क्रियाएँ होने से शान्त रस के अनुभाव है । इसके अनुभावों में ऋचा अंगों का दूटना, भक्ति उपदेश, हरिस्तव एवं नमस्कार प्रणाम आदि

1- पादाब्ज तुलसीगन्धः शशिनादौ मुरदिवधः

पुष्पशैलः शुभारण्यं, सिद्ध क्षेत्रं स्वरूपगा -16-

विषयादिभक्तिविष्णुत्वं कलस्याभिलषिता ।

इत्यादयुददीपनाः साधारणस्त्वेषां क्लेशाश्रितैः -17-

-भक्ति रसामृत सिन्धु, पश्चिम विभाग प्रथम शान्ति लहरी ।

मुख्य है। सात्विक अनुभावों के अंतर्गत प्रलय अर्थात् मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरना, रोमचि, स्वेद, स्तम्भ आदि अधिक परिमाण में प्रगट होते हैं।<sup>1</sup>

अनुभाव विभावादि को चालित करने एवं सक्रिय बनाने में संचारी भावों का पूर्ण योगदान रहता है। निर्वेद, धैर्य, हर्ष, मति, स्मृति, विवाद, उत्कण्ठ, आवेग और वितर्क शांति रस के संचारी भाव हैं।

शान्ति रति के दो प्रकार हैं - 1- शान्ति रति समा दूसरी शान्तिरति सान्द्रा। शान्तिरति समा योग - समाधि की वह स्थिति है जिसमें आत्मा अपने स्वल्प के बोध तक न पहुँची हो वरन् भगवत् स्पर्श से शरीर में हर्ष, रोमचि आदि प्रकाशित होते हैं। सान्द्रा शान्ति रति में अविद्या के विनाश हेतु निर्विकल्प समाधि में भगवत् सक्षात्कार होकर अतिशय आनंद की प्राप्ति होती है।

शान्ति का अर्थ है शम। श्रीमद्भगवत् में भगवान् कृष्ण में निरंतर अनुरक्ति को शम कहा है। अतः शान्ति रस के भक्तों का प्रधान लक्षण है भगवान् में चित्त का अव्याहत अनुराग -- जहाँ न सुख है न दुःख है न द्वेष है वरन् सभी प्राणियों के प्रति सम भाव होता है। सूरदास के निम्न पद में शान्ति रति की सम्यक् विवृति देख पड़ती है :-

सुआ चलु वावन को रसु लीजै ।

जावन कृष्ण नाम अमरित रस, श्रवन पात्र भरि पीजै ।

को तेरो पुत्र पिता तू का को, मिथ्या भ्रम जग केरो ।

काल-मंजार लै जैहे तो कों, तू कहे मेरी मेरी ।

हरिनाना रस भूति क्षेत्र च्लु तो कों हों दिखारज ।

'सूरदास' साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जी पाज ।।<sup>2</sup>

प्रस्तुत पद में साधक जीव के मन की उस अन्तर्दशा का वर्णन है जिसमें वह शब्द ब्रह्म की समता वाले कृपाल नाम के अमृत रस का निरंतर पान करता

1- जैवधर्म, रस-विचार पृष्ठ 557

2- सूरसागर - नागरी प्रचारिणी समा संस्करण पद सं० 340

रहता है । इसमें किसी सम्बन्ध की स्वीकृति नहीं है । यहाँ सभी अपने हैं, कोई किसी से भिन्न नहीं - किसी में ममता नहीं । यहाँ से ऊपर उठने पर गौलीक में नाना रस स्त्री कृष्ण के मुक्ति क्षेत्र के दर्शन होंगे जो साधु संगति से ही सुलभ है ।

परन्तु शान्ता भक्ति में व्यक्तिगत सम्बन्धवाद जानबूझकर रहता है इस कारण कृष्ण का भावात्मक स्वस्व पूर्णतः व्यक्त नहीं हो पाता इस कारण वैष्णवी की रस साधना में इसका स्थान सबसे नीचे है किन्हीं किन्हीं आचार्यों के मत से इसकी रस संज्ञा भी नहीं है ।

शान्ति रस के उपासकों की स्थिति उपासना से परो मानी जाती है । श्री राम भक्ति शास्त्रा के रसिक बाल अली जी ने उनको 'सख रसिक' की संज्ञा दी है । इनके अतिरिक्त अन्य चार रसों के सम्बन्धों को शुद्ध रसिकों की कोटि में रखा गया है ।<sup>2</sup> श्री स्व गोस्वामी ने इसे प्रीति आदि रति भेदों से विजातीय मान कर 'शुद्धारति' के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया है ।

### दास्य भक्ति रस-

शान्त और दास्य का परस्पर मैत्री भाव है । इन दोनों की भक्ति में ज्ञान की अधिकता और भक्ति की भावात्मकता कम रहती है इस कारण से परस्पर समान से लगते हैं । परन्तु वास्तव में स्थिति इस प्रकार की नहीं है । दास्य रस के भक्तों की भावना अपने प्रभु के समक्ष स्वदोष प्रकाशन, अपराधों की स्वीकृति, विनय, प्रार्थना तथा दैन्य के भाव प्रकट करते हुए उनके शाणागत होने और अपनी रक्षा के निमित्त बार बार स्मरण कराने की ओर विशेष रहते हैं । वे यही कामना करते हैं कि भगवान् सेव्य हैं और वे उनके सेवक हैं, भगवान् अनुग्रहकर्ता हैं वे उनके अनुग्राह्य हैं ।

दास्य भक्ति भावना का स्थायी भाव 'प्रीति' है । शान्त रस में रति

1- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय - श्री भावती प्रसाद सिंह पृष्ठ 252

2- स्थायी भाव लहरी, भक्ति रसामृत सिंधु 15वाँ श्लोक ।

मात्र ही स्थायी भाव होता है परन्तु इस रस में ममतायुक्त भाव से प्रीति स्थायी भाव का रूप लेती है । प्रीति दो प्रकार की होती है ।- संप्रम प्रीति और 2- गौरव प्रीति ।<sup>1</sup> संप्रम, ऐश्वर्य भावना से प्रभु का प्रभुत्व और अपना लघुत्व जिससे चित्त में छिटापिटापन और समादर भाव लिए उनके प्रति जो प्रीति होती है वही संप्रम प्रीति कहलाती है । संप्रम प्रीति शंका और भय से शून्य होने पर प्रेम का रूप धारण करती है और निरंतर बढ़ती हुई स्नेह और राग का रूप धारण कर लेती है । प्रेम जब गाढ़े रूप में चित्त को दास्य भक्ति की ओर द्रवित करने लगता है तब उसे 'स्नेह' कहा जाता है । इसमें पल मात्र भी अपने स्वामी का वियोग सहन नहीं होता । स्नेह की प्रगाढ़ता में जब स्वामी के वियोग दुःख में सुख की अनुमति होने लगे और प्राणी को छोड़कर भी वियोग कष्ट की निवृत्ति की कामना हो तो उसे 'राग' से सम्बोधित किया जाता है ।

प्रीति की इस गम्भीरता के आधार पर उसके अनुपालक भक्तों की संज्ञा निश्चित की गई है । प्रीति या प्रेम प्राप्त करने वाले दास अधिकृत और आश्रित नामों से पुकारे जाते हैं । जिनमें प्रीति स्नेह का रूप ले लेती है वे परिषद दास (पार्षद) हैं और जिनमें स्नेह प्रगाढ़ होकर राग बन जाता है वे अनुबतदास कहलाते हैं । श्री रूप गोस्वामी ने प्रीति की इन विविध स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए इन भक्तों की नामावली प्रस्तुत की है ।<sup>2</sup> उनके वर्णिकरण के अनुसार ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देव दैवियों अधिकृत दास दासी हैं क्योंकि वे जगत् सम्बन्धी कार्यों में अधिकार प्राप्त कर भगवान् हैं, वे कार्यों में हथ बटाते हैं । आश्रित दास वे हैं जो भगवान् के शरणगत हैं, अथवा ज्ञान द्वारा जिन्हें तत्त्वबोध हो गया है अथवा जो प्रभु के सेवानिष्ठ हैं । कालिय नाग और जरासंध, शौनक आदि ऋषिगण और भगवद् भजनाश्रित श्री चन्द्रध्वज, इक्ष्वाकु और पुण्डरीक राजागण

1- भक्ति रसामृत सिंधु - पश्चिम विभाग द्वितीय प्रति भक्ति लहरी

अनुग्राह्य स्व दासत्वस्तत्त्वत्वादप्ययं दिवधा ।

भिद्यते सम्प्रमप्रीतो गौरव प्रीति इत्यपि । श्लोक -4

2- भक्ति रसामृत सिंधु पश्चिम विभाग द्वितीय लहरी श्लोक संख्या 14

क्रमशः शरणागत, ज्ञानी और सेवानिष्ठ आश्रित दासों की कोटि में हैं ।

गौरव प्रीति वह है जिसमें दास का लक्ष्य अभिमान होता है अर्थात् उसकी यह प्रगढ़ गौरव मयी भावना होती है कि भगवान् मेरा लालन पालन करते हैं । शरीर के सम्बन्ध से वे मेरे पिता हैं गुरु हैं — मैं उनका पोष्य हूँ । लक्ष्यगण अपने आचार में नीचे आसन पर बैठते हैं, गुरुजनों के मार्ग पर चलते हैं और स्वेच्छा चारिता का उनमें तनिक भी भाव नहीं होता । इस प्रीति में भगवान् श्री कृष्ण और उनके लक्ष्य दास गण रस के आलम्बन होते हैं

श्री कृष्ण की कृपा, चरण रज, महाप्रसाद मुरलीध्वनि, गुण श्रवण, पद चिन्ह, प्रभृति दास्य रस में उद्दीपन विभाव होते हैं । श्री कृष्ण का आज्ञा पालन कृष्ण दासों से मित्रता, उनके प्रतिनिष्ठा और वैराग्य आदि इसमें अनुभाव है । दास्य रस में तीन अवस्थाएँ जैसा कि पूर्व में कहा गया है प्रेम, स्नेह और राग होती हैं । अधिकृत भक्त और आश्रित भक्त में प्रेम पर्यंत स्थायी भाव होता है, पार्षद भक्तों (उद्धव, दासक, नंद, उपनन्द, भद्र आदि) में स्नेह पर्यंत स्थायी भाव होता है और परीक्षित दासक एवं उद्धव में राम स्पष्ट ही है ।<sup>1</sup> ब्रज और व्दारका के दासगण क्रमशः रत्यक और प्रद्युम्नादि में प्रेम स्नेह और राग की तीनों अवस्थाएँ परिलक्षित होती हैं ।

दास्य रस में 'अयोग' और 'वियोग' दो अवस्थाएँ होती हैं । जब तक श्री कृष्ण का दर्शन पहले पहल होता है उस समय तक अयोग और उनका दर्शन होने के अनन्तर यदि किञ्चिद् हो जाय तो उसे वियोग कहते हैं । स्तम्भ, स्वेद, पुलक इसमें सात्त्विक भाव है ।

शृंगार रस की भाँति दास्य रस के संचारी भावों की संख्या भी अधिक है । हर्ष, गर्व, धैर्य, निर्वेद, विषाद, दैन्यादि । 4 व्यभिचारी प्रधान रूप से इस

1- श्री कृष्णानुग्रह चरणधूली महाप्रसादादय उद्दीपन विभावाः । श्री कृष्णास्या जाकाणादयोऽनुभावाः । प्रेमा रागः स्नेहाश्च रसे भवति । अधिकृत भक्ते आश्रित भक्ते च प्रेम पर्यन्तो भवति स्थायी । पार्षदभक्ते स्नेह पर्यन्तः । भक्ति रसमृत विन्दु-विक्वनाथ चक्रवर्ती पौर । 9

इस रस में होते हैं । मद, श्रम, भय, अपस्मार, आलस्य, उग्रता, प्रमाद भी इसके व्यभिचारी हैं जिनका प्रकाश अधिक नहीं होता । संयोगावस्था में हर्ष, गर्व क्षेय और वियोग में स्नानि, व्याधि और मृति का प्रकाशन होता है ।<sup>1</sup>

महाकवि तुलसी के काव्य में दास्य भाव की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है ।<sup>2</sup> इस भाव का उनके जैसा वर्णन सूर या अन्य कोई कृष्ण भक्त या राम भक्त कवि नहीं कर सका इसका मूल कारण श्री राम और श्री कृष्ण के चरितों का स्वल्प भूत अंतर है । राम में शील सौम्य की प्रधानता है कृष्ण में लीला विलास की तीक्ष्णता श्री राम का ऐश्वर्य प्रताप भक्तों के अनुग्रहवादी दास्य भाव को जगरित करने में समर्थ है श्री कृष्ण का सौन्दर्य माधुर्य क्रान्त भावों को उदीप्त करने में चमत्कारी प्रभाव रखता है । दीप्ति विलास और लोक रंजन के मनोहारी परिवेश में श्री कृष्ण के दास्य भक्तों में यत्र तत्र नितान्त ठीठता और दृढ़ पूर्ण दुराग्रह भी समाविष्ट होता देखा गया है जिसे दास्य भाव की अतिशय हागात्मकता के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? भावों के क्षेत्र में राम काव्य, कृष्ण काव्य और सन्त काव्य की विचार धारा और उसका अन्तर एक मौलिक तथ्य के रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत होता है ।

आजु हौं एक एक बरि हरिहौं ।

कै हमक ही कै तुम ही माधव अपुन भरोसे लरिहौं ।

हौं तो पतित सात पीढ़िन को पतिते व्हे निस्तरिहौं ।

अब हौं उघरि नवन चाहत हौं तुम्हें विरद बिन करिहौं ।

कत अपनी परतीत नसावत हौं पायो हरि हीरा ।

'सूर' पतित तव ही लै उठि है जब हौंसि दै हो बीरा ।<sup>3</sup>

हिन्दी भक्ति काव्य में प्राप्त दास्य रस आश्रय दास्य भाव के अधिक निकट है । यहाँ वह शुद्ध रस की अपेक्षा शान्त रस का अंग बन कर अधिक उपयोगी है ।

1- जैव धर्म, रस विचार, पृष्ठ 563

2- सेवक सेव्य भाव विनु भक्त्त तरिय उरगारि ।

भजिय राम पद पंक्ज अस सिद्धान्त विचारि ।।

-रामचरित मानस, उत्तर काण्ड, दोहा संख्या 119(क)

3- सूर सगर प्रथम छंद नागरी प्रचारिणी सभा पदसंख्या 34 पृष्ठ 44

### सख्य भक्ति :-

जीवन में अहेतुक स्नेह का निर्वाह कर्ता और अपने प्रेमी को कठिनाई में पड़ते देख सब प्रकार उत्सर्ग करने का सच्चा प्रती 'सखा' कहलाता है । सख्य भक्ति में भक्त भगवान् के प्रति यही भाव लेकर चलता है । भगवान् उसका सखा है उससे वह किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रखता वरन् अहेतुक प्रेम का व्यवहार करता है । इस प्रकार सख्य सम्बन्ध बड़ा ही स्निग्ध सुखद और सरस होता है । जो ब्रजवासी परब्रह्म अवतारी भगवान् श्री कृष्ण से सखा का सम्बन्ध रखते हैं वे परम सौभाग्यशाली हैं । श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध में भागवत कार ने उनके सौभाग्य की प्रशंसा की है ।<sup>1</sup> इस सम्बन्ध में परस्पर स्कारसता समानता और आत्म गोपन से दूर जो वैतक्लुषी होती है वह सर्वथा वंदनीय है । इसमें लाल की कोई अर्गला नहीं, संकोच का बंधन नहीं और परस्पर निस्वार्थ आसक्ति के कारण किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं । इस कारण सख्य भक्ति का दास्य भक्ति से उच्च स्थान है ।

सख्य भक्ति का स्थायी भाव "सख्य" माना गया है । श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भक्ति रसामृत विन्दु में "सम्य दृष्टिर्चा निःसम्मतमयः विश्वास विशेषः सख्य रतिः स्थायीभावः"<sup>2</sup> अर्थात् समान दृष्टि के कारण निःसम्मतमय विश्वास विशेष का रूप ही सख्य रति अर्थात् सख्य रस का स्थायी भाव है । यह सख्य रति उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होकर सख्य, प्रणय, प्रेम, स्नेह, समभेद से पचि प्रकार की हो जाती है । डा० कल्याण कर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति साहित्य में वात्सल्य तथा भक्ति में सख्य रस का शास्त्रीय विवेचन करते हुए

1- अहोभाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपब्रजौकसम् ।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ - श्रीमद्भागवत 10/14/32

2- भक्ति ग्रंथमाला, भक्त रसामृत सिन्धु विन्दु पृष्ठ 25



व्यक्त किया है कि सभी रसों में प्रेमरस अर्थात् सख्य रस ही उत्कृष्ट है क्योंकि उपास्य और उपासक का समजातीय माधुर्य भाव इसी रस में लक्षित होता है । प्रीति और क्सल रस में उनके भाव एक दूसरे से भिन्न जातीय होते हैं । इस कारण सख्य रस बड़ा ही अपूर्व होता है ।

इस रस में श्री कृष्ण और उनके व्यक्त सखा आलम्बन हैं । विद्भुज मुरलीधर श्री कृष्ण विषयालम्बन है और सखा आश्रयालम्बन है । अपने स्म्य गुण और केश में सखा दासी जैसे ही होते हैं परन्तु इनका विश्रयाभाव होता है । श्री कृष्ण के पुर और ब्रज सम्बन्ध से दो प्रकार के सखा हैं । पुर सम्बन्धी सखाओं में अर्जुन सबसे प्रमुख हैं । भीम, द्रौपदी, और श्रीदाम ब्राह्मण अन्य पुर सखा हैं । ब्रजवासी सखा गण तो श्री कृष्ण के जीवन प्राण हैं उनके सदा-सर्वदा श्री कृष्णदर्शन की अभिलाषा बनी रहती है । ब्रजवासी सखा सखगण चार प्रकार के हैं । सुहृद, सखा, प्रिय सखा और प्रियनर्म सखा ।

सुहृद सखा :- आयु में श्री कृष्ण से कुछ बड़े और शस्त्र धारण कर उनकी दुष्टों से रक्षा करने वाले जैसे सुभद्र, बलभद्र, विजय, मंडली भद्र, इन्द्रभट । इनमें बलभद्र सबसे प्रधान हैं ।

सखा :- आयु में श्री कृष्ण से कुछ छोटे और कुछ दास्यभाव और थोड़े सख्य भाव से युक्त देवप्रस्थ, मयन्द, कुसुमापीड़, माणीबन्ध, बस थप आदि श्रीकृष्ण के सखाओं की श्रेणी में है । इनमें देव प्रस्थ सबसे प्रधान है ।

प्रिय सखा :- आयु में श्रीकृष्ण के समान ही हैं । और उनमें केवल सख्य भाव ही केवल प्रमुख होता है इस कोटि में दाम, सुदाम, बसुदाम, पुष्करिक, विक्रम भद्रसेन अति हैं । सुहृद सखा और प्रिय सखा में जो रहस्यपूर्ण कार्यों में निपुण, साहसी और मेधावी हैं उनकी प्रिय नर्म सखा संज्ञा है, सुक्ल, अर्जुन, बसन्त, गन्धर्व और उज्ज्वल इसी श्रेणी में है ।

उददीपन विभाव — श्री कृष्ण की बाल, कुमार और पौगण्ड अकथार्य, पत्र पुष्पादि के अलंकरण, वाद्य तथा सखाओं की क्रीड़ाएँ सख्य रस के उददीपन हैं और

अनुभावों में साधारण सख्य के बाहुयुध, रक्षसबध, दधिदान, काक एक शैया शयन आदि हैं। गेद खेलना, एक दूसरे के कंधे पर चढ़ने का प्रयास, जल विहार, ताम्बूल अर्पण, चन्दन लेपन अन्य अनुभाव हैं। इस रस में सात्विक अनुभाव दास्य रस जैसे ही होते हैं। संचारी भाव भी दास्य भक्ति के संचारी भावों से मिलते हुए हैं। डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह ने क्षीब्ध, ईर्ष्या, स्पर्धा, गर्व, चापल्य, सारल्य, चातुर्य, पुलक रोमचि, मोह, चिन्ता, स्मृति, अश्रु, स्नेह इस रस के संचारी माने हैं।<sup>1</sup>

दास्य की भाँति सख्य भक्ति में भी प्रयोग और वियोग की अवस्थिति आचार्यों ने स्वीकार की है। वियोग की दशा में उत्ताप, क्लृप्ति, जागरण, अलम्ब शून्यता, अधीरता, व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा, प्रलय की अवस्थाएँ सख्य रति में होती हैं।<sup>2</sup>

सख्य भक्ति अपने प्रभु से सर्वथा निष्कपटतापूर्ण पावन सम्बन्ध है। जिसमें दैवत की भावना प्रायः लुप्त प्राय हो जाती है। इस पुनीत स्नेह की अभिव्यक्ति को बल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने साकार रूप दिया है। सुरदास और परमानन्द दास के वर्णन इस दिशा में अधिकतम मर्मस्पर्शी हैं। नन्ददास ने गोचारण तथा बाकलीला के कुछ पदों की रचना की है परन्तु उनसे कवि की प्रगाढ़ सख्य भक्ति का परिचय नहीं मिलता। सुदामा मैत्री का प्रसंग बल्लभ सम्प्रदायी कवियों को बहुत प्रिय रहा है। सुरदास जी ने सुरसागर के दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध में 'सुदामा दरिद्रभजन' नामक शीर्षक के अन्तर्गत भगवान् को जीव का सबसे बड़ा मित्र बतलाया है और सख्य भक्ति की महत्ता का उल्लेख भी किया है। दुर्बल शरीरधारी, मलीन बदल, क्षीणकर्त्री से आवृत्त अनावृत्त

1- हिन्दी वैष्णव भक्ति कव्य काव्यादर्श तथा कव्य सिद्धान्त

— डा० योगेन्द्रप्रताप सिंह पृष्ठ 374

2- भक्ति रसामृत सिन्धु विन्दु - विश्वनाथ चक्रवर्ती प्रणीत पृष्ठ 28

अत्यन्त दीनाकथा को प्राप्त सुदामा ब्राह्मण मित्र भाव से जब श्रीकृष्ण से मिलने पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने अपने मैत्री भाव का अमृतपूर्व परिचय दिया । सूर ने लिखा है :-

दूरिहि ते देखे बलवीर ।

बाल सखा आपने सुदामा, मलिन बसन अस कीन सरीर ।

पौढ़े हुते प्रयंक परम सचि स्वमणि चमर डौलावत तीर ।

उठि अकुलात अनमने लीने मिलत नैन भरि आस नीर ।<sup>1</sup>

ब्दारका से लौटने पर अपनी पत्नी से सुदामा ने श्रीकृष्ण के शील सौजन्य और प्रगाढ़ मैत्री भाव का परिचय निम्न शब्दों में दिया । भक्त के हृदय के सख्य-प्रेम रस को भगवान् ही पहचान सकते हैं ।

ऐसे मोहिं और कौन पहिचानै ।

सुन सुंदरि, उन दीनबधु विन कौन मितार्ई मानै ।

कहाँ हम कृष्ण, कुचौल कुदरसन, कहाँ वै यादवनथ गुसाई ।

मेरे हृदय लगाय, अँक भरित उठि अग्रज की नई ।

निज आसन बैठारि परम सचि निज कर चरण पझारै ।

~~ब्रह्म~~ पंकी कुशल श्यामधन सुंदर, सब संकोच निवारै ।

लीने और चीरते चाउर कर गहि मुख में मेलै ।

पूराब कथा सुनाइ 'सूर' प्रभु, गुरु गृह बसे अकेले ।<sup>2</sup>

महाकवि नंददास जी ने भी 'सुदामा चरित' नामक दोहा चौपाई में एक छोटी पुस्तक लिखी है जिसकी पुष्पिका के प्रकरण में सख्य भक्ति के माहात्म्य पर कहा गया है कि 'सुदामा की भाँति जो भगवान् को भजेगा उसको सब सुख प्राप्त होंगे ।'<sup>3</sup>

1- सूरसागर उत्तरार्द्ध वै० प्रेस पृष्ठ 586

2- वही वही 588

3- ऐसे जो कोउ हरि को भजे, हरि उदारता ते सुख सजे ।

कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और बीत स्वामी के भी कुछ अपद सख्य रस सम्बन्धी मिलते हैं। इन सभी कवियों को इसी विशेषता के कारण क्लृप्त सम्प्रदाय में अष्ट सखा माना जाता है और उन्हें कृष्ण के अष्ट सखाओं के अलग अलग नाम भी दिये गये हैं।<sup>1</sup> "दो सौ वावन कृष्णवी की वार्ता" से यह भी ज्ञात है कि इन अष्ट सखाओं में से कुछ भक्त वास्तव में मानसिक जगत में श्रीनाथ जी के स्वस्म के साथ सखा का सा व्यवहार करते थे। गोविन्द स्वामी और चतुर्भुजदास की जीवनी में तो सख्य प्रेम को प्रकट करने वाले कई प्रसंग जैसे कृष्ण स्वस्म श्रीनाथ जी के खेल खेल में कंकड़ी मारना, उनके साथ गोचारण करना और घोड़ा बनकर उनके साथ खेलना आदि हैं जिनसे उनके बल सखा प्रेम पूर्ण निष्काम भक्ति के शुद्ध आनन्दात्मक रूप का भूरि भूरि परिचय मिलता है। 'अष्टकाप के ये अठो कवि कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के भावसहचर हैं। श्रीकृष्ण के नैसर्गिक जीवन गोप-साहचर्य इस सख्य भक्ति का प्राण है। इसके बिना इसका सुमधुर रूप झड़ा ही नहीं हो सकता।'<sup>2</sup> एक प्रकार से देखा जाय तो वृन्दावन लीला का आरंभ सख्य प्रेम से ही होता है। मार्मिकता से भरी हुए वृन्दावन में इन प्रेम-प्रसंगों से अति प्रीत अनेक नैसर्गिक सख्य दृश्यों की क्रीड़ा स्थलियाँ हैं। वहाँ की कुँजों, यमुना के कठारों में गोचारण के प्रसंगों में सहज, सख्य का मनोरम प्रसार हुआ है। इस प्रसंग में ढाक और अखि मिचौनी के वर्णन बड़े मार्मिक हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों में श्री वृन्दावन देव ने पन घट, यमुनातट, दान्तीला और गोचारण की रोचक पृष्ठभूमि में सख्य रस के मनोरंजक और विशद चित्र प्रस्तुत किये हैं। श्री कृष्ण ग्वलबल और सखादि के साथ वन में गाय चराने के लिए प्रस्थान करते हैं। उनकी वह शोभा परम लुभावनी है, सायंकल वहाँ से लौटते हुए गोरज से आच्छादित उनके मुखमंडल

1- अष्ट काप और क्लृप्त सम्प्रदाय - दीनदयाल गुप्त पृष्ठ 610

2- कृष्णचरित का भावात्मक स्वस्म विकास - डा० तपेश्वर नथ

की कान्ति लो और भी अपूर्व हो जाती है । मातृर्का, गोपीर्का, गोपवर्ग  
सखा और ब्रजवासी गण सभी इस अनुपम कटा पर मुग्ध हैं । श्री कृष्ण और  
गोप मंडली भीर की कैला में जब वन को जाती है तो उसी समय राधा अपनी  
सखियों सहित फूल बीनने के निमित्त वहाँ पहुँचती है । दोनों का वहाँ  
मिलान होता है इस मैत्री साहचर्य के कृदावनदेव ने अनेक सुंदर चित्र खींचे हैं ।  
ये चित्र सख्य से प्रणय (दाम्पत्य) की ओर मुड़ने के हलके परन्तु अत्यन्त सक्षम  
प्रयत्न हैं ।

गई मिलि कुंज मैं पुजनि पुजनि गुँजै अली मकरंद के माते ।  
बैठी तहाँ लता मंडप जय विषाय बिछौना दये मन माते ।  
दौननि दौननि आनि धरे पान मिठाई मेवा रस राते ।  
गोप सुतानि छवाय बनाय गये मिलि मित्रनि आप हूँ छाते ।  
फूलन बीनन काज असीन समाज गयो सब ही बढि हयाते ।  
'कृदावन प्रभु' श्यामाजु श्याम मिले दोउ पुरन काम कलाते ।<sup>1</sup>

ऐसे अनेक कवि चाचा हित कृदावनदास प्रभृति राधावल्लभ सम्प्रदायी कवियों ने  
भी किये हैं जो इस तथ्य को इंगित करते हैं कि सख्य रस के भावना क्रय से  
आगे माधुर्य भक्ति की आनन्दमयी भूमि है । "सख्य में अलम्बन और आश्रय  
का जहाँ मधुर सहभावं षटित होता है वहाँ माधुर्य में दोनों का पूर्ण तादात्म्य  
अभेदाध्यक्सान हो जाता है । सख्य प्रेम दवैत है, माधुर्य प्रेम अदवैत ।  
सामान्यतः यदि सख्य माधुर्य का प्रस्थान बिन्दु है तो माधुर्य सख्य की चरम  
परिणति । एक दूसरे की प्रायः विकसित दशा है । अतः सख्य और माधुर्य  
के बीच वात्सल्य की गणना किसी मनीषैज्ञानिक भाव दशा की क्रम परिणति  
नहीं मानी जा सकती । यह अनेक विद्वानों की धारणा है ।<sup>2</sup>

1- गीतामृत गंगा - श्री कृदावन देवाचार्य, तृतीय घाट पृष्ठ 16

2- हिन्दी कव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वस्य विकास -

### वात्सल्य भक्ति - रस :-

यह स्वीकार करते हुए भी कि अंतरंग सखाओं के साथ सुस्वादु व्यंजनों को लूटपाट करने और सखाओं की परस्पर झूठन छाने में जो अलौकिक आनन्द है वह अन्यत्र कहीं नहीं सख्य रस में उत्सर्ग और समर्पण भावना उस सीमा तक नहीं पहुँचती जो वात्सल्य प्रेम में । वात्सल्य प्रेम में स्नेह पात्र के अबोध और अशक्त होने के कारण स्नेही के प्रति त्याग और समर्पण के अतिरिक्त कोई अन्य भावना नहीं रहती । बालक के कष्ट और उसकी निःसहाय अवस्था को देखकर किस माता का हृदय द्रवित नहीं हो जाता और वह अपनी कष्ट-कठिनाई को भूलकर सर्वतोभावेन चिन्ताकुल होकर शिशु संरक्षण और परिचर्या में नहीं लग जाती । अपनी सन्तति के विहीन में कितने मातृ हृदय नहीं कटपटाते और बालक की मौली निष्कपट भाव मुद्रा पर कौन माता पिता बलिहारी नहीं जाते । उसका यह स्निग्ध प्रमासिक्त मौला स्वरूप ही उनके मन को प्रसन्न रखने और आसक्त बनाये रखने का भरपूर साधन है । इसका मूल कारण यह है कि रति प्रेम की तरह वात्सल्य स्नेह भी मनुष्य जाति का गूढ़तम भाव है । उसकी पवित्रता, प्रबलता और श्री <sup>सम्पदा</sup> ~~सम्पत्ति~~ का सभी अनुभव करते हैं । मातृ हृदय को इसकी विशेष अनुभूति होती है । यही कारण है कि वात्सल्य-रस के उपासक अपने को प्रायः यशोदा जी की ही स्थिति में रखकर भाव-साधना करते हैं ।

श्री बल्लभाचार्य जी ने भी श्रीनाथ जी की सेवा-पद्धति में वात्सल्य भाव को सेवा पूजा पर विशेष बल दिया था क्योंकि इस भाव की उपासना में जिस निष्काम प्रेम का आधिपत्य रहता है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।<sup>1</sup> इस उपासना मार्ग में अग्रसर होने से लौकिक व्याधियाँ सहज ही कूट जाती हैं और निरोध की स्थिति शीघ्र ही आ जाती है । इस कारण स्नेहाकर्षण की प्रबलता होते हुए भी त्याग और उत्सर्ग की विशेषता के कारण वात्सल्य को सख्य से अधिक महत्व दिया गया है ।

‘वात्सल्य’ अथवा शिशु स्नेह इस रस का स्थायीभाव है । स्य गोस्वामी के अनुसार ‘कसल’ शब्द से ‘कस’ के प्रति मार्मिक आकर्षण कव्य होता है । कोमलगी विनयी, सर्वलक्षण सम्पन्न एवं गुण युक्त श्री कृष्ण इसके विषयालम्बन और अनुग्राह्य भाव वाले अर्थात् श्री कृष्ण ही जिनके कृपा पात्र हैं ऐसे नंद यशोदा, कसुदेव, रोहिणी, देवकी उपनंदादि गुस्जने आश्रयालम्बन हैं ।<sup>1</sup> इस रस में क्षोमार आदि क्यः काल तथा कैसा ही स्मवेश, हर्षद हस्य, वस्य चेष्टाएँ, चापल्य, हस्य और लीला आदि इसके उद्दीपन हैं । सिर को संधना, मार्जन, आज्ञा देना और अर्शीर्वाद देना लालन पालन आदि अनुभाव है । चुम्बन, आलिंगन, प्यार के नामों से पुकारना और भूल होने पर डाट डपट भी उसी के अन्तर्गत है । वात्सल्य रस में अश्रु, श्वेद, कम्प, स्तम्भ आदि तथा स्तनों से दूध सुख कुल 9 प्रकार सात्विक विकार होते हैं । प्रीति या दास्य सख्य में आने वाले समस्त व्यभिचारी भाव तथा अपस्मार (मूँक़ी) हर्ष, शंका आदि इसके संचारी भाव हैं ।

इस रस में यशोदा आदि गुस्जनों की वात्सल्य रति प्रौढ़ा है । कसुदेव का भाव प्रीति (सख्य) और वात्सल्य मिश्रित है । युधिष्ठिर का भाव वात्सल्य, दास्य और सख्य मिश्रित है किन्तु नकुल सहदेव की सख्य और दास्य युक्त है । इस रस के स्थायी भाव की प्रेम, स्नेह और राग तक गति होती है । इस रस में भी प्रीति भक्ति के समान क्लेश की पूर्व में निर्दिष्ट दस दशाएँ होती हैं ।

वैष्णव भक्त कवियों में सूरदास, तुलसीदास और परमानंद दास ने वात्सल्य रस की मधुमयी अभिव्यक्ति अपने कव्य के माध्यम से प्रस्तुत की है । वात्सल्य भी शृंगार की भाँति अत्यन्त व्यापक भाव है इस कारण उसकी रस-परिधि में बाल जीवन, मातृ हृदय की सुख दुःख मयी अनुभूतियाँ, गृहस्थ जीवन

1- अथवात्सल्य रसे कोमलगी विनयी सर्वलक्षण युक्त इत्यादि गुणः श्री कृष्णो विषयालम्बनः । श्री कृष्णे अनुग्राह्य भाववन्तः पित्रादयो गुस्जना अत्र ब्रजे ब्रजेश्वरी ब्रजराज रोहिण्युपनन्दतत्पत्यादयः अन्यत्र देवकी कुन्ती कसुदेवादयश्च — आश्रयालम्बनः ।

भक्ति रसमृत सिन्धु किन्तु -- विश्वनाथ चक्रवर्ती पृ० 29

के आनन्दुभव बालकेलि क्रीड़ा से लेकर उनके लालन की चिंतामयी कियोग की आकुलता आशा निराशा से भरी प्रतीक्षा की घड़ियाँ, निष्काम प्रेम और सहज ममतामय दुलार न जाने कितना विशाल रागात्मक भाव विस्तार समाविष्ट है महाकवि सुरदास इस भावनिधि के सबसे बड़े संग्राहक और व्याख्याता हैं । उन्होंने कृष्ण जन्म से लेकर माछन चोरी लीला तक विकसित होने वाली क्रीड़ा चैष्टाओं के अगणित भाव चित्रों का मनीमोहक क्रमबद्ध अंकन प्रस्तुत किया है जिससे उनके सूक्ष्म कार्य व्यापार निरीक्षण शक्ति और स्वभाव निस्संशय की असाधारण क्षमता का आभास मिलता है । श्री कृष्ण के अलौकिक ऐश्वर्य और सौन्दर्य के दर्शन उनके काव्य में होते हैं । श्री कृष्ण अपने दोनों स्यों में अत्यन्त नयनाभिराम और लोकललाम चित्रित किए गए हैं ।

जसोदा हरि पालने झुलावै

हलरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोइ सोई कहु गावै ।

मेरे लाल को आज निंदरिया, काहे न आनि सुवावै ।<sup>1</sup>

x

x

x

सिखवत चलत जसोदा मैया

अछराइ कर पानि गहावत, ढगमगाइ धरनी धरै पैया ॥<sup>2</sup>

बालक की दुधमुँही दन्तहीन मुस्कान दुग्ध पान घुटसून चलना आदि माँ को निहाल करने वाले अक्सर हैं । अपने नन्हें हाथों में नवनीत लिए, मुँह पर दधि लपेटे धूल धूसरित कृष्ण की सुंदर मुद्रा अंकित करने से लेकर प्रौढ़ होते हुए कृष्ण के स्पर्धा-क्षीभ और हठीलेपन के चित्र सुर ने बहुत ही आकर्षक ढींचे हैं ।

सुर की भाँति परमानंद दास की वृत्ति भी वात्सल्य भक्ति के चित्र अंकित करने में मनीयोग पूर्वक रही है । उन्होंने श्री कृष्ण के असुरवध सम्बन्धी

1- सुर सगर नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण पद सं० 66।



प्रसंगों को संगीपांग रूप में न लेकर बाल कृष्ण के कोमल मधुर स्वल्प लीला रूपों में प्रस्तुत किये हैं। माखन चोर प्रसंग उन्हें बहुत सचि कर है, श्री कृष्ण के शिशु रूप की अपेक्षा उनके कुटपन का नटखटपन इन्हें बहुत प्रिय है।

माई तेरौ कन्ह कोन टग अब लाग्यो ।  
मेरी पीठ पर मेलि करुा वहे देखि जात है भाग्यो ।  
पांच बास को श्याम मनीहर ब्रज में डोलत नगौ ।  
परमानंद दास को ठाकुर कधि पायो न तगौ ॥<sup>1</sup>

अष्ट काप के इन दोनों मूर्धन्य कवियों के अतिरिक्त महाकवि तुलसी ने वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति में बड़ा उत्साह दिखलाया है। कवितावली के प्रारम्भिक 7 सवैये जो भगवान् राम और उनके बंधुओं की बाल लीला माधुरी के अनुपम चित्र हैं मानों तुलसी की काव्य माला के सुन्दर सुमेरु हैं। गीतावली में भी उनके वर्णन बहुत ही मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। सूर के अनन्तर वात्सल्य रस का अनूठा चितेरा कहीं ढूँढ़ निकालना है तो वह तुलसी के अतिरिक्त दूसरा न होगा। इन विशद भावों के समर्थ चितेरे तुलसी के बाल चित्रों की स्पर्धा में अन्य किसी कवि को प्रस्तुत करना अत्यन्त प्रमाद पूर्ण होगा।

आज प्रातः काल से ही माँ कौशल्या बड़ी चिन्ता मग्न है क्योंकि शिशु राम अनमने से होकर दूध नहीं पी रहे हैं। देखिये बाल उपचार के लिए हम और कैसे उतावली हो रही है :-

अबु अनारसे हैं भीर के पय पियत न नीके ।  
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हूँ, रोवत राम मेरौ सो सोच सबहीके  
देव, पितर, ग्रह पूजिये, तुला तोलिये घी के ।<sup>(1)</sup>  
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि आत जब परत दृष्टि दुष्टती के <sup>(2)</sup>  
वेगि वीलि कुल गुरु कुलीमथे हाथ अमी के ।  
सुनत, आइ रिभि, कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो सुमिरत भय भी के <sup>(3)</sup>  
जासु नाम सरवस सदासिव पारवती के ।  
ताहि झरावति कौसला, यह रीति प्रीति की हिय दुलसति तुलसी के <sup>(4)</sup><sup>2</sup>

1- परमानंददास और क्लृप्त सम्प्रदाय दा० गोवर्धननथ शुक्ल पृष्ठ 232  
2- तुलसी ग्रंथावली भाग 2 पृष्ठ 328 अ० भा० विक्रम परिषद् कशी ।

अन्य वैष्णव व सम्प्रदाय के कवियों ने ब्रंश बधार्ह के रूप में वात्सल्य भक्ति का गान किया है । इसके मूल में बाल भावना का प्रधान्य है जो भगवान् के जन्म के समय के हर्षल्लास उनकी बाल लीलाओं और विविध संस्कारों के वर्णनों से अति प्रीत है ।

माधुर्य भक्ति - वैष्णवाचार्यों ने अपने प्रभु से जिन जिन सम्बन्धों की स्थापना का प्रयास किया है उसमें प्रेम के जितने रूप हो सकते हैं उनमें सर्वाधिक उत्कट संबंध पति-पत्नी का है । वैष्णव भक्तिवाद का ठोस सिद्धान्त यह है कि इसमें लौकिक प्रेम संबंध को लोक से उठा कर ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर सम्बन्ध निर्वह का प्रयास होता है । मधुरा भक्ति के अन्तर्गत ब्रजेश्वर कृष्ण और उनकी अराधिका गोपीजन, जिनमें श्री राधिका सर्वशिरोमणि हैं, मधुरा भक्ति के आलम्बन हैं, यमुना पुलिन, बसंत ऋतु, कालि, कलार, क्रीध्वनि, चन्द्रिका, सखी-सखा इसके उद्दीपन हैं ।<sup>1</sup> इसके अतिरिक्त शृंगार रस की समस्त सामग्री ऊज्ज्वल रस (कृष्णीन्मुख रति) के अंतर्गत यथावत् आती है । वैसे शृंगार रस और ऊज्ज्वल रस या माधुर्य भाव की उपासना में अंतर यह है कि लौकिक शृंगार रस के प्रवर्तन में तो स्त्री पुरुष परस्पर उस रस के आलम्बन होते हैं परन्तु ऊज्ज्वल रस में इस रति को लोक से बहुत उच्च स्तर पर ले जाकर (राधा कृष्णादि) अलौकिक युग्मों में प्रतिष्ठित किया जाता है । तब मधुर रस का अवतरण होता है । श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति रसमृत सिंधु में श्री राधाकृष्ण के परस्पर सम्भोग की प्रवर्तक 'प्रियता' या 'मधुरा रति' मानी है जो 'प्रियता रति' नाम से भी लोक प्रसिद्ध है उन्होंने लिखा है :-

मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च संभोगस्यादि कारणम् ।

मधुरापपययिा प्रियता अज्योदिता रतिः ।।<sup>2</sup>

इसे यदि अत्यन्त सक्षिप्त रूप में क्लिष्टित किया जाय तो कह सकते हैं कि मधुरा भक्ति के अंतर्गत गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण एवं गोपीजन अधीश्वरी श्री राधा के परस्पर अलौकिक प्रणय पर यह सम्बन्ध स्थित है जबकि लौकिक शृंगार के आलम्बन

1- मुरलीधर बसन्त कोकिल नादनवमेष मयूर कण्ठ दिदर्शनादया उद्दीपन विभावः

किवनथ चक्रवर्ती प्रणीत भक्ति रसमृत सिंधु विंदु पृष्ठ 30

2- भ0र0सिन्धु - दक्षिण विभाग स्थायी लहरी श्लोक 27

दुर्धत - शकुंतला जैसे नायक नायिका होते हैं। शृंगार लोक-सामान्य हृदयों में सहज उद्रेक पा लेता है परन्तु मधुर रस के उद्रेक के निमित्त सहृदयता की अन्तरतम उदात्तवृत्ति परमापेक्षित है। अतः यह सहज सिद्ध है कि दोनों रसों के उद्रेक के लिए एक ही प्रकार की मनोवृत्ति आवश्यक नहीं होती। मधुर रस भक्ति-चित्त के लिए भक्ति ही है परन्तु वासना पूर्ण हृदय के लिए शृंगार ही है। भक्ति के निमित्त पहले साधना द्वारा वासना को हटाना होगा तब कहीं बहुत कठिनाई के अनन्तर शुद्ध भक्ति के संचार रूप में मधुरा भक्ति के रसकण सम्प्राप्त हो सकते हैं।

“माधुर्य भक्ति के भी दो प्रकार हैं — संयोग और वियोग। पुनः वियोग के तीन भेद हैं — पूर्वाण, मान और प्रवास। इसके अतिरिक्त विषय पक्षा में नायिका भेद की दृष्टि से स्वकीया और परकीया तथा नायक भेद की दृष्टि से धीर उदात्त, ललितउदात्त, अनुकूल और दक्षिण आदि प्रमुख हैं। कव्य शास्त्र की परम्परा में शृंगार को रस राज कहा गया है। उसी प्रकार भक्ति को भक्ति शास्त्रियों ने ‘भक्ति रस राट’ की पवित्र संज्ञा दी है, किन्तु दोनों में एक अन्तर यह भी है कि शृंगार रसामास जहाँ शृंगार रस के बहिष्कृत है वहाँ शृंगार रस तथा शृंगार भाव (रसामास) दोनों ही इस भक्ति रस राट मधुर रस में अन्तर्मुक्त हो जाते हैं। कान्ताभाव की प्रीति में जैसे आत्मसमर्पण और आत्मविसर्जन की उत्कट भावना रहती है वैसे ही भक्तों ने भी ईश्वर प्रीति में आत्मनिवेदन और आत्मोत्सर्ग के अजिमेय भावों को अन्योक्ति परक रूपों में अत्यन्त भावुकता से व्यंजित किया है। भाव वही रहा परन्तु विभाव बदल गया चर्यक्षुओं को झीलते झीलते जानचक्षुओं को भी झील दिया।।”। सारांश यह है कि लोक में प्रेम का जो सम्बन्ध है उसे वहाँ से हटा कर ईश्वर के साथ स्थापित कर दिया गया है। और ऐन्द्रिय विषयों में अनुरक्त पुरुषों को सांसारिक विषयों से छुड़ाने के लिए ईश्वर को ही विषय तृप्ति का साधन स्वीकार किया है। साधन और अनुभूति के आधार पर उपासकों ने निश्चय किया कि लौकिक पुरुषों अथवा वस्तुओं

के संसर्ग से हमारी इन्द्रियों और मन को जो आनन्द प्राप्त होता है उसका मूल श्रोत परमात्मा में है ।<sup>1</sup> इसी कारण समस्त लौकिक और पारलौकिक सम्बन्धों का आलम्बन परमात्मा को ही बनाना चाहिये ।<sup>2</sup>

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी मनुष्य मात्र का सबसे प्रगढ़ और अधिकतम तीव्र भाव रति प्रेम है । प्रीति के जितने सम्बन्ध हैं उनमें स्त्री पुरुष के प्रेम में सबसे अधिक आकर्षण है क्योंकि इस प्रकार के प्रेम में समर्पण की भावना सर्वोपरि होती है । तीव्रता की दृष्टि से पूर्वराग की अवस्था में अथवा स्वकीय प्रेम से परकीय प्रेम में या स्वकान्त से पर पुरुष प्रेम में अधिक तीस और गहनता की अनुमति होती है । अतः आध्यात्मिक साधकों ने जहाँ प्रेम के साधन पथ का अनुसरण किया है वहाँ उन्होंने वात्सल्य, सख्य, दास्य और दाम्पत्य की अपेक्षा पूर्वराग और जार-प्रेम पर अधिक जोर दिया है । कान्ता भाव की प्रीति में आत्मोत्सर्ग और आत्म विस्मृति की अवस्था पूर्ण रूप में आ जाती है । आत्म निवेदन और आत्म समर्पण प्रेम भक्ति की सर्वोच्च स्थिति है । नवधाभक्ति में आत्मनिवेदन को साधन की अंतिम अवस्था माना है यह कान्ताभाव में ही पूर्ण होती है ।

कान्ता भाव या माधुर्य भाव की भक्ति में उपास्य का युगल स्वस्व अभिप्रेत है जो दास्य भाव से संभव नहीं है । दम्पति की रस लीलाओं में दास आदि की गति नहीं होती । पति को यदि दूसरी पत्नी भी हो तो भी उसका प्रवेश रस लीला में रसवर्धक नहीं हो सकता ।

कान्ताभाव के उपासकों के तीन रूप हैं - जो क्रमशः सीपीभाव, सखी भाव और महाभाव या राधा भाव में पर्यवसित होते हैं । इनमें से महाभाव केवल श्री राधा जी में ही संभव है । वे श्री कृष्ण की श्रेष्ठतम भक्त हैं ।

1- रूप प्रेम आनन्द रस, जो कहु जग में आहि ।

सो सब गिरधर देव सो, निधरक बानी ताहि ।

2- मोहि तोकि नाते अनेक मानिये जु भावै । रसमंजरी, नंददास रा.च.शुक्ल पृ 39  
ज्यों ल्यों तुलसी कृपालु चरन शरण पावै ।। विनय पत्रिका तुलसीदास पद सं० 79

प्रेम क्रमशः विकास की प्राप्ति होकर स्नेह, मान, प्रणय, रण, अनुराग, भाव और महाभाव तक पहुँचता है । जहाँ जीवकी पहुँच नहीं हो सकती । जीव की पहुँच केवल भाव तक ही होती है । यहाँ प्रभु चैतन्य देव साक्षात् परतत्त्व परब्रह्म थे<sup>1</sup> अतः महाभाव (राधा भाव) की प्राप्ति केवल उनके द्वारा ही मानी जाती है । उनके भूतल पर अवतीर्ण होने का मुख्य प्रयोजन अपनी स्म माधुरी का संचार की बतलाया गया है ।<sup>2</sup> अब रही गोपी भाव और सखी भाव की साधना । सामान्य चर्चा में गोपी भाव और सखी भाव की साधना में भेद नहीं माना जाता । गोपी भाव के समानार्थी के रूप में सखी भाव का क्षेत्र बहुत व्यापक है और कृष्णों पासक सम्प्रदायों में गोपी और सखी में प्रायः भेद नहीं किया जाता । निम्बार्क, क्लृप्ता और यादव गोडेश्वर सम्प्रदायों में ये दोनों शब्द प्रायः पर्याय रूप में ही गृहीत होते हैं ।<sup>3</sup> वहाँ सखी और गोपी भाव में प्रायः भेद नहीं किया जाता है । परन्तु राधाक्लृप्ता सम्प्रदाय और स्वामी हरिदास जी के रसिक सम्प्रदाय में जहाँ निकुंज सेवा और सखी भावना की प्रधानता है सखी भाव का वैशिष्ट्य विविध सूत्रों से सर्वथा स्पष्ट लक्षित होता है । उक्त दोनों भावों में एक सर्वथा स्थूल अंतर यह है कि गोपी भाव जहाँ ब्रजलीला अथवा कुंजलीला तक परिसीमित है सखी भाव निकुंज लीला नित्यलीला अथवा नित्य विहार का आधार स्तम्भ है । उपासना की दृष्टि से ब्रजलीला स्थूल जगत के स्थूल क्रिया व्यापारों से सम्बद्ध होने के कारण भाव और विभाव के आधार पर भी जहाँ सहज ग्राह्य है वहाँ निकुंज भाव की साधना में समर्पण भाव की अतिशयता, स्वसुख का सर्वथा त्याग, अनुराग की प्रभर तीव्रता और युगल किशोर में अपनी सत्ता की सर्वतोभावेन आत्मसात्करण की आकुल उत्कण्ठा उस प्रेम मार्ग की प्रथम अपेक्षा है । कान्ता भाव की विविध साधनाओं के क्रम में यहाँ गोपी भाव और सखी भाव के अन्तर की अभिव्यक्ति करना समीचीन होगा ।

1- चैतन्य चरितामृत आदि छंद परि- ।

2- सोलहवीं शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृष्ठ 18 ।

3- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, शरण बिहारी गोस्वामी पृष्ठ 136

### गोपी भाव --

गोपी शब्द गोप शब्द का स्त्री लिंग वाची है। गोप शब्द 'गो' एवं 'प' के संयोग से बना है। 'गो' के 'गौ', स्वर्ग, वाणी, इन्द्रियों भूमि, जल अनेक अर्थ हैं।<sup>1</sup> उनमें 'गौ' सबसे अधिक प्रचलित है। 'प' पति या स्वामी का बोधक है। इस प्रकार गोप शब्द के अनेक अर्थ होते हुए भी गोप अर्थात् 'गायों का पालक' या 'पति' सर्वमान्य हुआ। गोप गायों की चराने वाली ब्रज मंडल की एक विशेष जाति थी जो अहोर अथवा यादव की सजा से भी अभिहित होती रही है।<sup>2</sup> श्री कृष्ण का जन्म उसी जाति में हुआ था अतः उनके सम्बन्ध से गोपी शब्द 'श्री कृष्ण प्रिया' के अर्थ में ग्राह्य होने लगा। गोकुल निवासिनी श्री कृष्ण की अनन्य प्रेम भाव से साधना करने वाली गोपांगनाएँ गोपो की सजा से अभिहित हुईं। इसी भावना से गोपिकाओं की प्रेम प्रणाली का अनुसरण करना वैष्णव उपासकों की आराधना का महत्वपूर्ण अंग बन गया।

'गोपी' शब्द की अन्य प्रकार से भी व्युत्पत्ति की गई है। वेदों में विष्णु को 'गोप' कहा गया है जो सूर्य का पर्याय है।<sup>3</sup> इस संदर्भ में गोपी का अर्थ किरण हुआ। श्री कृष्ण और गोपियों के अखण्ड प्रेम की सार्थकता की इस अर्थ से अच्छी पुष्टि होती है। इसी प्रकार 'गुप' धातु रक्षण अर्थ में प्रयुक्त होती है जिससे गोपी शब्द का अर्थ हुआ 'क्षिपा कर रखने वाली'।<sup>4</sup> जो श्री कृष्ण के उत्कट आभ्यंतर प्रेम को मन में क्षिपाये रख कर मगन रहती है वही 'गोपी' है।<sup>5</sup>

'गोपी' इन्द्रियों की वृत्ति को भी कहते हैं। इस वृत्ति को अत्यधिक

1- स्वर्गेषु पशुवाक्जदिहनेत्रवृष्णिभ्रजले । लक्षदृष्ट्या स्त्रियां पुंसिगोः

2- अमरकोश वैश्य वर्ग 57 अमर कोश, तृतीयकाण्ड, नानार्थवर्ग 25

3- विष्णुर्गोपा अदाय्यः ऋग्वेद 3, 3, 29

4- गोपनादुच्यते गोपी । पद्मपुराण पाताल अण्ड तथा ब्रह्म संहिता 2/5/50

5- गोपायति सकलमिदं गोपायति परं पुमसिमिति गोपी, नारद पांच रात्र 3/2/16

आकर्षित करने वाले को 'कृष्ण' (आकर्षित करने वाला, झींचने वाला) नाम से पुकारा गया। इस प्रकार दर्शन, धर्म और उपासना के क्षेत्रों में 'गोपी' और 'कृष्ण' शब्दों के नैकट्य को विविध प्रकार से पुष्ट करने के सार्थक प्रयास निरंतर चलते रहे जिससे ये दोनों शब्द प्रेम की अनन्यता और अखण्डता के क्षेत्र में एक दूसरे से आबद्ध हो गए। मद्मपुराण में दण्डकारण्यवासी मुनियों को भगवान् श्री राम से द्वापर में गोपी होने का वरदान प्राप्त हुआ था ऐसा वर्णन आता है। वृहद् वामन पुराण में उल्लेख है कि श्रुतियों और ऋचाओं को क्षीरक्षेत्र तप करने के फल स्वस्व गोपी देह प्राप्त हुई थी।<sup>2</sup> इस प्रकार श्री कृष्ण सक्षात् परब्रह्म परतत्त्व हैं। गोपियों उनकी शक्तियाँ हैं। श्री कृष्ण पुरुष हैं तो गोपियाँ प्रकृति हैं। श्री कृष्ण पूर्णवतारी हैं तो गोपियाँ उनके नित्य परिकार में होने के कारण लीलाविस्तार हेतु उनके साथ अवतरित हुई हैं। अतः वे आप्तकाम और नित्य हैं।<sup>3</sup>

स्कन्द पुराणादि में गोपी जनों को श्री कृष्ण का अंश विस्तार कहा गया है और वहीं एक स्थान पर श्री राधा को उनकी अत्मा कह कर गोपियों को राधा का अंश विस्तार कहा है। श्री कृष्ण ने स्वयं अपने को ललिता के स्म में स्वीकार किया है। इस प्रकार श्री राधा के सखी सहचरी स्म में भी प्रतिष्ठित होने में श्री कृष्ण ने अपने को मोरवान्वित माना है।<sup>4</sup> गोपियाँ भगवान् श्री कृष्ण की सिद्ध शक्तियाँ हैं इस प्रकार की भी प्रायः सर्वमान्य भावना चली आती है और श्री स्म गोस्वामी ने उज्ज्वल नील मणि में गोपियों का वर्णिकरण करते हुए उनके साधन सिद्धा और नित्य सिद्धा आदि भेद स्वीकार किये हैं।<sup>5</sup>

अतः तात्त्विक दृष्टि से गोपियों में मानक्ता का आरोप करना अमानुषिक है।

- 
- 1- उज्ज्वल नीलमणि पृ० 65
  - 2- वही पृ० 66
  - 3- कामास्तु वर्णितस्तस्य गावो गोपश्च गोपिका ।  
नित्या सर्वे विहाराधा आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ - स्कन्द पुराण, कैणव खंड 1/23
  - 4- अहं च ललितादेवौ तुर्यातीता च निष्पला । - मद्मपुराण पाताल खंड 75/35
  - 5- तास्त्रिधा साधनपरा, देव्यो नित्याप्रियस्तथा । - उज्ज्वलनीलमणि हरि० 40

लीला के विचार से उनको श्री कृष्ण के परिकर में अनिवार्य रूप से स्थान देना पड़ेगा । फिर भी श्री कृष्ण की व्यापार कालीन लीलाओं के अनेक रूप हैं इस विचार से तत्त्ववेत्तियों ने गोपियों के सम्बन्ध में उपासना की विविध प्रणालियों और तत्सम्बन्धी मतमतान्तरों को जन्म दिया है । फिर भी सभी वैष्णव वर्गों में वे श्री कृष्ण की नित्य कान्ताओं के रूप में गृहीत हैं । वे उनकी जन्म जन्मन्तर की प्रेयसी और उनके अहेतुक प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं ।

आचार्य क्लृप्प ने गोपियों में प्रेम की पराकाष्ठा मानी है और उनके अनुसार गोपियों में प्रेम की पूर्णता है । अपने समस्त लौकिक बंधनों को तोड़ कर और सर्वव्यपारित्यग कर श्री कृष्ण की रास क्रीड़ा में सम्मिलित होने वाली श्रुतिस्मया गोपिकाएँ भक्ति मार्गीय सन्यास का सर्वोत्तम उदाहरण हैं ।<sup>1</sup> इस कारण नारद भक्ति सूत्र में उनको अनुराग का आदर्श माना है । क्योंकि समस्त कर्मों को अर्पण करना और भगवद् स्मृतिमें परम व्याकुल हो जाना गोपिकाओं का ही स्वभाव है ।<sup>2</sup> वास्तव में प्रेम रसमें निमज्जित और उसमें निरंतर आसिद्ध भक्तों का नाम ही गोपी है । 'गोपा' अर्थात् स्त्री नहीं स्त्री भाव धारण करने वाले भक्त । हृदय प्राधान्य तत्त्व को नाम 'स्त्री' है, अतः पूर्ण 'स्त्री भाव' ही गोपी भाव है । गीता में इसी को 'परमभाव' का नाम दिया गया है ।

### “परम भावमजानन्ती”<sup>3</sup>

गोपियों के इस 'परम भाव' के सम्बन्ध में एक विचारशील महात्मा ने लिखा है; 'जो प्राणी पूर्णता की भूमि पर पहुँचि हुए होते हैं वही कृष्ण तक पहुँचि हुए होते हैं । वे इस प्रपंच के सप्तावरण को भेद कर पूर्णता प्राप्त प्राणी हैं'<sup>4</sup>

- 
- 1- भक्ति मार्गीय सन्यासस्तु सक्षात्पुष्टि पुष्टि श्रुति स्मरणां रासमंडल मंडनानां, स्वयमेवैत्यम् — गायत्री भाष्य
  - 2- नारदस्तु तदर्पितञ्जलिचारता तद्विस्तारणे परमव्याकुलतेति — नारदभक्तिसूत्र-19
  - 3- गीता

- 4- When beings are perfected they reach the plane of Krishna, which is beyond the seven fold plane of the cosmic ego. The Gopis are such perfected beings.



अतः गोपी भाव सर्वोत्तम आत्म समर्पण का 'सहज भाव' है । इस प्रेम में वेद शास्त्र, विधि निषेध, विवेक आदि की सत्ता नहीं रहती । न संयोग न विप्रयोग । यह प्रेम की अत्यन्त उत्कृष्ट स्थिति है ।<sup>1</sup>

श्रीमद् भगवत् में भक्ति की सर्वोच्चता की प्रतिष्ठा ब्रज सीमान्तनियों में बताई गई है । स्वयं भगवान् ने उद्धव से उनकी भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा है 'गोपियों का मन नित्य निरंतर मुझ में ही लगा रहता है । उनके प्राण उनका जीवन सर्वत्र मैं ही हूँ । मेरे लिए उन्होंने अपने पति पुत्र आदि सगे सम्बन्धियों को छोड़ दिया है । उन्होंने बुद्धि से भी मुझ ही को अपना प्यारा प्रियतम - आत्मा मान रखा है । मेरा यह ब्रह्म है कि जो लोग मेरे लिए लौकिक और पारलौकिक धर्मों को छोड़ देते हैं, उनका पाप पोषण मैं स्वयं करता हूँ' ।<sup>2</sup> लोक और वेद की धर्मों का परित्याग कर समस्त सांसारिक विषयों का भगवान् के चरणारविन्दों में विनियोग करने वाली ब्रजगिनारें 'प्रेम की धुजारें' हैं । ऐसा परमानन्ददास जी ने ब्रह्म व्यक्त किया है । आचार्य क्लृप्त ने अपने सन्यास निर्णय में गोपियों की भक्ति मार्ग का गुरु कहा है ।

कोटिन्यो गोपिकाः प्रेक्षता गुरवः साधनं चतत् ।

भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ॥ सन्यास निर्णय - 8  
और गोपियों की विरह जन्य पीड़ा की प्राप्ति के लिए भगवान् से कामना की है ।

श्री मदभागवत् में दो प्रकार की गोपियों का परिचय मिलता है । एक वे गोपियाँ हैं जो दूसरे गोपों से विवाहित हैं, दूसरी वे जो श्री कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए साधना रत हैं । श्री कृष्ण जी ने उन गोपिकाओं से विधिवत विवाह किया था ऐसा श्री मदभागवत् में कहीं उल्लेख नहीं मिलता परन्तु उन्होंने

1- कविवर परमानन्ददास और क्लृप्त सम्प्रदाय - डा० गोवर्धन नथ

2- श्रीमद्भागवत् 10/46/4

अवश्य ही समस्त गोपिकाओं और गोप कन्याओं की मनोकामना अपने अंग सँग और काम क्रीड़ा से पूर्ण की थी यह स्पष्ट वर्णित है ।<sup>1</sup> कुछ ग्रंथों में राधा को भी अयन रायाण घोष अथवा अभिमन्यु गोप की पत्नी बताया गया है । अतः कुछ सम्प्रदायों के अनुसार वे परकीया थीं । परन्तु अनेक पुराण और सम्प्रदाय उन्हें स्वकीया मानते हैं । इनके अनुसार राधा के अभिमन्यु गोप के साथ के सम्बन्ध को राधा की काया-कसथ का सम्बन्ध बताया है । काया-पात्रों को यह परंपरा भारत में नई नहीं है ।<sup>2</sup>

गोपियों का वर्गीकरण - सभी गोपियों को सामान्य तथा श्री राधाकृष्ण के प्रेमराज्य में प्रायः मान मयदा के एक ही धरातल पर प्रतिष्ठित माना जाता है परन्तु फिर भी वय, स्वल्प, सेवा और सम्बन्ध आदि आधारों पर विभिन्न सम्प्रदायों में उनका वर्गीकरण किया गया है ।

असंख्य और अनन्त गोपियों को पुराणों में यूथों में विभाजित किया गया है जिसमें प्रत्येक यूथ की एक यूथनेत्री होती है । प्रत्येक यूथ की गोपियों की संख्या अलग अलग होती है । कहीं कहीं श्री राधा को भीयूथ की स्वामिनी बताया गया है । चन्द्रावली और ललिता का यशस्वरियों में उच्च स्थान है ।

कय क्रम के अनुसार गोपियों के सखी और मंजरी दो भेद किये गए हैं । अवस्था में मंजरी बड़ी और सखी बड़ी होती है जिसे अंतरंग सेवा का विशेष अधिकार होता है । सखी और मंजरी की चर्चा गोड़ीय, निम्बार्क एवं राम सम्प्रदाय की 'रसिक शास्त्रा' में विशेष रूप से हुई है । इनमें सभी गोपियों और सखियों में राधा की प्रधानता है । वे भी गोप कन्या है जिनके परिवार आदि का पुराणों में विस्तार से वर्णन हुआ है । श्रीमद्भागवत् में राधा का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया गया है परन्तु भागवत् के पश्चात्, वर्गी युग में श्री राधा को गोपियों में असाधारण गौरव

1- श्री मद्भागवत 10/33/17

2- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव - श्री शरणविहारी गोस्वामी पृष्ठ 141

प्राप्त होता गया और वे क्रमशः गोपियों के साथ की उपासक श्रेणी से उठकर उपास्य के आसन पर सघासीन हो गईं । राधा की इस गरिमामय प्रतिष्ठा में भारतीय उपसना में युगलतत्त्व की स्थापना और परंपरा का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है । यहाँ पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति, लक्ष्मी विष्णु, सीताराम, राधाकृष्ण, अद्वय युगल भाव से लोक और वेद दोनों मार्गों में पूजनीय हैं । राधा की अन्य गोपियों से श्रेष्ठता स्वीकृत होने पर गोपियों का श्री कृष्ण ने साथ पूर्ववत् निजी अधिकार न रह गया क्योंकि राधा कृष्ण एक तत्त्व माने जाने लगे ।<sup>1</sup> श्री राधा कृष्ण की आत्मा और गोपियाँ आत्मश का विस्तार रूप में ग्रहण होने लगी ।<sup>2</sup> गोपियाँ श्री राधा की कार्य व्यूह रमा बन गईं । गोड़ीय गीर्वाणियों ने आगे चलकर गोपियों के रमण और उनकी संतुष्टि को राधा के आधार पर ही ग्रहण किया । उनके अनुसार राधा और श्री कृष्ण प्रेम की लता हैं और सखीगण उस लता के सत्र-सुष्प हैं । यदि लता का सिंचन किया जाता है तो फलवादि स्वयं प्रफुल्लित और सुखी होते हैं । अतः गोपी भाव के इस विकास क्रम में गोपी का प्रारम्भिक कन्ता भाव युक्त रूप क्रमशः सहचरीत्व तक सीमित हो गया । इन गोपियों के अनेक भाव और रस भेद हैं जिनसे लीला विस्तारण में अभूतपूर्व आनंद का संचार होता है । वृन्दावनेश्वरी श्री राधा की सखियों के पाँच प्रकार हैं । वे हैं :- सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिय सखी और परम श्रेष्ठ सखी उनके नाम, रूप और गुणों की उज्ज्वल नील मणि में विस्तार से चर्चा की गई है ।

गोपियों के सखी और मंजरी भेद वय के आधार पर किये गए हैं । इनमें सखी वे हैं जो समजातीया सेवा से श्री कृष्ण का प्रीतिविधान करती हैं जैसे ललिता विशाखा आदि । मंजरी श्री राधादामोदर के प्रेम सम्मिलन और उनके सेवा आनुकूल्य में रत रहती है । वे श्री राधा की किंकरी हैं और उनकी अंतरंग सेवा की अधिकारिणी हैं । साधनसिद्धा सभी गोपीगण मंजरी ही हैं । सखी और मंजरी दोनों ही श्री राधा की स्वस्मता प्राप्त किए हुए हैं । वे स्वस्म शक्ति हैं ।<sup>3</sup>

1- यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एका सः ।-ब्रह्म संहिता युगलतत्त्व समीक्षा  
2- अमिरामस्य कृष्णस्य ध्रुवमस्मास्ति राधिका । पृ 181

तस्या शः एकश विस्तारः सर्व्वः श्री कृष्णनायिकाः ।।-ब्रह्माण्डपुराण, राधास्तव

3- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी सम्प्रदाय - शरण बिहारी गोस्वामी- पृष्ठ 162

निम्बार्क, क्लृप्त, मध्व गौड़ीय राधाक्लृप्त सम्प्रदायों में गोपीजन की सेवा अर्चना, उनका राधाकृष्ण से स्वसुखी और तत्सुखी भाव एवं उपासना का आदर्श प्रायः ब्रजलीला भाव के अनुरूप है । इनकी विचारधारा के अनुसार उनका गोपी भाव अथवा सुखी भाव कान्ता भाव तक ही परिसीमित प्रतीत होता है यद्यपि इन सम्प्रदायों के परवर्ती विकास क्रम में आचार्यों की सुखी नामावली, नित्यलीला अथवा नित्य विहार की उपासना का आग्रह निकुंज रस वर्णन का प्राचुर्य विधि निषेध का त्याग, भावतुल्यता की चरमावधि निरबधि, निष्पेक्ष प्रभु निर्भरता और समर्पण की सर्वाधि शयता कुछ ऐसे तथ्यपूर्ण संकेत हैं जो सामान्यतया उनकी निष्ठा की सुखी भाव की कोटि में ले पहुँचते हैं परन्तु इन सम्प्रदायों के प्रारम्भिक विकास में ऐसी स्थिति नहीं देख पड़ती ।

गोपी और सुखी की परिचर्या की सीमा रेखा, उपास्य शील व्यवहार, स्वकीय-परकीय वृत्ति, समर्पण की एक निष्ठता उपासना प्रणाली की निवृत्ति, क्रिया व्यापार और वातावरण की मनोज्ञता के आधार पर कुछ ऐसी स्पष्ट तात्त्विक विभक्तियाँ हैं कि उक्त सम्प्रदायों द्वारा गोपी और सुखी भाव की घेलमेल की प्रवृत्ति स्वतः सिद्ध हो जाती है । दोनों भाव पद्धतियों के साधना क्रम की विभिन्नता ~~स्त्री~~ के प्रसंग में निम्न विवरण उपयोगी होगा ।

गोपी भाव की उपासना प्रमुखतया ब्रज भाव की उपासना है । ब्रज में गोप, वसुदेव देवकी नंद यशोदा, ग्वाल बाल भगवान् के साथ है अतः अनवरत रूप से गोपी लीला का दर्शन नहीं हो पाता । गोलोक में भी गो, गोप, गोपी ग्वाल आदि का अस्तित्व है परन्तु गोपियों और कृष्ण का आनंद विहार सभी भक्तों को स्वीकृत नहीं हो सकता । अतः गोलोक से भी परे नित्य वृन्दावन का साधना विधान सुखी भावना वाले भक्तों ने किया जहाँ गोपी ग्वाल, नंद यशोदा आदि की सीमाओं का बंधन नहीं है । वहाँ श्री युगल के साथ केवल सखियाँ हैं जो नित्य लीला के रसप्लावन में सहयोग करती हैं । श्री युगल और सखियों के द्वारा यह रस विस्तार होता है ।

सखी भावीपासक आचार्यों ने गोपियों को प्रेम का गुरु माना है ।<sup>1</sup> भगवान् श्री कृष्ण ने भी जानी उध्व जी को प्रेम की शिक्षा के निमित्त गोपियों के पास ब्रज में भेजा था । यद्यपि गोपियों के प्रेम की निष्कामता का ही प्रस्यः वर्णन हुआ है परन्तु पुराणों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं जहाँ गोपियों के प्रेम में सकामता की गंध आती है । गोपी भाव के आचार्यों ने भी उनके प्रेम के सकाम स्म के वर्णन प्रस्तुत किये हैं । यह उदान्त भावना नहीं है ।<sup>2</sup> अतः कालान्तर में गोपी भाव की उपासना में भी स्वसुख की भावना के स्थान पर तत्सुख भावना की संस्थापना हुई । इसी आधार पर राधा क्लृप्त सम्प्रदाय के महात्मा ध्रुव दास ने सखियों को गोपियों से उच्च स्थान दिया है ।<sup>3</sup> सखियों का सामान्यतया तत्सुख-सुखी भाव ही स्वीकृत है परन्तु विशुद्ध सखी भाव स्वसुख और तत्सुख दोनों भावों से परे है । वहाँ तो सखियों की जो अनुभूति है वह उपास्य युगल को प्रिय है और जो मुगल प्रिय हो इष्ट है सखियों उसी की कामना करती रहती है । इस प्रकार सखी भाव में काम का कोई काम नहीं है । वहाँ तो केवल रस खलीला की प्रवृत्ति है सखी गण और दम्पति युगल उसके आलंबन हैं । परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । भेदभाव से सर्वथा निरपेक्ष । इसी प्रकार यहाँ स्वकीया और परकीया भाव की निरपेक्षता भी है ।

गोपी और सखी भाव की भिन्नता का एक सबल आधार आराध्य युग्म की लीलाएँ हैं । भगवान् की अवतार कालीन लीलाओं में अनेक ऐसी हैं जिनमें लोक व्यवहार और यथा सम्बन्ध निर्वह हेतु श्री कृष्ण अथवा श्री राम को अन्य जनों के साथ व्यस्त रहना पड़ता है जैसे गोचारण, परदुख निवारण गृह राज्य प्रबंध आदि । ये लीलाएँ सखियों के साथ उनके सहज लीला विलास में अधिक हैं जहाँ गोपियाँ अकुल नेत्रों से अपने प्रिय आराध्य की बाट जोहती रहती हैं । उनके मथुरा जाने पर तो वे आजीवन हथ मलती रह गई । गोपी भाव में संयोग अश्र और वियोग दोनों के अवसर हैं । सखी भाव में केवल एक ही स्थिति है और वह है संयोग की-नित्य संयोग की । वहाँ पल भर के वियोग का भी अवकाश

1- श्री सचि प्रेम की गुरु गोपी, - - - - - बिहारिनिदास की वाणी सिद्धान्त व के पद 137

2- कृष्ण भक्ती में सखी भाव - डा० शरण बिहारी गोस्वामी पृष्ठ 193

3- गोपिनु के सम भक्त न आहीं, उध्व विधि तिन की रज चाहें ।  
तिन मन कहु सकामता आई, तर्त विच अंतर परयो भाई ।

--अनिंदलता लीला ध्रुवदास पृ० 373

नहीं है । सखियों के आराध्य श्री नित्यबिहारी की उपासना में अंतराम रहित, अविरल नित्य निरंतर विहार की ही प्रधानता है । यहाँ वे क्षण मात्र के लिए भी सखियों से विलग नहीं हो सकते परन्तु विशेषता यह है कि इसमें प्रेम वैचित्र्य की ऐसी नित्य नूतनाता का समवेष्ट है कि सब कुछ नित्य नवीन और सर्वथा उत्पुल्लता पूर्ण ही बना रहता है ।

उपास्य की भिन्नता भी गोपी भाव और सखी भाव की उपासना का प्रमुख विभेद है । गोपी भाव में श्री कृष्ण के अवतारी रूप की उपासना प्रमुख है । वैसे गोलोक बिहारी पूर्ण परब्रह्म रसेश श्री कृष्ण और नन्दनन्दन श्री कृष्ण में स्वयंता है परन्तु इस स्वयं के होते हुए भी वे नित्य, सनातन ब्रह्म से भी परे हैं । परन्तु अवतारी होने के कारण ब्रज के श्री कृष्ण उनके अंशभूत हैं । अतः गोपी भाव की उपासना में ऐश्वर्य और माधुर्य गुण मंडित लीलाओं का वर्णन है द्वारका और मथुरा की लीलाओं को प्रायः छोड़ दिया गया है । परन्तु सखी भाव के उपास्य (श्री कृष्ण होते हुए भी) नित्य लीला बिहारी हैं । वे अवतारों के अवतारी हैं । ब्रज के श्री कृष्ण भी उस आनन्द का लाभ नहीं ले सकते जो नित्य विहारी लीला शिरोमणि प्रिया प्रियतम हैं । गोपियों के आविर्भाव काल में उनका श्री कृष्ण के साथ जो प्रत्यक्ष रमण है , सखी भाव की उपासना में उसकी किसी प्रकार गुंजायश नहीं ।<sup>1</sup>

इन नित्य विहारी की उपासिका सखी है, गोपियाँ नहीं । गोपियों के विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण उनमें ही सम्भव हैं, सखियों में नहीं क्योंकि विभिन्न माध्यमों के आधार पर गोपियों के यथों का निमण हुआ है परन्तु सखियाँ तो नित्य सखियाँ हैं । गोपियों के माता पिता पति पुत्र आदि हैं परन्तु सखियाँ सदा - सनातन हैं । वे देश काल से परे उन परब्रह्म परम्परा की अंश भूता हैं । स्त्रियों के स्वकीया और परकीया भेदों के आधार पर भी गोपी और सखी के, अस्तित्व की भिन्नता बहुत स्पष्ट है । विशुद्ध सखी भाव में प्रिया प्रियतम की जोड़ी नित्य, अविचल और एक है वहाँ 'स्व' और 'पर' का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता । वे सखियाँ हैं और उनके स्वामी युगल दम्पति हैं । इनका सम्बन्ध ही सर्वथा विलक्षण

है अतः सखियों में श्री कृष्ण के प्रति कान्ता भाव भी नहीं है । कान्ता भाव श्री नारी की केवल एक स्थिति है परन्तु सखी भाव में उपास्य के प्रति जो स्नेह, सम्बन्ध की जो प्रगाढ़ता और आनन्द वैचित्र्य की सघनता है गोपीभाव उससे कोसों दूर है । उसके, आगे 'स्वकीया' और 'परकीया' की चर्चा कोरी काम रटना मात्र है । यहाँ न सकामता का स्थान है और न उसको पराङ्मुखता की । राधा की प्रधानता होने से इस भाव भूमि में यह विवाद निर्मम और असंगत है ।

गोपी तत्त्व एक पौराणिक सृजन है । पुराणों में जैसा कुछ गोपियों के स्वस्म, उनके परिवार स्वभाव ~~कार्य~~ आदि का वर्णन है उससे गोपीजन के कार्य क्षेत्र, मर्यादा और इतिहास का परिज्ञान होता है परन्तु गोपी तत्त्व क्या है इसकी अत्यक्ष अनुभूति नहीं होती । सखी भाव में तात्त्विक दृष्टिकोण की प्रधानता है । उसके वर्णन व्याख्याकारों ने उनके स्वभाव, स्वस्म और इतिकृत्त पर विशेष ध्यान न देकर सखी भाव तत्त्व के विश्लेषण में अपनी विशेष शक्ति लगाई है अतः पौराणिक आधार के अभाव में भी सखी भाव अपनी विचित्र उपास्य-प्रणाली और सेवा साधना के कारण कान्ता भाव की उपासना में अपना साने नहीं रखता । दार्शनिक और तान्त्रिक आधारों पर सखी भाव की निवृत्ति संभव नहीं है परन्तु नित्य लीला और निकुंजरस की अलौकिक सौष्ठव मयी अनुभूति के कारण इस उपासना पद्धति की विचित्र रसमयता अनूठी तन्मयता और लोक पाशों से मुक्ति के आधार पर इसी अत्यन्त श्रेष्ठ और गुण गरिमा समन्वित साधना कोटि में रखा गया है ।

### गोपी भाव से सखी भाव की विशेषता -

शान्त से सख्य तक भक्त भगवान् में ममतायुक्त न होने पर भी सामान्य स्मृति से माधुर्य का अनुभव करता है परन्तु उसको माधुर्य अनुभूति भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान को टक नहीं सकती । माधुर्य भाव के साधन से उत्पन्न प्रेम विशेष ही माधुर्य का अनुभव है । यही सब श्रेष्ठ रसस्वादन है । हम माधुर्य रसस्वादन में ऐश्वर्यादि का अनुभव सर्वथा लुप्त हो जाता है । इसी आधार पर व्दारका से लेकर ब्रज-गीकुल की लीलाओं में क्रमशः उत्कृष्टता मानी गई है । अतः ब्रज के श्री कृष्ण पूर्णतम माने गए हैं १

ब्रज की लीलाओं में श्री कृष्ण के माधुर्य का पूर्ण प्रकाश है । इनमें भगवान् 'इष्टदेव' अथवा फुल नहीं हैं, नर-मनुष्य हैं — अखिल ब्रह्मण्डाधिपति परमेश्वर नहीं हैं — ब्रजवासियों के आत्मीयजन हैं । वे यहाँ 'नरवपु' में 'नरलीला' करते हैं । परन्तु यह 'नरलीला' प्राकृत — नरलीला नहीं है अर्थात् कर्मजनित पंचभौतिक जड़ देह सम्पन्न जीव के कर्म विशेष नहीं है । यह तो नर स्म स्म धारण करने वाले नित्य सत्य सच्चिदानन्द — परब्रह्म की स्वस्म लीला है । इसमें विशुद्ध प्रेम, अनन्य प्रीति, एक मात्र शुद्ध माधुर्य का राज्य है । भगवान् का यह 'नर-भाव' मनुष्य में दिव्य प्रेमसुधा रसमय स्वभाव - स्वस्म वितरण के लिए ही है । ईश्वर - भाव रहने से ऐश्वर्य का प्रकाश रहता है और ऐश्वर्य में मनुष्य के साथ सम जातीयता न रहने से प्रेमास्पद भगवान् और प्रेमी मानव का निःसंकोच मिलन नहीं हो सकता । ईश्वर के प्रति मनुष्य के हृदय में मान - सम्मम रहता है उनके समीप पहुँचने में संकोच होता है । परन्तु भगवान् का ऐश्वर्य जब उनकी इच्छा से ही माधुर्य के द्वारा आच्छादित हो जाता है तब प्रेमास्पद भगवान् मनुष्य से बन कर प्रेमी मनुष्य के समीप पहुँच जाते हैं और सजातीय 'नरलीला' के द्वारा परस्पर रसस्वादन करते करते हुए दिव्य रस का प्रवाह बहाते हैं । गोपी और सखी दोनों भावों में माधुर्य की प्रधानता रहती है । परन्तु माधुर्य के भी दो अलग-अलग स्म हैं । गोपी भाव की लीलाओं में उन नराकृति परब्रह्म के मानव शरीर का असमीर्ध्व सौंदर्य, माधुर्य, वैचित्र्य, वैकुण्ठ गुणों की समष्टि द्वारा माधुर्य के भिन्नतम विकसित स्मों में दृष्टि गोचर होता है । वे हैं स्म माधुर्य, केतु माधुर्य, प्रेम माधुर्य और लीला माधुर्य जिनका प्रकाश श्री ब्रजेन्द्र नंदन श्री कृष्ण में ही होता है । इस स्म का यही वैशिष्ट्य है । गोपी भाव के से माधुर्य जो उनकी बाल, पौगण्ड और किशोर लीलाओं पर समाश्रित है उन अखिल अनन्त अतुल सौन्दर्य सागर, नित्य निरति शयानन्द स्वस्म, दिव्यदीप्तिच्छटा विमृषित मुनिमन मोहन भगवान् श्री कृष्ण के मधुराति मधुर स्वस्म के धर्म हैं । उनका नित्य किशोर स्म धर्म है । धर्म के बिना धर्म की सत्ता नहीं होती अतः केशोर के बिना बाल्य और पौगण्ड के



स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती । इस प्रकार गोपी भाव की बाल, पौण्ड्र और कैशोर लीलाएँ वास्तव्य और सख्य के आवेश में उन नित्य किशोर की ब्रज लीलाएँ हैं । भगवान् का नित्य किशोर स्वस्य विषयक विशिष्ट माधुर्य वास्तव में शाश्वत सनातन आनंद और माधुर्य का प्रीत है जो श्री राधा जी तथा उनकी काव्यव्यूह स्या सखी सहचरियों के नित्य किशोरी रूप में समाविष्ट है । श्री राधा और सहचरियाँ मूलतः नित्य किशोरी ही हैं ।

श्री कृष्ण, श्री राधा उनकी काम व्यूह स्या सखी सहचरियाँ आदि स्वस्य शक्तियों के साथ नित्य निरंतर दिव्य रसलीला में संलग्न रहते हैं । इस रसलीला को ढोड़कर अन्य कहीं भी काम कथायाऽन्य नहीं है । उसमें किसी न किसी रूप में आत्म सुख की कल्पना-लेश गन्ध रूप कषाय रहता ही है । श्री कृष्ण राधन में सर्वतोभावेन समर्पित इन सखी सहचरियों के समस्त उद्यम, समस्त प्रयत्न श्री कृष्ण के सुख विधान के लिए ही होते हैं ।<sup>1</sup> गोपांगनओं की ब्रज लीलाओं में संयोग और वियोग की अनुभूति का विधान है । सखी सहचरियों की रस लीला इनकी अनुभूति से परे है क्योंकि वह नित्य लीला है । केवल निवधि श्री राधा-कृष्ण सम्मिलन सुख ही उसका परम लाभ है ।

श्री राधा भाव - श्री राधा जी के प्रेम को महाभाव की संज्ञा दी गई है । उनका जीवन श्री कृष्ण सुखमय ही है । श्री राधा का छानपान, शयन जागरण, आचार व्यवहार, आशा-उत्कण्ठा, राग विराग सब कुछ श्री कृष्ण सुखार्थ है । उनका भगवान् श्री कृष्ण के भयानक वियोग व्यथा से पीड़ित विरहताप दग्ध देह में प्राणों की रक्षा के निमित्त होने वाला आर्तब्रंदन भी श्री कृष्ण सुख के लिए है । श्री कृष्ण के वियोग में वे परमसंतप्ता हैं, मिलन से उन्हें शीतल परमानंद की प्राप्ति होगी परन्तु वे अपनी इस सुख निवृत्ति और आनंद लाभ के लिए नहीं रोती - कराहती उनके आर्तब्रंदन में केवल श्री कृष्ण सुख ही तात्पर्य है । कस्तुतः मिलन

1- रस रूप श्री कृष्ण और भाकवस्या गोपांगना समन्वित

श्री राधा जी का तत्त्व महत्त्व - कल्याण वर्ष 40 अंक ।। पृष्ठ 1295

और वियोग - संयोग और विप्लव दोनों हो रति हैं और दोनों में ही परमानंद रस की अनुभूति रहती है । भौतिक जीवों के वियोग में केवल दुःख ही दुःख - रोना ही रोना है परन्तु भगवान् के वियोग में प्रेमी के मन में प्रियतम श्री कृष्ण की अनंत सुख रसमयी सन्निधि का अनुभव होता है । संयोग और वियोग दोनों में ही उनका सानिध्य रहता है संयोग में बाह्य और वियोग में अन्तः सानिध्य होता है । संयोग में स्थिति, स्थान आदि अनेक प्रतिबंधक हैं वियोग में ऐसी कोई बाधा नहीं है वह सर्वथा निर्विधि और स्वतंत्र है । श्री श्री कृष्ण वियोग के दिव्योन्माद में सर्वत्र श्री कृष्ण का मिलन उनकी माधुर्य मंडित कटा का मधुर दर्शन प्राप्त होता रहता है । इस मिलन और विरह में से यदि विकल्प की सुविधा मिले तो इनमें प्रियतम का विरह ही ऋतु है क्योंकि मिलन एकान्गी - एकनिष्ठ है - उसमें एक स्थान पर ही श्री कृष्ण के दर्शन होते हैं परन्तु उनके विरह में तो तीनों लोक ही तन्मय - श्री कृष्णमय दीखते हैं ।

राधा भाव - जैसे श्री कृष्ण तत्त्व और रसतत्त्व अपने स्वस्व में एक ही हैं उसी प्रकार राधा तत्त्व एवं प्रेमतत्त्व एक ही वस्तु है । परिपूर्णतम् परमात्मा, सच्चिदानंद समस्त ऐश्वर्य और माधुर्य के समुद्र आनंद कंद भगवान् श्री कृष्ण और श्री राम में जिस प्रकार कोई भेद नहीं है उसी प्रकार महाभाग्या श्री राधा, लक्ष्मणी और सीताजी आदि में भी कोई भेद नहीं है ।

भगवान् श्री कृष्ण की अनन्त शक्तियों में सर्व शक्ति गरिमामयी ह्लादिनी शक्ति है जो आनंद स्वस्व एवं आनंद दायिका शक्ति है । उस ह्लादिनी शक्ति के सार अथवा घनीभूत अवस्था का नाम है 'प्रेम' जो परम आस्वादय है । यह आनंद आस्वादयत्व चिदानंद है और चिन्मय एवं परम आस्वादय होने से यह रस स्वस्व है । चिद्वस्तु होने से रस रूप प्रेम 'स्वप्रकाश' है जो अपने को तो प्रकाशित करता ही है परन्तु अपर को भी प्रकाशमय करने की क्षमता रखता है । यह अपने को स्वयं आस्वादन कर सकता है और दूसरे के मत में भी आस्वादन की वासना जगृत कर सकता है एवं दूसरों के वद्वारा अपने को आस्वादित भी करा देता है ।

प्रेम की चरम गढ़ता को महाभाव संज्ञा है । श्री राधा भाव अथवा महा भाव एक ही है ।<sup>1</sup>

भगवान् की दिव्य लीलाओं का प्राकट्य वास्तव में आनन्दमयी ह्लादिनी शक्ति से होता है । भगवान् अपने निजानन्द का परिस्फुटन करने के लिए अथवा उसका नवीन रूप में आस्वादन करने के लिए ही स्वयं अपने आनन्द को प्रेम विग्रहों के रूप में प्रकट करते हैं और स्वयं ही उनसे आनन्द का आस्वादन करते हैं ।

भगवान् के उस आनन्द की प्रतिमूर्ति श्री राधा रानी है और यह प्रेम विग्रह समस्त प्रेमी का स्कीभूत समूह है अतः श्री राधाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्री कृष्ण आनन्दमय हैं । आनन्दरससार का घनीभूत विग्रह श्री कृष्ण हैं और प्रेम रस सार की घनीभूत मूर्ति श्री राधा है जिनका कभी वियोग नहीं होता । न श्री राधा के बिना श्री कृष्ण रह सकते हैं और न श्री कृष्ण के बिना श्री राधा । श्री कृष्ण के किये आनन्द विग्रह की स्थितिही दिव्य प्रेम विग्रह स्या श्री राधाजी के निमित्त से है । इस प्रकार श्री कृष्ण ही श्री राधा के जीवन हैं और श्री राधा अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौंदर्य माधुर्य लावण्य निधि आत्मारामगणाकर्मी प्रियतम श्री कृष्ण को आनन्द प्रदान करती रहती हैं ।

भगवान् श्री कृष्ण की राधा स्या इस ह्लादिनी शक्ति की लाखों अनुगामिनी शक्तियाँ मूर्तिमती होकर नित्य निरंतर सखी, मंजरी, सहचरी और दूती आदि रूपों से श्री राधा कृष्ण की सेवा किया करती हैं । उन्हें सुख पहुँचाना और प्रसन्न रखना ही इनका एकमात्र कार्य होता है । इन्हें गोपीजन कह कर भी सम्बोधित किया जाता है । गोपीजन प्रेम का आश्रय है और श्री कृष्ण प्रेम के विषय हैं । गोपियों का अप्राकृत दिव्य भाव ही परब्रह्म में सुखेच्छा उत्पन्न कर देता है । प्रेम का महान् उच्च भाव ही उन पूर्ण काम में कामना, नित्य तृप्त में अतृप्ति, क्रियाहीन भ्रम में क्रिया और आनन्दमय में आनन्द को वासना जाग्रत कर देता है । अर्थात् ही यह सुखेच्छा, कामना, अतृप्ति जड़ इन्द्रिय जन्य नहीं है, इस मर्त्यलोक की मायामयी वस्तु नहीं है क्योंकि वह दिव्य आनन्द श्री कृष्ण और दिव्य प्रेम स्या श्रीराधा अभिन्न है<sup>2</sup>

1- श्री मद्वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह - प्रेम तत्व तथा राधातत्त्व-पृ0254

2- श्री राधामाधव चिंतन- हनुमान प्रसाद पौददार पृ0 12

श्री राधा के साथ अपने स्कात्मता के सम्बन्ध में श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है:-

यथात्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोधुवम् ।

यथाक्षीरे च धाक्यं यथाग्नौ दाहिका सति ॥

यथा पृथिव्याग्निश्च तथाहं त्वमि संततम् ॥<sup>1</sup>

हे राधा, जो तुम हो वही मैं हूँ, हम दोनों में किंचित् भी भेद नहीं है । जैसे दूध में सफेदी, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथिवी में गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदा तुम में रहता हूँ ।

प्रेम मार्गी भक्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने बुद्धि के अनुसार तन मन और वचन से होने वाली अपनी प्रत्येक चेष्टा को श्री कृष्ण सुख के निमित्त होकरता है । जब जब मन के प्रतिकूल स्थिति बनती है तो उसे वह श्री कृष्ण सुखेच्छा जनित स्थिति मान कर परम सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार का मन्स्तोष करते करते प्रेमी भक्त का मन केवल श्री कृष्ण सुख काम की अनन्यता पर पहुँच जाता है और तब उसे श्री कृष्ण की वास्तविक इच्छा का परिज्ञान होने लगता है । अतः सुख दुःख दोनों को श्री कृष्ण की इच्छा ही मानना चाहिये और उसी में आनन्द मग्न रहना चाहिये । इस संदर्भ में श्री राधा जी का उद्धव जी से कहा गया ये वचन बहुत सार्थक प्रतीत होता है । वे कहती हैं :-

"हे उद्धव, यद्यपि श्री कृष्ण के गोष्ठ में पधारने से हमें बड़ा सुख होता, तथापि यदि इसमें उनकी तनिक भी क्षति हो तो वे यहाँ कभी न आएँ । दूसरी यद्यपि उनके मथुरा नगरी से यहाँ न आने से हमें भारी पीड़ा होती है फिर भी यदि इससे उनके चित्त में सुख का उदय होता हो वे सदा वहीं निवास करें"<sup>2</sup> तत्पर्य यह कि जिसमें श्रीकृष्ण की सुखानुभूति है वही हमारे वास्तविक सुख का कारण है । चैतन्य चरितामृत में भी इस संदर्भ में भक्त के लिए यही आज्ञा की गई है:-

1- ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण ऋषि 14/58/59

2- स्यान्न सौख्यं यदपि क्लवद गोष्ठं घाते मुकुन्दे-

..... श्री मदभागवत् 10-47

आत्म सुख हेतु गोपी ना करे विचार, कृष्ण सुख हेतु करे सब व्यवहार  
कृष्ण बिना और सब करि परित्याग, कृष्ण सुख हेतु करे शुद्ध अनुराग ॥<sup>1</sup>

श्री राधा इन गोपीजन की सर्व शिरोमणि है । गोपियाँ उनके काम  
व्यह सुभा हैं । गोपियों का परम आदर्श और परम सेव्य श्री राधा में निहित  
है । श्री राधा स्नान दर्पण में श्री कृष्ण का पूर्ण दर्शन प्राप्त होता है और उस  
दर्शन को श्री कृष्ण स्वयं करते हैं ।

श्री राधा का श्री कृष्ण के प्रति जो प्रेम है उसे 'महाभाव' कहा गया है ।  
प्रेम की यह सर्वोत्कृष्ट स्थिति है । प्रेम की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि  
प्रेम ध्वंस रहित है, ध्वंस का कारण विद्यमान रहते हुए भी जो ध्वंस नहीं होता,  
जो कमी सूकता, घटता और मिटता नहीं, वरन् प्रतीक्षण बढ़ता रहता है उसे  
'प्रेम' कहा जाता है । प्रेम प्रगाढ़ होते होते क्रमशः स्नेह, मान, प्रणाम, राग  
अनुराग, भाव और महाभाव का स्वस्म प्राप्त करता है । शान्त, दास्य, सख्य,  
वात्सल्य और मधुरा रति में उत्तरोत्तर पूर्णता और उत्कृष्टता है । माधुर्य रति  
अत्युत्कृष्ट है, इसमें अनुराग की विशेष वृद्धि होती है । यही अनुराग प्रगाढ़  
होकर भाव और महाभाव बन जाता है । जैसे माधुर्य रति में शान्त, दास्य, सख्य  
वात्सल्य चारों रतियों का समावेश रहता है वैसे ही महाभाव में स्नेह, मान,  
<sup>अनुराग</sup> प्रणाम, राग, अनुराग और भाव सम्मिलित रहते हैं ।

हृदय में जब राग का उदय हो जाता है तब श्री कृष्ण को प्राप्त करने की  
सम्भावना होती है और असीम और भयंकर से भयंकर दुःख में भी सुख की प्रतीति  
होती है । तीव्र प्रेम पिपासा के कारण दृष्ट वस्तु में होने वाली परम विष्टता  
का नाम ही 'राग' है इसी की परिपक्वता को 'अनुराग' कहा जाता है । अनुराग  
में श्री कृष्ण का स्नान प्रतिक्षण नया नया दिखाई देता है ।<sup>1</sup> जितना ही देखा और

1- प्यारी जु, जब जब देखीं तेरी मुख, तब तक नयौ नयौ लागत  
ऐसी भ्रम होत, मैं कबहुं देखीं न री, दुति को दुतिलेखनी न कगत ।

जितनी अधिक चर्चा की जाती है अनुराग उतना ही बढ़ता है और उतनी ही रूप की नव-नवस्पर्शा बढ़ती चली जाती है । श्याम सुंदर में नित्य नव सौंदर्य का दर्शन करने वाली गोपी की अनुभूति है -

सखी री यह अनुभव की बात ।

प्रतिपल दीसत नित नव सुंदर, नित नव मधुर लखात ॥

किन किन बढ़त रूप गुन माधुरि, किन किन नूतन रंग ।

किन किन नित नव आनंद धारा, किन किन नई उमंग ॥

नित नव सुकुमारता मनोहर, अंग अंग प्रति राजै ।

नित नव अलकनि की कवि निरखत, अलिकुल नित नव लजै ॥

नित नव असनाई अधरनि की, नित नूतन मुसक्यानि ।

नित नूतन रस सुधा-प्रवाहिनि मधु मुरली की तान ॥

नित नूतन तात्पर्य ललित लावण्य नित्य नव विकसै ।

नित नव आभा विविध वरन की पिय के तनु तें निकसै ॥

कहुवै होत न बासी कब-हुं, नित नूतन रस बरसत ।

देखत देखत जनम सिरान्यो, तरु नैन नित तरसत ॥

अनुराग जब अपनी पूर्ण परिणिति या निस्सीयता की ओर अग्रसर होता है तो उसकी भाव संज्ञा होती है । भाव की पराकाष्ठा ही महा भाव है । महाभाव की प्रतीति श्री कृष्णभगवान् की असीम कृपा से होती है और जब उसका उदय हो जाता है तो सब सुख के संकीर्ण बंधन सदा के लिए विनष्ट हो जाते हैं । निज-सम्बन्ध परम अनुराग मय होकर सार्वभौम स्वस्व ले लेता है । महाभाव की स्तु और अधिस्तु दो अवस्थाएँ रसिकाचार्यों ने स्वीकार की हैं । स्तु महाभाव में सात्त्विक भाव उद्दीप्त हो उठते हैं । इसमें गोपी प्रेम की अभिव्यक्ति होती है । कैसे यह भाव श्री कृष्ण की पटरानियों को भी अलस है । क्योंकि पटरानी पन का अहं इस परम तदात्म्य तक कैसे पहुँचने देगा ।

स्टु भाव सश्लिष्ट अनुभावों से सात्विक भाव एक विशिष्ट दशा को प्राप्त हो जाते हैं । इस दशा में अधिस्टु महाभाव कहा गया है । इस अधिस्टु महाभाव की घनीभूत प्रत्यक्ष मूर्ति श्री राधा हैं । श्री राधा के प्रेम का नाम ही अधिस्टु महाभाव है । प्रेम की इसमहादशा में श्री कृष्ण के मिलन और उनके विरह की एक साथ संवेदना होती है । उसमें सुख और दुःख अतुलनीय रूप में साथ साथ उदित होते हैं और तिरोहित भी होते हैं । यह परम कौतूहलपूर्ण परम आनंद वैचित्र्य समन्वित अवस्था है जिसका लक्ष्मी करोड़ों जीवात्माओं में से कब किसी जीवात्मा को अनुभव होता है ।

अधिस्टु महाभाव को पुनः 'मादन' और 'मोदन' दो प्रेमावस्थाओं में विभक्त किया गया है । 'मादन' महाभाव श्री कृष्ण की अनन्य प्रेमवृत्ता श्री राधा जी की ही एक मात्र सम्पत्ति है क्योंकि इसमें भगवान् की ह्लादिनी शक्ति की पूर्ण महनीयता की परिव्याप्ति होती है । इसमें वे (श्री राधारानी) नित्य निर्विधि अनन्य मिलनानंद का अनुभव करती हैं । श्री राधा की विरह व्याकुल स्थिति को 'मोदन' या 'मोहन' कहा जाता है । इसमें दिव्योन्यास हो जाता है ।<sup>1</sup> श्री कृष्ण विरह की इस परम विरह पूर्ण अवस्था में वही भाव सर्व प्रधान होकर विरही को सञ्ज्ञा शून्य स्थिति में पहुँचा देता है जिसमें एक मति, एक धृति, एक लय, एक राग, एक प्राण और केवल एक देह भावना ही प्रधान होती है । रसिकों के भाव साम्राज्य की परंपरा में महाप्रभु चैतन्य देव का राधा भाव सम्बन्धी केवल एक ही अलौकिक उदाहरण है । कहा जाता है कि वे अपने विरह प्रेम की अतिशयता में मोदन भाव को प्राप्त हुए थे । उनके शरीर में प्रेम के सभी भाव क्रमशः धीरे-2 प्रस्फुटित हुए । यदि ये भाव एक साथ ही उदित हुए होते तो उनका शरीर अवश्य फट जाता क्योंकि किसी भी प्राणी के शरीर में इन भावों के वेग को एक साथ सहन करने की सामर्थ्य नहीं होती । गया में जब से उन्होंने बाल लम्बधारी भगवान् श्री कृष्ण

के दर्शन किये वे उनके सम्मिलन के लिए निरंतर सदन करते रहते । श्री प्रबोधानंद ने लिखा है<sup>1</sup> । 'श्री गौर सुंदर अपने निरंतर के नयन जल से दोनों गठस्थलों को पाण्डु रंग के बनाते हुए, प्रतीक्षण दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए और कल्ला स्वर से हा । हा । शब्द काके जोरों से स्तन करते हुए किसी ब्रज विरहिणी के भाव में सदा निमग्न रहने लगे ।

मधुर भाव में राधा भाव सर्वोत्कृष्ट है। सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण भाव और अनुभाव राधा भाव में ही जाकर परिसमाप्त हो जाते हैं, इस कारण अपने जीवन के अन्तिम 12 वर्षों में चैतन्य महाप्रभु अपने को राधा मान कर ही श्री कृष्ण के विरह में तड़पते रहे । वे राधा भाव में भावान्वित होकर उसी भाव से सदा अपने को राधा ही समझते थे, अतः उनके शरीर में दिव्योन्माद प्रकट होता था । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । अधिस्तु भाव में दिव्योन्माद प्रलाप होता ही है ।<sup>2</sup> इसलिए अब उनकी सभी क्रियाएँ उसी विरहिणी की भाँति होती थीं । अपनी इस विरह मग्नता में उन्हें अपने शरीर की तनिक भी सुख बुध नहीं रहती थी । इस संदर्भ में पुरी की में जगन्नाथ जी के दर्शन करते समय की एक घटना लोक प्रसिद्ध है । चैतन्य चरितामृत में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि 'महाप्रभु गच्छ स्तम्भ के सहारे निरंतर घंटों तक झड़े झड़े दर्शन करते रहते थे । उनके नेत्रों से जल की दो धाराएँ बराबर कलती रहती । एक दिन प्रभु ने जगन्नाथ जी के सिंहासन पर उन मुरली मनोहर के दर्शन किए । वे उनकी

- 
- 1- सिंचन सिंचन नयन पयसा पाण्डु गण्डस्थलान्तं  
मुज्जन मुज्जन प्रति मुहुरहो दीर्घनिःश्वासजतिम् ।  
उच्चैः क्रन्दन कल्ला कल्लादीर्घोर्ण हा हेति रावो  
गौरः कोऽपि ब्रजविरहिणी भाव मग्नश्चकास्ति ।।

—प्रबोधानंद, श्री चैतन्यचरितावली पृ० 151 भा० 5

- 2- राधिकार भावे प्रभुर सदा अधिमान  
सेइ भावे, आपनके हय राधा जान ।  
दिव्योन्माद ऐददे हय, कि इहा विस्मय ?  
अधिस्तु भावे दिव्योन्माद - प्रलाप हय ।

— चैतन्य चरितावली भा० 5 पृ० 153



स्व माधुरी का पान कर रहे थे कि एक वृद्धा माई जगन्नाथ जी के दर्शन न पाने से गस्सू स्तम्भ पर चढ़कर प्रभु के कंधे पर पैर रखकर दर्शन करने लगी । प्रभु के भक्त गोविन्द ने ऐसा करने से निषेध किया । इस पर प्रभु ने संकेत से कहा — यह आदि शक्ति माया है, इसके दर्शन सुख में विघ्न मत डालो और वे उसी भाँति सुस्थिर एकान्त मुद्रा में तन्मय बने रहे । वे फिर फटन करते और उन्हें क्रमशः जगन्नाथ जी, कुस्क्षेत्र में अपने पारिवारिक राधा एवं गोपिका सम्मिलन की घटनावलियों की स्मृति अनुभूति होने लगी । तदनंतर राधा भाव में वही उन्माद वही वैक्ली, वही विरह वेदना उन्हें व्यथित करने लगी । किसी के परितोष कराने का कोई परिणाम न निकला । प्रभु अविश में प्रलाप करने लगे 'हाय ! श्याम ! तुम किधर गए ? मुझ दुःखिनी अब्बा को मंझधार में ही छोड़ गए । हाय ! मेरे भाग्य को धिक्कार है, जो अपने प्राणबल्लभ को पाकर भी मैंने फिर गंवा दिया । अब कहाँ जाऊँ ? कैसे करूँ ? किससे कहूँ ? कोई सुनने वाला भी तो नहीं ?" ।

चैतन्य महाप्रभु के राधा भाव के इस प्रकार अनुमयन करने का मूल कारण यह है कि श्री राधा का दुर्लभ प्रेम श्री कृष्ण की अप्रतिय माधुर्य राशि को सर्व तो भावे न केवल ग्रहण ही नहीं करता वरन् उस माधुर्य को और श्री विशेष स्व से उज्ज्वल तथा अनवरत उज्ज्वलतर करता रहता है । श्री कृष्ण के नित्यनवीनत्व की प्रकाश भूमि है उनके प्रति श्री राधा की नित्य बढ़ती हुई प्रेमोत्कंठा । उनका प्रेम विभु होकर भी नित्य <sup>नवीन</sup> ~~नूतन~~ है । श्री कृष्ण का सानिध्य ही श्री राधा प्रेम की वर्धनशीलता है और श्री राधा का सानिध्य ही श्री कृष्ण की मधुरिमा की नित्य नवीनता है । उनके इस महाभाव की लीला अनन्त काल तक चलती ही रहती है जिसमें श्री कृष्ण की मधुरिमा और राधा की उत्कंठा दोनों की असीमता और अनन्तता का वारापार नहीं है । श्री राधारानी प्राणधार श्री कृष्ण की माधुरी

का सम्पूर्ण रूप से नित्य निरंतर आस्वादन करती रहती है तो भी उस माधुर्य का अन्त नहीं आता, वरन् वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है इस माधुर्य आस्वादन से श्री राधा की कभी तृप्ति नहीं होती वरन् उनकी पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है । श्री राधा श्री कृष्ण की अभिन्न स्वस्मा है । भगवान् का आनन्द स्वस्म ही श्री राधा के रूप में प्रत्यक्ष दर्शित है । श्री राधा और श्री कृष्ण नित्य और अभिन्न हैं । श्री राधा श्री कृष्ण की शक्ति है । यह शक्ति ही उन शक्तिमान की आत्मा है । अतः समस्त भावावली और रसलता पोहन का मूलमंत्र आराध्य के प्रति तादात्म्य का प्रयास उनके वियोग में विचित्र तड़पन और अनुराग की पूर्ण परिणति अथवा निस्सीमता है । राधा भाव में यह विरहीत्कृष्ण अतिशयता पर पहुँच जाती है और श्री कृष्ण सम्मिलन की आतुरता में प्राण आकण्ठ होकर उन्हीं से डोर लग जाती है । यही इस भाव की उत्कृष्टता है ।<sup>1</sup>

भक्त और भगवान् के प्रेम सम्बन्धों का विश्लेषण करने के फल स्वस्म रसिक साधना के पाठक की सहज अनुभूति होती है कि भावानिध इन्द्रियों और अन्तःकरण की एकाग्रता से ही प्रिया प्रियतम के सौंदर्य के दर्शन होते हैं । और वह मानसिक सिद्ध रसिक-भक्त प्रिया प्रियतम तथा उनकी सेवा में तल्लीन सभी सहचरियों के वचनमृत सुनता है । उनके अलौकिक शृंगार की सुंदर कटा को हृदयमय करता है, उनकी पुष्पशैया और सुरभि समन्वित हारों के सुवास के सौरभ का आनंद लेता है जिससे उसके मन-इन्द्रिय और प्राणों में रसमयी सेवा का भाव बस जाता है अर्थात् उसको सक्षात् दिव्य प्राप्त होकर वह समय समय की सेवा में पहुँच जाता है । इस निरोध दशा में निमग्न हुआ उसका मन लौकिक (भौतिक शरीर) इन्द्रियों से अलग हो जाता है और उसका सम्बन्ध अलौकिक श्री प्रिया प्रियतम की दिव्य एवं अलौकिक अप्राकृत लीलाओं से मुड़ जाता है । उसे प्रेमोत्सास मयी लीला परम्परा का ही अनुभव होने लगता है ।

प्रिया प्रियतम की इस लीला परम्परा में निकुंज भाव की भावना का रस अत्यन्त उत्कृष्ट है । उससे परमानन्दोत्साह में प्रवेश होता है । हृदय की ग्रंथियों और समस्त संशयों का विनाश होकर समस्त भौतिक क्रियाएँ लोक वाहक हो जाती हैं । उपासक उस दशा में रसात्मक श्यामा श्याम का इस प्रकार रस दर्शन करता है मानो उसको सर्वथा पान करके ही छोड़ेगा । उनके अभंगयश अभंगयश भान, रहस्य लीला रसपान, नाममृत के नित्य निरंतर सेवक, प्रेम की प्रखरता के साथ नाम स्म के प्रेमासव का स्थिर छुमार और कीर्तन, चिंतन एवं योग समाधि से समस्त विषयों का स्फुरण शान्त हो जाता है । वैखरी वाणी में नाम का अभ्यास करने से मध्यमा, पश्यन्ती और परा सभी में नाम की कान्ति व्याप्ति हो जाती है और अपने ही शरीर में स्वतः ही धाम धामी आदि का प्रादुर्भाव होता है । नाम का प्रेमी नाम के ही प्रभाव से स्वयं प्रेम रूप होकर प्रेम सौंदर्यमय दिव्य दम्पति की सेवा करता है और वह स्वयं ही कृन्दावन का अति रमणीय और मृदुल भूमि बन कर श्यामा श्याम के चरणाविंद का चुम्बन करता है । उस समय साधक, साध्य, साधन, और समस्त अंतरंग और बाह्य उपादान एकाकार हो जाते हैं । श्री कृन्दावन बिहारी-बिहारिणी, कृन्दावन की पावन भूमि, कलकल निम्मानिदी कलन्दिजा, सहचरी कृन्द और उनके सेवा उपादान, प्रिया प्रियतम का काम कला लावण्य, प्रणय कोप से टेढ़े भौंहें, माधुर्यमयी मुसकान सब उसी के स्वस्म हैं । नीवी मोचन, कलह, उन्मुक्त क्रोधा, क्षण क्षण की विक्रान्ता, क्षण क्षण की चेतनता सब वही है । प्यास भी वही और पानी भी वही । परस्पर का प्रेम यंत्रणा श्रयजलकण पीछना, और पीछा झलना, ऋक्षत, अधर दर्शन, चुम्बन, आलिंगन, गुजपाश बंधन, केशों के बद्धा कपील आच्छादन यह सब रसिक का ही आत्म स्वस्म है जो अपने आपको लीलोपयोगी रूप में ढाल कर रस की वृद्धि करता रहता है । सखियाँ आत्म भाव से उनकी सेवा में निरत हैं क्योंकि आत्मा ही सर्वातिशायी प्रेम का आस्पद है । जहाँ आत्मा का संपूर्ण सुख है वहीं प्रिया प्रियतम श्री राधाकृष्ण का आनंद है । जहाँ उनका आनंद है वहीं सखियों का आनंद है । युगल का अनुराग ही सखियों के सीमन्त का सिंदूर है । वहाँ अपने परायों का भेद नहीं रहता । इस अभेद में तत् सुख स्वसुख हो जाता है ।

1- श्री राधा सुधा निधि में निकुंज लीलाओं युक्त भावनाओं का चिंतन  
और भावना सगर — गो० चतुरशिरोमणि पृष्ठ 13

- : पंचम अध्याय : -  
 ~~~~~

लीला, भेद प्रभेद, वैशिष्ट्य और लीला प्रवेश  
 =====

भगवत् साधना में प्रभु की लीला का विशेष महत्व प्रतिपादित हुआ है । 'लीला' का सामान्य अर्थ क्रीड़ा अथवा कौतुक पूर्ण खेल है । यह आनंद से सर्वथा ओत प्रीत है । लीला का प्रयोजन लीला से है<sup>1</sup> अर्थात् लीला ही अपना साध्य है । वही साधन वही उस साधन की परिणति है । विष्णु पुराण में कहा गया है 'क्रीडतो बालक्सेयैव क्रीडा तस्य निशामय' अर्थात् बालक जैसा अपने स्वभाव से खेल के व्याज से किसी वस्तु को तोड़ता भी है, बनाता भी है, उसका उसमें कोई विशेष प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार इस संसार का सृजन और उसका संहार ब्रह्म की क्रीड़ा मात्र है । यह लीला नित्य प्रवर्तमान है, उसका न आदि है न अन्त । इसे ही भगवान् की नित्य लीला कहा गया है जिसके दर्शन का सब किसी को अधिकार नहीं है । किसी विशिष्ट समय और विशिष्ट अवस्था में उन प्रभुके अनुग्रह मात्र से किसी किसी को इस लीलादर्शन का अधिकार प्राप्त होता है । लीला प्रवेश विशेष साधना और प्रभु की अहेतुकी कृपा का परिणाम मानना चाहिये ।<sup>2</sup>

भारतीय विचारक लीला को क्रीड़ा मात्र मानते हुए भी उसे एक दार्शनिक संप्रत्यय, (Concept ), एक धार्मिक मिथ (Myth ) और साहित्यिक स्मक की संज्ञा देते हैं । एक वैज्ञानिक प्रतीक के रूप में भी 'लीला' शब्द को प्रयुक्त किया जाता है ।<sup>3</sup> पाचिरात्र संहिता में संभवतया सबसे पहली बार इन अर्थों में लीला शब्द का प्रयोग हुआ है । तदनन्तर वादरायण ने ब्रह्म सूत्र में 'लोकवतु लीला कैक्यम्' कह कर उसे एक दार्शनिक धार्मिक और वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित किया । ब्रह्मसूत्र के व्याख्याकार श्री निम्बार्क, शंकर, रामानुज, क्लेश, मध्व आदि ने अपने अपने कार्य कारण सिद्धान्तके आधार पर लीलावाद को मान्यता

1- नहि लीलाया किंचित् प्रयोजन मस्ति । लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । अणुभाष्य

2- 1-33

2- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय-भूमि-का पृष्ठ 2 ले0 डा0 गोपीनथ कविराज

3- लीलातत्त्व मीमांसा - डा0 सीमलाल पाण्डेय ब्रजलीला अंक- पृष्ठ 9 सर्वेश्वर वृन्दावन

प्रदान की और अपनी भाष्य माला में लीला के सम्बन्ध में कतिपय गूढ़ प्रश्न प्रस्तुत किये जैसे क्या लीला भगवान् की सकाकी क्रीड़ा मात्र है ? अथवा उसमें अन्य तत्त्वों का सहयोग भी अपेक्षित है ? क्या वह उनका किसी अन्य के साथ रमण है अथवा लीला क्रीड़ा और रमण दोनों का सम्मिश्रण है ? इन प्रश्नों के समाधान में प्रौढ पौराणिक विश्लेषण और साहित्यिक मतवादों के रूप में नित्य बिहार, कुंज लीला, निकुंज लीला, ब्रज लीला आदि की चर्चा चली जिनके आधार पर लीलाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण करने के प्रयास किये गए । उसके अनेक भेद विभेद निश्चित किए गए । लीला के इस विकास क्रम में उस लीलामय से लीला का, महत्त्व से प्रक्रिया का और मूलतत्त्व से विकास का अधिक महत्व प्रतिपादित हुआ ।

सिद्धान्त के रूप में लीला यथार्थ और मायावाद का समन्वय है । जब तक खिलाड़ी खेल में अनुरक्त है तब तक लीला (खेल) के समस्त उपादान संगृहीत रहते हैं । लीला मय उनके माध्यम से चतुर्दिक अनन्द का संचार करता है परन्तु इस क्रीड़ा संचार का समस्त ताना बना - उसके समस्त नियामक और विस्तारक सूत्र उस लीलाधर की अनुरक्ति पर निर्भर रहते हैं वहीं तक लीला यथार्थ है । लीला के उपादान अर्थात् सृष्टि का क्रम उस लीलाधर के प्रवृत्ति - उन्मेष से गतिमान होकर उसे समस्त क्रीड़ा में प्रभावी योगदान करता देखा जाता है उस उन्मेष के बिना वह सर्वथा निर्जिव और असत्य (अयथार्थ है) है । यही लीला का रहस्य है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् की लीला ही है । परम पिता कोतुक बुद्धि से नित्य लीला का उपक्रम करते हैं उसके परिणाम स्वरूप सृष्टि का संधान होता है और मानव उस लीलामय की उस लीला में अपना अस्तित्व स्थिर करने का प्रयास करता है । उसी क्रीड़ा क्रम में अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है ।

ब्रह्म लीलामय है । उसमें तथा उसके लीला में सर्वथा अभेद रहता है । जैसे किसी व्यक्ति के कार्यों में उसके व्यक्तित्व की छाप हर प्रकार से दृष्टिगत होती है उसी प्रकार परमात्मा की द्रवीभूत आत्मा ही लीला रूप में हमें दर्शन देती है ।

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि, तेजोष्णमय एवं प्रकाशमय सूर्यताप एवं प्रकाश की अनुभूति कराते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से लीला की ओर लीला से ब्रह्म की अनुभूति होती है । लीला से विलग होकर ब्रह्म का दर्शन असंभव है । कभी भी लीला शक्ति उनसे पृथक् नहीं होती, इस कारण भगवान् की लीला त्रिकाल में अविराम प्रवाहित होती रहती है । परब्रह्म की इन ललित लीलाओं के क्षण क्षण नवीन दिव्यरस का जिन्होंने पान करने का सौभाग्य प्राप्त किया है वे महाभाग्य हैं ।

लीला का उद्देश्य :-  
=====

'लीला तु स्वानन्द रसस्वादनम्' तदर्पित चेतन के स्वानन्द रसस्वाद के निमित्त लीला साधन होता है । परब्रह्म परमात्मा की प्रत्येक लीला का उद्देश्य चेतन को आनन्द लाभ कराना ही है । गुप्त और प्रकट ऐश्वर्य एवं माधुर्य लीलाओं के क्रमशः दो भेदों के माध्यम से दो भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति की ओर भागवत-कार भगवान् वेदव्यास ने संकेत किया है। उनका कथन है कि आत्माराम श्री राम के मर्त्यवितार धारण करने का उद्देश्य केवल रक्षकों का वध करना ही नहीं था । उनका मुख्य प्रयोजन तो 'मर्त्य शिक्षण' अर्थात् मानवों को उनके जीवन के चरम लक्ष्य की ओर प्रेरणा देकर अग्रसर करना था । इस प्रकार उनकी प्रकट या पार्थिव लीला मायाबद्ध जीवों की शिक्षा देने के निमित्त तथा दिव्य, गुप्त या मधुर लीला उन्हें स्वस्मानन्द या नित्य कैर्क्य-सुख प्रदान करने के निमित्त होती है ।<sup>1</sup>

समष्टि रूप में विचार करने पर दोनों प्रकार की लीलाओं का उद्देश्य मायाबद्ध वहिरंग जीव को प्रभु की अंतरंग भूमि में प्रवेश कराना है । परन्तु जीव अहंकार एवं स्वार्थबुद्धि होने के कारण उस आनन्द की उपलब्धि नहीं कर सकता । अतः लीला दर्शन, लीला चिंतन और लीला प्रवेश के साधनों के द्वारा जीव निर्मल होता है और भगवान् की भक्ति के परमानन्द-सिंधु में निमज्जित हो जाता है । उसका 'अहं',

-----  
1- मर्त्यवितारस्त्वह मर्त्य शिक्षण,

रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।

कुतोऽन्यथा स्यादमतः स्व, आत्मनः

सीता कृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

—श्रीमद्भागवत 5/19/5

ममत्व और सांसारिक मोहपाश कूट जाता है । लीला का यही मुख्य प्रयोजन है ।<sup>1</sup>

लीला के भेद या प्रकार :-

=====

भगवान् के अनन्त रूप और उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं । इसी प्रकार उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं ।<sup>2</sup> भक्त उनकी लीलाओं का वारपार नहीं पा सकते क्योंकि भक्तों का ज्ञान सीमित और भगवान् का लीला विस्तार अपरिमित है । फिर भी जीव भगवत् लीला सानिध्य का प्रयास करता है । यही प्रयास उसकी साधना का चरम लक्ष्य है । उपासकों ने अपनी बुद्धि सामर्थ्य और साधना के अनुसार भगवान् की लीलाओं और उनके रूपों का दर्शन किया है और अपनी अपनी अनुभूति के अनुसार उनका वर्णन भी किया है । जैसे भी विभिन्न व्यक्ति क्षेत्रों के अनुसार उनकी लीलाओं के भिन्न रूप होते हैं । इनमें वे ही लीलाएँ सर्वोत्कृष्ट मानी जायेंगी जिनमें भगवान् की शक्तियों का माध्यम क्रमशः कम होता हुआ उनसे परम नैकट्य और आत्मवत् सम्बन्ध का संस्थापन होता है । उनके विशुद्ध प्रेम माधुर्यमय रूप का प्रकाशन और विस्तार भक्त के चिदानन्द का कारण बनता है । भगवान् की प्रत्येक लीला में भक्त को आनन्दरस की प्राप्ति होती है इस कारण आनन्द की सामान्य कोटियों के प्रकाशन और उसके सम्पूर्ण रूप की अभिव्यक्ति के आधार पर भगवत् लीलाओं के अनेक भेदोप-भेद किये गए हैं । गुण, प्रकाश और तत्त्व की दृष्टि में रख कर वैष्णव सम्प्रदाय के रसिक आचार्यों ने निम्न प्रमुख भेद किये हैं ।

- 1- गुण दृष्टि से लीला भेद ।
- 2- तत्त्व दृष्टि से लीला भेद ।
- 3- प्रकाश दृष्टि से लीला भेद ।

1- गुण दृष्टि से लीला भेद :- गुणों की दृष्टि से लीला के निर्गुण लीला और

=====

1- श्री रामलीला - विलास- मानस केशरी श्री बाल्मीकि प्रसाद मिश्र पृष्ठ 20

अवध संदेश 'सीताराम लीला' विशेषांक ।

2- जित तित लेखों तुम परिपूरन आदि अनन्त अखण्ड ।

लीला प्रगट देव पुष्पीत्तम, व्यापक कोटि ब्रह्मण्ड ।

सुरसारावली बं0 683, अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

सगुण लीला दो भेद किये गए हैं । निर्गुण लीला धराधम गत होती है । इसे 'वास्तविक लीला' अथवा 'व्यावहारिक लीला' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है । वृहद् ब्रह्मसंहिता में इसे इन्हीं नामों से पुकारा गया है ।<sup>1</sup> - भगवत्लीला के आविर्भाव और तिरोभाव के कारण उनके सगुण और निर्गुण रूपों की सृष्टि होती है और वे गोलोक और वृन्दावन - साकेत आदि धामों में अपनी लीला का विस्तार करते हैं । जब उन प्रभु की संसारी जीवों पर कृपा दृष्टि होती है तो नित्य लीला के आकर्षण उन रसमार्गी प्राणियों के आनन्दवर्धन के निमित्त धराधम में अवतीर्ण होते हैं । उनकी इस लीला को सगुण लीला कहा जाता है ।

रसमार्गेण ये देवमीक्षन्ते परिशीलितुम् ।

तेषां भूमावपि निजं स्थानमाविष्कृतं मया ।

एकेन त्रिगुणं मायां तस्मान्निर्गमयन्वहः

बद्धानां सुखं भोगाय लीनानां प्रकृतौ पुरा ।

--बृ०ब्र०सं० 67

तत्त्व की दृष्टि से लीला के दो विभाग किये गए हैं यथा (1) तात्त्विकीया वास्तविक लीला और (2) व्यावहारिकी अथवा अतात्त्विकी लीला ।<sup>2</sup>

इनमें तात्त्विकी लीला नित्या और चैतन्य शक्ति रूपा है । उसका क्षेत्र नित्यधाम गोलोक अथवा साकेत है । इस लीला का आस्वादन नित्यमुक्त परिकर सर्व स्वयं ब्रह्म करता है । अतात्त्विकी लीला 'माया शक्ति' की कार्य रूपा है । इसी के द्वारा भगवान् असुरों की बुद्धि भ्रमित करते हैं । संसारी लोग इसका रहस्य नहीं जान पाते । सीताहरण और राम रावण युद्ध आदि लीलाएँ इसी श्रेणी में आती हैं । तत्त्वज्ञों की दृष्टि से वास्तव में सीता का हरण नहीं हुआ और न एक

1- निर्गुणायस्तु लीलायाश्च यद्यप्यन्तो न विद्यते ।

आविर्भावस्तिरोभाव दयास्ति केनापि हेतुना ।

गोलोक गोलोकद्वेत श्वेत दीपादि केलिवत् ।

नित्या सा सूक्ष्म रूपेण कल्पान्ते चापिवर्तते ।

ये जीवाः कृपया विष्णोः वीक्षिता सुरसत्तम ।

वसन्ति रसमार्गीयाः नित्यलीलाभिकक्षिणाः ॥ - वृ०ब्र०सं० पृष्ठ 66-67

2- रामतत्त्व प्रकाश - मधुराचार्य पृष्ठ 27।



तुच्छ राक्षस (रावण) के वध के लिए ब्रह्म द्वारा प्रयास की आवश्यकता थी । यह संसार को दिखाने मात्र की एक कोरा अभिनय मात्र था ।

प्रकाश की दृष्टि से लीला को प्रकट और अप्रकट दो भागों में विभाजित किया गया है । इन्हें आचार्यों ने 'प्रकट' और 'गुप्त' नाम भी दिये हैं । प्रकट लीला को किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने 'सगुण लीला' भी कहा है और 'प्रपञ्च गोचर लीला' कह कर भी सम्बोधित किया है । श्री मधुराचार्य जी ने अपने 'रामतत्व प्रकाश' नामक ग्रंथ में लिखा है कि युगल सरकार का नित्य लीला विहार उनके अवतार काल में भी प्रकाश भेद से चलता रहता है ।<sup>1</sup> जब यह लीला सांसारिक लोगों की दृष्टि से अगोचर हो जाती है तब अप्रकट और प्रत्यक्षा दर्शित होने पर प्रकट लीला कही जाती है ।

प्रेम रामायण का रसिकाचार्य स्वामी श्री रामहर्षणदास ने लीला के भेद विभेद की चर्चा करते हुए उनका 'अक्षर लीला' नामक एक भेद और स्वीकार किया है ।<sup>2</sup> अक्षर लीला ब्रह्म के हृदय में बीज रूप से प्रतिष्ठित रहती है । उसका आस्वादन केवल ब्रह्म ही करता है । लीला के उपर्युक्त 6 भेद भगवान् की प्राकृत और अप्राकृत लीलाओं के नामान्तर मात्र हैं । रसिक जन भगवान् की अप्राकृत लीलाओं के ही उपासक होते हैं अतः लीला साहित्य में प्राकृत लीलाओं का बहुत कम और अप्राकृत लीलाओं का विशद वर्णन हुआ है ।

राम भक्ति शास्त्रा के रसिक कवियों ने भगवान् की लीलाओं की विशद व्याख्या और उद्घापोह की है । इस क्रम में उन्होंने अपनेआराध्य की दिव्य लीलाओं का रस, काल, वय, स्थान आदि के आधार पर भी वर्गीकरण प्रस्तुत किया है ।

#### (1) रस के आधार पर लीलाओं का वर्गीकरण :-

भगवान् की लीलाओं में से कतिपय प्राकृत और विशेषतया अप्राकृत है ।

1- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय - डा० भगवती प्रसाद सिंह पृष्ठ 28 ।

2- अवध संदेश - सीतारामलीला विशेषांक पृष्ठ 23

प्राकृत लीलाओं में उनके ऐश्वर्य की प्रधानता होती है अप्राकृत में माधुर्य की इस प्रकार सभी लीलाएँ ऐश्वर्य और माधुर्य के अंतर्गत आ जाती हैं ।<sup>1</sup> भक्ति के शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य पाँचों रस इन्हीं से सीमाबद्ध हैं । इनमें क्रमशः ऐश्वर्य की न्यूनता और माधुर्य की अधिकता होती जाती है । ऐश्वर्य से सम्बन्धित लीलाएँ वहिरांग होती हैं उनका प्रदर्शन सबके समक्ष जैसे दास, विदूषक, शूत्य, सखा, स्नेही, प्रजाजन आदि के सामने होता है । वे उसमें सहयोगी होते हैं । अंतरांग लीलाएँ माधुर्य की प्रधानता होती हैं उसमें सखियाँ, किंकरियाँ मुख्य रूप से सहायिकाएँ होती हैं । भगवान् को अष्ट-यामलीला में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों का सम्मिश्रण रहता है । इसके कुछ कार्यक्लाप तो ऐश्वर्य प्रधान होते हैं और कुछ माधुर्य प्रधान । अतः आचार्यों ने उक्त लीला के सप्तयामों में माधुर्य की और एक याम में ऐश्वर्य की विशेषता का विधान स्वीकार किया है । अष्ट याम लीला भी रसगत लीला ही है परन्तु समय समय की समग लीलाओं और विभिन्न रस और भावों की सम्मिश्रित अनुभूति के परिणाम स्वस्य उसे एक स्वतंत्र लीला के रूप में स्वीकार किया गया है । रस भेद की दृष्टि से पाँच रस लीला का संक्षिप्त परिचय निम्न है ।

1- शांत लीला - प्रजाजन, नगरिक, मृत्युजन, कर्मचारी, शूभ्रेच्छु, अर्चक, किंकर आदि शांत लीला के भोक्ता हैं । श्री रामकी संध्या की राजसी ठाठ बाट से सखा और बंधुओं सहित सवारी निकलती है । उधर प्रातः और सन्ध्याकाल दोनों बार श्रीकृष्ण अपने बंधु बलराम और सखा आदि के सहित गोचारण की प्रस्थान करते हैं तथा लौट कर वन से वापिस आते हैं । उनका दर्शन पाकर पुरवासी कृतार्थ होते हैं । समग्र जन समूह, स्त्री पुरुष आदि उनका राज माधुर्य देखकर मुग्ध हैं । सभी उनका जय जयकार करते हैं, मंगल कामना करते हुए उनकी अभिवृद्धि के उपासक हैं ।

2- दास्य लीला -- इस लीला में दासों का विशेषाधिकार होता है । दासों में माली, सिपाही, पशुपक्षियों के पालक, पहरोदार प्रमुख हैं । राम कृष्ण इनके कार्यों का निरीक्षण कर उनके कार्य की सराहना करते हैं । श्री कृष्ण के प्रसंग में गोपालक, गोचारक, गोवत्स रक्षक विशेष प्रशंसा के पात्र हैं जिन्हें वे बार बार शावाशी देकर पुरस्कार आदि से प्रसन्न रखते हैं ।

3- सख्य लीला — के आश्रय सखाजन हैं । उनको प्रभु में दृढ़ विश्वास और उनके प्रति सच्ची प्रीति है । अत्यन्त न्यून वयस्क मधुर सखा, समवयस्क स्नेहे, नर्म पंथ मर्द और विट सख्य लीलाओं के आधार स्तम्भ हैं । श्री दामा, मनसुखा श्रीकृष्ण के विशेष प्रिय सखा हैं । ये उनका शृंगार करते हैं, होली बसंत खेलते हैं, गोचारण करते हैं, दधि का दान लेते हैं गोपीजन के साथ झिलवाड़ करते हैं ।

4- वात्सल्य लीला -- वात्सल्य लीला के आश्रय कौशल्या, सुमित्रा, यशोदादिक मातृजन, वृद्ध मंत्रीगण और वशिष्ठादिक गुरुगण आदि हैं । प्रातः श्री राम कृष्ण उनका चरण वंदन करते हैं और गुस्जनों की गोद में बैठ उनका आनंदवर्धन करते हैं । गुस्जनों के साथ उनका मध्याह्न काल का भोजन होता है । श्री कृष्ण लीला प्रसंग में हास परिहास, बाल चापल्य पूर्ण क्रेड़ादिक की विशेषता से गुस्जन विशेष प्रमुदित होते हैं । बार बार तृण तोरते हैं, क्लैया लेते हैं और गुप्त रूप से मुँह ढाँक कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् से मंगल कामना करते हैं ।

माधुर्य लीला -- माधुर्य लीला में प्रेम की प्रधानता होती है । यह प्रेम कान्ता भाव का होता है जिसमें भगवान् की स्वल्प भृता श्री सीता, राधा और उनकी अंश भृता सखियाँ सहचरी वर्ग माधुर्य आनन्द तरंगिणी की रसहिलोरी से आस्वादि होकर कृत कृत्य होती है । माधुर्य लीला में भी कभी कभी थोड़े ऐश्वर्य का सम्मिश्रण होता है । अतः माधुर्य लीला के इसी आधार पर ऐश्वर्य मिश्रित माधुर्य लीला और शुद्ध माधुर्य लीला दो भेद हो जाते हैं । अष्टयाम लीला भी माधुर्य लीला का एक अंग है परन्तु उसमें ऐश्वर्य का सम्मिश्रण रहता है अतः उसे शुद्ध माधुर्य लीला नहीं माना जा सकता ।

रस लीला प्रकरण में विशुद्ध माधुर्य भाव होता है । यद्यपि आचार्यों ने रसलीला-नूकरण को अष्टयाम लीला के अंतर्गत स्थान दिया है तथापि रस परिपाक के विचार से वह अन्य सभी लीलाओं से ऊँच है । आत्म समर्पण, वैक्य भाव की स्निग्धता और आनन्द उल्लास की दृष्टि से माधुर्य लीला को सभी लीलाओं से उत्कृष्ट ठहराया गया है ।

वय, काल और स्थान को आधार मान कर भी लीलाओं का वर्गीकरण हुआ है । यह निश्चित है कि वय काल और स्थान अपना निजी प्रभाव रखते हैं

और उनके कारण लीला विस्तार में कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियों का सूत्रपात होता है । यमुना पुलिन उसके ककार और करीलों में एक अपनी रमणीयता है । जीवन में उठती आयु का एक अजीब आनन्द है । काल के प्रभाव से वस्तुओं की कुसुमता सुन्दरता में परिणत हो जाती है और काल विक्षेप से सुन्दरता कुसुमता बन जाती है । अतः इन तत्त्वों का लीला विस्तार में सौन्दर्याभिवृद्धि की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है ।

वय गत भेद — वय क्रम से लीला के चार भेद हैं ।

- 1- बाल लीला — 5 वर्ष की आयु तक ।
- 2- पौर्ण्ड लीला — 5 वर्ष से 10 वर्ष की आयु तक ।
- 3- किशोर लीला — 10 से 15 वर्ष तक ।
- 4- यौवन लीला — 16 वर्ष ।

लीला में से चारों वय नित्य हैं । बाल से लेकर यौवन तक लीला का निरंतर विकास होता है जो एक सम्यक् प्रकार से गतिमान होता है । सोलह वर्ष की आयु षोडश कलाओं के पूर्ण प्रकाश की द्योतक है । चित् देह अपने भाव और आयु के अनुसार अपने इष्ट देव की पंच रसात्मिका लीला का ध्यान, भोग अथवा साक्षात्कार करता है । राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय के कवियों ने इन लीलाओं का सुंदर वर्णन किया है ।

बाल लीला — राम चरित मानस में काकभुशुण्डि जी कहते हैं —

इष्ट देव मय बालक रामा ।

शोभा बहुत कोटिशत कामा ॥<sup>1</sup>

1- रामचरित मानस - गो० तुलसदास उत्तर काण्ड दोहा 75 अ

अ०भा०विक्रम परिषद् कशी, संस्करण ।

पौगण्ड लीला - भये कुमार जवहिं सब भ्राता  
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।  
गुरु गृह पढ़न गए रघुआई ।  
अरुपकाल विद्या सब आई ॥<sup>1</sup>

किशोर लीला - विद्या विनय निपुन गुन शीला  
खेल हि खेल सकल नृप लीला<sup>2</sup>

यौवन लीला - आयसु मागि करहिं पुर काजा ।  
देखि चरित हारषइ मन राजा ॥  
जेहि विधि सुखी होइ पुर लोणा ।  
करहिं कृपानिधि सोइ संजोणा ॥<sup>3</sup>

रसिक सत श्री रामसखे जी ने अपने 'नित्य राघव मिलन' ग्रंथ में  
वय के आधार पर श्री राम की लीलाओं को 6 भागों में विभक्त किया है । यथा:-

1- बाल लीला 2- ब्याह लीला 3- रासलीला 4- वनलीला 5- रणलीला  
6- राजलीला । उन्होंने लिखा है :-

रामहिं की षट लीला सोहहिं, एक एक अति ही मन मोहहिं ।

बाल, ब्याह, अरु रास प्रधाना, बन, रन, राज बीच अरु नाना ।<sup>4</sup>

लीला का 'काल गत' वर्गीकरण - राज पुरुष और समाज के सम्प्रति उच्च स्तरीय  
परिवारों के दम्पतिजनों की दिनचर्या की एक निश्चित पद्धति की परंपरा समाज में

- 1- रामचरित मानस गो० तुलसीदास बाल काण्ड दोहा 204 अ०भा०विक्रम  
परिषद् काशी संस्करण
- 2- वही - वही - वही - वही
- 3- रामचरित मानस - गो० तुलसीदास बाल काण्ड दोहा सं० 205
- 4- नृत्य राघव मिलन - श्री रामसखे पृष्ठ 24

निरंतर चली आ रही है । उसमें समस्त दैनिक कार्यकलाप आदर्श रूप में समाविष्ट रहते हैं जो अन्य वर्गों के लिए अनुकरणीय होते हैं । भक्ति भावना के विकास क्रम में वैष्णव कवियों ने भगवान राम और श्रीकृष्ण की दैनिक चर्या के आदर्श चित्र प्रस्तुत किये हैं । जिन्हें 'अष्ट कालीन लीला' अथवा अष्टयाम नाम दिये गए हैं । प्रभु के केंद्रीय के अनुरागी भक्त उनके सेवक, सेविकाएँ, परिचारक और दासियाँ इन लीला कलाओं पर मुग्ध हैं । वे इन लीलाओं की आसक्ति में अपना जीवन धन्य मानते हैं और अपने प्रभु दम्पति पर बलिहारी जाते हैं ।

दिन रात की अवधि में अष्ट प्रहर होते हैं । एक एक प्रहर के अनुसार इन लीलाओं को आठ कालावधियों में विभाजित किया गया है । जिनका क्रम प्रातः उत्थापन से लेकर अर्ध रात्रि के पश्चात् शयन तक चलता है । राम भक्ति शाखा के आचार्यों ने इन अष्टकालीन लीलाओं का लीलाक्रम निम्न प्रकार रखा है यथा: -

- 1- उत्थापन लीला -- नित्य कृत्य, स्नान पर्यंत ।
- 2- शृंगार लीला -- आराध्य किशोरी किशोर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करना ।  
उनको शोभा प्रसाधनों से मुक्त करना ।
- 3- भोजन लीला -- कनक भवन में प्रिया समेत दिन में भोजन ।
- 4- शयन लीला -- भोजनोत्तर दिन के समय विश्राम करना ।
- 5- सभा लीला -- इसमें प्रभु अपने मंत्रीगण और राज कर्मचारियों से युक्त होकर शासन प्रबंध एवं न्यायादि कृत्य करने के निमित्त राजदरवार में विराज कर आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हैं ।
- 6- केलि लीला -- सभा, सहचरों और बंधुओं सहित श्री रामजी का बाल सुलभ केलि और मनोरंजन के उपादानों में रुचि पूर्वक सम्मिलित होना, वन विहार, अछोट, वाटिका निरीक्षण नगर फेरी तथा प्रमोद वन लीला और रास लीला इसके अंतर्गत आती हैं । प्रभु राम इन सबमें रुचि लेकर आश्रित जनों को तृप्त करते हैं ।

- 7- भोजन लीला - समस्त बंधुओं, सीताजी और विशिष्ट पारिवारिक और अनुचरों सहित मातृ सदन में श्री राम जी का भोजन करने की प्रस्तुत होना ।  
इससे माता एवं पारिवारियों की महत् सुख होता है । वे बहुत प्रसन्न होते हैं ।
- 8- शयन लीला - रात्रि में कनक भवन के अंतःपुर में भगवान् राम सीता का शयन करना ।

भगवान् श्री कृष्ण से सम्बन्धित समस्त लीलाओं का स्रोत श्रीमद्भागवत् है । उसी आधार पर श्री कृष्ण भक्ति के विकास क्रम में जब निम्बार्क, रू मध्व, क्लृप्त, चैतन्य, स्वामी हरिदास, ललित और राधाक्लृप्त आदि सम्प्रदायों का विकास हुआ तो उन्होंने श्री राधाकृष्ण के लीलाविकास का अभूत पूर्व उत्साह और रस पेशलता से वर्णन किया । इसीक्रम में अन्य लीलाओं के साथ अष्ट कालीन लीलाओं के अनेक सजीव वर्णन दिए गए । सभी का मूल स्रोत वही श्रीमद् भागवत का दशम स्कंध ही है । इन सम्प्रदायाचार्यों ने अष्ट कालों की निम्न प्रकार गणना कराई है ।<sup>1</sup> यथा :-

1- निशान्त 2- प्रतिः 3- पूर्वान्ह 4- मध्यान्ह 5- अपरान्ह 6- सायं 7- प्रदीप एवं 8- रात्रि । इनमें मध्यान्ह और रात्रि का काल मान 12 घड़ी और शेष का 6 घड़ी माना गया है । अष्ट याम लीलाओं में प्रायः निम्न लीलाओं का समावेश आवश्यक माना गया है ।

- 1- दामोदर लीला 2- वल्य लीला 3- ~~कल~~ विक्रयणी लीला 4- प्रति अनुग्रह लीला 5- माखनचोरी लीला 6- उराहनी लीला 7- क्लृप्तचरण लीला 8- वनभोजन लीला 9- गोचारण लीला 10- पूर्वनिर्गम लीला 11- वैष्णु गीत 12- युगल गीत 13- गोदोहनलीला 14- अभिसार 15- प्रथमरास 16- अन्तर्ध्यान लीला 17- निभृत निकुंज लीला 18- गोपिका गीत 19- श्री महारासलीला 20- जलकैलि 21- कुंज भंगादि लीला ।

1- अष्टकालीन नित्यलीला पृष्ठ 4 संकलन कर्ता श्री मधुसूदन नित्यानन्द भट्ट

अठबम्भा वृन्दावन ।

अष्टयामलीला के आधार श्लोकों की संख्या 322 है जो सभी श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध में समाविष्ट है । इन लीलाओं का विषय श्री कृष्ण चरितन्तर्गत अष्ट कालीन नित्य लीला है जिसका उपदेश देवर्षि श्री नारद जी ने मुनिवैदव्यास जी को दिया था और उन्हें आदेश किया 'समाधिनानुस्वरतादिवचेष्टितम्' कि चित्तवृत्ति का निरोध करके उस लीला का स्मरण करो । अष्ट कालीन लीला का अधिधेय भगवत् रति का उत्पादन है जिसके लिए अन्वय व्यतिरेक करके कहा गया है :-

'त्स्यत्सवत्सिना रजिन् हरि सर्वत्र सर्वदा ।

श्रीतव्य कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यः भगवान् ॥ १

जीव मात्र के लिए सर्वत्सिना रसिकों के चित्त को हरने वाले श्री हरि की लीला ही श्रवणीय, कीर्तनीय एवं स्मरणीय है । उससे भी यदि रागानुगा रति का उदय नहीं हुआ तो साधक का श्रम करना व्यर्थ है । इसी का उदय ही लीला का प्रयोजन है । पराभक्ति की प्राप्ति के अतिरिक्त हृदय रोग स्त्री कामना वासना का धीरे धीरे नष्ट होना इन लीलाओं का फल है ।<sup>2</sup> वास्तव में जीव मात्र पर अनुग्रह करने के निमित्त सच्चिदानन्दधनीभूत रस स्वल्प श्री कृदावन चन्द्र का प्राकट्य और उनकी नित्य लीलाओं का प्रादुर्भाव हुआ है । उनके गुण ही आत्माराम गणाकर्षी है और उनकी लीलाओं में मुक्त मुमुक्षु जन का ही अधिकार है । उनके ही मन की ये लीलाएँ आकर्षित करती हैं । उनकी दृष्टि से कृष्ण लीला ही भव रोग के औषधि है । संसार के कामोजन लोकवत् लीलाओं पर भी रीझ कर उन्हें मीठी मान कर आनंदित होते हैं परन्तु यह पशुबुद्धि ही माननी चाहिये । श्रवणीय पदार्थ संसार में दो ही हैं 'श्री कृष्ण कथा' अथवा श्री कृष्ण भक्तन की कथा । कहा गया है कि 'कि मन्ये रसदालापे रामुषी यदसदव्ययः' असद् आलाप में क्या रखा है उसके कारण तो आयु असद् रूप से विनष्ट होती है ।

1- श्रीमद्भागवत

2- 'भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं ।

वृद्धो मश्वपहिनी त्यचिरेणधोरः ॥



अष्टयामलीला का सभी सम्प्रदाय के आचार्यों और संतजनों ने वर्णन किया है । इसके दो रूप प्रत्यक्ष देखने में आते हैं ।

(1) 'निकुंज लीला' (2) 'निकुंज गोष्ठ लीला मिलित लीला'

इनमें निकुंज लीला उसी निकुंज परिवार को रससिक्त करती है जो एक तन, एक मन, एक वृत्ति एवं दृढ़ चेतना से प्रिया प्रियतम के लेलानुराग में आसक्त रहते हैं और जिन्हें उसके अतिरिक्त दोन दुनिया की ओर कुछ भी पुधबुध नहीं है, जिनके सम्बन्ध में निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री भट्ट जी ने 'नहिं जानत निशि भारे' की घोषणा की है अर्थात् जिनमें तल्लीनता की पराकाष्ठा है । निकुंज लीला की रससिक्तता को 'हृदवत्' कहा गया है अर्थात् जिस प्रकार सरोवर अपने हृदय (मध्यभाग) में सबसे अधिक सिक्तता रखती है और क्रमशः दूर भागों में सिंचाई का सधान नहीं करता उसी प्रकार निकुंज लीला में रस सिक्तता का संचार उसी परिवार में ही रहता है । 'निकुंज गोष्ठ मिलित लीला' में भगवान् समस्त ब्रज परिवार को रसाप्लावित करते हैं क्योंकि उसके सम्पादन में वे निभृत निकुंज से गोष्ठ में प्रवेश करते हैं और वहाँ के परिवारों को तृप्त करके पुनः निकुंज गमन द्वारा उनका निकुंज लीला में प्रवेश होता है अतः निकुंज और ब्रज दोनों परिवारों को ही 'निकुंज गोष्ठ मिलित लीला' की उपादेयता है । इस प्रकार 'अष्टयामभावना' लीलाओं का 'आकर' है । ये श्री राधा कृष्ण के स्वभाव से हमारा परिचय कराती हैं और उनकी अतिशय रसिकता एवं अति काव्यिकता की साक्षी हैं ।

(1) निशान्त लीला -- तीन घड़ी रात्रि अवशेष रहने के समय से ही प्रारम्भ हो जाती है । सबसे पहले लेलधिष्ठानत्री योगमया ने गोष्ठ लीला प्रसारण हेतु शीशा फैलाई । नन्द गोष्ठ के चारों ओर सरोवरों में लाल, नील, पीत कमल खिलने लगे और पक्षीगण चहचहाने लगे । ऐसी प्रतीति होने लगी कि मानों श्री कृन्दावन चंद्र को जगाने के निमित्त कन्दीजन विस्दावली गा रहे हैं । गोवत्स 'मां' 'मां' कर ग्वारिया लोगों का इ आह्वान करने लगे और 'दोहनी लैयो' बकड़ा पकड़ियो'

1- अष्टकालीन नित्य लीला - ले० श्री नित्यानन्द भट्ट पृष्ठ 8 (भूमिका भाग)

इस प्रकार सम्बोधनों द्वारा ग्वालिनी, ग्वालाबालकादिक का उच्च स्वर कर्ण गोचर होने लगा । ग्वालिनीयाँ अपने नित्य स्वाभावानुसार दधि मथन करने लगीं । श्री शुकदेव जी कहते हैं कि --

शैया से उठते ही गोपीगण अपने कोकिल कंठ से कमलदल लोचन राजकुमार श्री नन्दनन्दन के गुणानुवाद को गाने लगीं इस प्रकार कृष्ण गुणगान मिश्रित दधि-मथन के शब्द से दर्शों दिशाओं का अमंगल दूर होने लगा ।<sup>1</sup>

तब गोपीगण ने स्नान किया और दीपक जलाकर श्री रामकृष्ण की मंगल कामना के निमित्त देवताओं का पूजन कर दधि मथन प्रारंभ किया । सबके मन में यही वासना थी कि श्याम हमारे घर आवे । तदनन्तर दधि मथन का "धमार धमार" शब्द सुनकर श्री ब्रजराज्ञी यशोदा जी जाग्रत हुई और स्वयं दधि मथन करने लगी । वे लाला कृष्ण के बाल चरितों पर आधारित गीति बना बना कर मधुर कण्ठ से बाती जाती हैं । माँ को पास शैया पर नहीं पाकर श्री ब्रजचंद ऊँ ऊँ करते पलकिया से उतर कर अस्त व्यस्त चरण धरते माँ के पास पहुँचि और जल्दी जल्दी मैं मथानी से मक्खन निकालती हुई माँ से बोले माँ । पहले मुझको दूध पिला दे । माँ बोली -- बेटा तनिक ठहर जाओ मथानी में मक्खन के झण आ गए हैं अभी अभी मक्खन निकाले लेती हूँ । अभी टट का मक्खन दूँगी । परन्तु कृष्ण नहीं माने उन्होंने चट रई पकड़ ली । तब तो माता को दूध पिलाना पड़ा । वह मन ही मन बड़ी प्रसन्न हुई क्योंकि श्री कृष्ण ने चतुराई से रई पकड़कर माँ का काम रोक दिया था । यह दूध नहीं माँ के हृदय का वात्सल्य है जो द्रवीभूत होकर दूध रूप से पुत्र का पोषण कर रहा है ।<sup>2</sup>

- 1- उदमयती नामरविन्द जो चनं ब्रजगिनानां दिक्मस्पृशदध्वनि,  
दध्नस्व निर्मथन शब्द मिश्रितो निरस्यते येन दिशाम मंगलम् ।।

—श्रीमद्भागवत 10 स्कंध 46 अध्याय श्लोक सं० 46

- 2- श्रीमद् भागवत दशम स्कंध, अध्याय 9, श्लोक 5

(2) प्रातः कालीन लीला — इतने में झुटपुटा हुआ । निशास्त्री नववधू ने नीलाम्बर त्याग कर पीताम्बर धारण किया परन्तु माँ बेटा की वात्सल्य विभोरता में अस्फोटक का पता नहीं चला । इतने में दूध नेउफन लिया । सप्ताह में अपने प्रिय की प्यारी वस्तु प्रिय से श्री अधिक प्रिय होती है । माँ ने यह सोच कर कि हाय यदि दूध अग्नि में गिर गया तो कन्हैया का अमंगल होगा, लाला को अग्नि में बिठा दिया और दूध उतारने दौड़ी जिसमें कुछ देर हो गई तो कृष्ण अप्रसन्न हो गए । उतकं दूध उफनी इतकं पूत उफनी । श्री शुकदेव जी कहते हैं —

संजात कोपः स्फुरितास्पाधरा

सदृश्य ददभिर्दधिमन्यभाजनम् ।

भित्वा मृषाश्रुर्हृदयमना रहो

जघास हैयगवमन्तरंगतः ॥<sup>1</sup>

श्री कृष्ण विचार करने लगे कि माँ को दूध अधिक प्रिय है पुत्र नहीं है अतः उनके कंदूलों के फल सरीखे जीठ फड़कने लगे और अपनी उन्मी वृत्ति में उन्होंने मटकी के नीचे लगे टिकोना की एक पत्थर निकालकर जो माट पर मारी तो मटकी फूटिके "भलल भलल" करके दही सारे अग्नि में बिखर गया । मानी एक दधिकदी माँ ने ब्रजचंद के जन्मोत्सव पर किया था दूसरा उन्होंने स्वयं किया ।

इसी लीला के अंतर्गत माखनचोरी, और गोपी उपालम्भ, उल्लसबंधन, कन्हैया का दर्शन कर मालिन का पुष्प भेंट करना और उसकी हवरिया का रत्नों से भरजाना, गोपी का माखन चोर कन्हैया को बंधने के प्रयास और अंत में उनके द्वारा स्वयं बंध जाना आदि क्रीड़ा माला का वर्णन है । श्री कृष्णदास कविराज गोविन्दलीलामृत में कुछ अन्य लीलाओं का इसी प्रसंग में समावेश है जैसे श्रीकृष्ण के अंग में रतिचिन्ह देखकर यशोदा की भ्रान्ति और श्री कृष्ण द्वारा वल्य भाव प्रदर्शन करके उसका निराकरण, उनका गोशाला में गोदोहन, उसी समय

राधिका का अगमन और सखियों सहित हास परिहास, तदनन्तर श्री कृष्ण का स्नान, कर्त्रालंकारों से विभूषित होना, भोजन व्यक्था और वनम मनोचित का धारणादि ।<sup>1</sup>

पूर्वनिह लीला — सूर्य चढ़ते ही 'दाम', सुदाम, 'वसुदाम', श्रीदाम, लोक कृपमा, सुबल, मधु मंगल आदि श्री कृष्ण बलराम को साथ लेकर वन में गोचारण के निमित्त जाने की तैयारी करने लगे । ब्रजवासी श्री कृष्ण दर्शन के निमित्त एकत्र होने लगे और प्रेयसियां श्री कृष्ण दर्शन के लिए उत्साह पूर्वक आईं । तदनन्तर श्री दशोदा जी ने ब्रह्मेवादि को श्री कृष्ण का समर्पण किया, रक्षा बंधन किया । उधर कुन्दलता आदि ने श्री राधा को जटिला को समाल दिया । राधा द्वारा विविध पक्वान्न बनाए गए और श्री कृष्ण की प्राप्ति के निमित्त उनमें तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हुई ।

इधर वन में सखियों द्वारा नृत्य, गान, हस्य व्यंग्य आदि का आनन्द उल्लास मय वातावरण की रचना । श्री कृष्ण को बंशी ध्वनि जिसकी श्रवण कर वृन्दावन के पशु-पक्षी लतादिक सब प्रसन्न हुए और बंशीवादन की बार बार बढ़ाई करने लगे । वृन्दावन की अभूतपूर्व शोभा है । ग्वालबाल गोवर्धन तटी में अनेक प्रकार की क्रीड़ा करें । कंद मूल फल अयि । नाचें ~~प्रोक्ख~~ गावें ताली बजावें ।

इतने में ककिहारी 'कन्हैया कन्हैया टेरती मैया को भैरवो दही मात 'काक' आदि लेकर आईं । सब आरोगन लगे । पास ही हरी हरी घास पर बैठी गैय्या गवार कर रही हैं । यमुना जी का जल बड़ा ही मधुर, शीतल और स्वच्छ था । उन लोगों ने पहले झोओं को पिलाया फिर स्वयं पिया ।<sup>2</sup>

1- श्री गोविंद लीलामृत चतुर्थ सर्ग पृष्ठ 77

2- तत्र गाः पश्यन्ति पः सुभृष्टाः शीतलाः शिवाः ।

ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥

—श्रीमद्भागवत 10 स्कंध, अध्याय 22, श्लोक 37

मध्यान्ह लीला - श्री कृष्ण निकुंजेश्वरि सहचरियों से कृष्ण गुणानुवाद श्रवण करके धनिष्ठा द्वारा भोग्य पदार्थ भेजने के अनन्तर मध्यान्ह में श्री कुण्ड की निकुंज में पधारी जहाँ कल करके ग्वालवालों को छोड़ श्री कृष्ण भी उनसे आ मिले । यहाँ नव निकुंज में पुष्पचयन करती प्रिया से उनका वाग्विलास हुआ और तदनन्तर कभी 'यमुना पुलिन' की निकुंज में जहाँ 'हानि' 'ग्लानि' गोष्ठ लीला की चिन्ता नहीं है वहाँ श्री ललितादिक अष्ट यशोवतियों के साथ उन्होंने निश्चिन्त बिहार किया । मध्यान्ह विहार का मुख्य स्थल 'श्री कुण्ड' पर ही है । जहाँ चारों ओर वलयाकार अष्ट यशोवतियों की निकुंज शोभा दे रही है । इनमें कल्पलता और कल्पवृक्ष विचित्र पुष्पों से लदे ब्रजरज में लेट रहे हैं जिनमें प्रकृति भवने 'निकुंज भवन' शोभित है जिनमें विलास की समस्त सामग्री पूर्व संचित है जो आनन्दैक रस रूप श्री राधा माधव के योग्य निमित्त है । यहाँ की सब वस्तु चिन्मय है, वहाँ आनन्द का ही साम्राज्य है, उन निकुंजन के मध्य 'श्री कुण्ड' है जिसके चारों ओर रत्न जटित सुवर्ण सीढ़ी है और जिसके दिव्य अमृतमय जल में कमल और कमोदनी छिल रहे हैं । हंस, कारुण्डव, चकवा, चकवी, घ्रीड़ा कर रहे हैं । श्री कुण्ड अपनी समस्त दिशाओं में कुंज पुजों से समावृत्त है । यथा उत्तर में - 'अनीग रंगाम्बुज' कुंज, मध्य में 'कमल कुंज', आग्नेय में 'हिन्दोल कुहिप', ईशान में माधवी कुंज, पूर्व में 'असिताम्बुज कुंज', दक्षिण में 'अस्माम्बुज कुंज' पश्चिम में 'हेमाम्बुज कुंज', वामक कोण में वसन्त सुखद कुंज और नैऋत्य में 'पद्म मंदिर' है । उसके मध्य में अनीग मंजरी की आनन्द देने वाला 'सलिल कमल' नामक कुंज गृह है । 'श्री कुण्ड' के उत्तर में राधाकुण्ड और दक्षिण में श्याम कुण्ड स्थित है जिनके मध्य रत्नजटित सुवर्णमय सेतु बंध रहा है । इस प्रकार श्री राधा की सखी यशोवती और कृष्ण सखाओं से सम्बन्धित अनेक कुंज और लता भवनदि हैं । मदन सुखद कुंज में श्री कृष्ण का आगमन होता है और राधा से मिलनोत्कंक्षा में प्रतीक्षा रत हैं ।

उधर श्री राधा भी उत्कण्ठित होकर वृन्दा के सहयोग से परस्पर दर्शन लाभ

करती है और युगल का भाव विकार होता है । श्री राधिका में विविध भावोद्गम रस क्लह और तदनन्तर रस लीला सम्पन्न होती है ।

तदुपरान्त श्री राधांग में रति चिन्ह देख कर सखी गण हस्य कौतुकादि करती है और उनके अंगों का वर्णन करके क्ल से आनंद अस्वादन करती है ।

इस प्रेमलीला के मध्य श्री वृन्दादेवी वृन्दावन दर्शन का आग्रह करती है और वंशी वादन करते हुए श्री राधाकृष्णादि उस वन में प्रवेश करते हैं । वहाँ एक साथ ही वे ऋतुएँ वर्तमान हैं जिनका दर्शन बहुत सुंदर है । समस्त ऋतुओं के अलग अलग वन विभाग हैं जिनमें श्री राधाकृष्ण का पूजन अर्चन होता है । बसंत लीला सम्पन्न होती है जिसमें झूलन और मधुपान होता है । विलक्षण रीति से पालित शुक सर्व सारिका कृष्णाष्टक सर्व राधिकाष्टक का पाठ करते हैं । वहीं पाशाक्रीड़ा, सूर्यपूजा, हस्तरेखा विचार आदि विविध मनोरंजक क्रीड़ा विलास होते हैं और तदनन्तर श्री कृष्ण सखा भाव के निकट प्रत्यावर्तन करते हैं । श्री राधिका अपने गृह को प्रत्यावर्तन करती है ।<sup>1</sup>

अपरान्ह लीला — भगवान् अंशुमाली अपरान्ह में वनमाली के रात्र्युदय के विरह की सम्भावना में समुत्कण्ठित होकर पश्चिम दिशा में पृथ्वीतल का स्पर्श करने लगे । उधर श्री श्यामसुंदर ने गोष्ठ की ओर गीगण की ओर गीगण को जोटाने के निमित्त वंशी बजाई । उस वंशी की शक्ति अपूर्व है । कही तो गायें एक स्थान पर एकत्र हो जाय और वे चाहें तो तितरवितर जाय ।<sup>2</sup> अतः समस्त बनीं से गलें एकत्र होकर एक साथ चलने लगीं । सखासहचर अपने को धन्यभाग मानने लगे ।

इधर वन से गोष्ठ की ओर लौटते श्यामसुंदर को देख कर गोष्ठ की मुरझाई शीघ्रा प्रफुल्लता में परिणित होने लगी । पानादि परोवरों के मौनावलम्बी

1- श्री गोविंद लीलामृत भा० । - मध्यान्ह लीला अष्टादश सर्ग पृष्ठ 98

2- गाः सन्निवर्त्य सायान्हे सहस्रामो जनार्दनः

केपु विरणयन्गोष्ठ मगादगोपैरभिष्टुतः

श्रीमद् भागवत दशम स्कंध अध्याय 19 श्लोक 15

पक्षी अब श्री गोविंद का आवाहन करने लगे, बैलों की रभान, बकड़ों की 'भयि', 'भयि', ग्वालियों की गाय दुहने की तैयारी सम्बन्धी कार्यमाला की शटपटी और कृष्णगमन की प्रतीक्षा में बैठी सजधन सहित गोपीजन की उत्कण्ठा अभूतपूर्व दर्शनीय थी। उनमें जो 'पूर्वनुरागवती' ब्रजसुंदरियां थीं जिन्होंने जल भर कर जाते समय ब्रजरज का दर्शन किया था और जिन का मन सारे दिन गृह कार्य में नहीं लगा था वे आकाश में गोरज की धुंध चूँ या नहीं और नन्दनन्दन की वंशी ध्वनि से वातावरण परित हुआ या नहीं इसको जानने के लिए परम उत्सुक जान पड़ीं। ऐसी पूर्वनुरागिनी सुंदरियों का कष्ट दूर करने के निमित्त गोविंद ने अपना वैष्णु वादन किया।

संयुक्तलीन लीला - गोष्ठ बिहारी श्याम सुंदर के वैष्णुनाद को सुनते ही संध्याकाल गोष्ठ में कीलाहल मच गया। समस्त ब्रज गोष्ठ के बाहर कृष्ण दर्शन के लिये दौड़ी। सूर्य भी पश्चिम दिशा स्त्री नायिका को लेकर कृष्ण दर्शन को चल दिये। पूर्वनुराग वती गोपी ने जब अपने प्रेम का नाम जानना चाहा तो किसी ने पक्ष के साम्य से कृष्ण पक्ष बतलाया जिसके कालुष्य 'अधिकार' में दृष्टि गतिरोध का स्मरण कर उसे बड़ी वेदना हुई। फिर सखी ने चित्र - दर्शन द्वारा उसे धैर्य दिया। फिर गुलजनलज बंधु, बंधिव द्वारा त्याग और सत् पुस्त्रों द्वारा उपहास का स्मरण ने थोड़े संकोच का अवसर दिया परन्तु तुरन्त ही धैर्य संकलित कर 'अनुरागवती' ने उनकी तनिक भी चिंता न की वरन् श्यामसुंदर के प्रत्यक्ष दर्शन का विकट आग्रह चालू रखा। अन्य गोपीजन की दशा भी अच्छी नहीं थी।

जिस समय गोपियां श्री ब्रजचंद के मुख कमल के मादकमधु का अपनी नयन झरियों से पान करती हैं सहसा

1- पीत्वा मुकुन्द मुख सार घमक्षिपृग्नि  
स्तापं जहुर्विहरजं ब्रजयोषितोजनिह ।  
तत्संस्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठ  
सत्रीहहास विनयं पदपाणि मोक्षम् ॥

श्रीमद्भागवत 10वां स्कंध, अध्याय 15, श्लोक सं० 43

श्याम की दृष्टि सही प्रहरी हास्य को ग्रहण करके ब्रौंड़ा भण्डारिन द्वारा उसके रोकने का प्रयास करती है तब गोपीगण विनयपूर्वक प्रार्थना करती है कि हे अविवेक तुम दूर रहो जिससे गोपियों की नेत्र स्रव चकोरी हरि-मुख-चन्द्रामृत का पान कर सकें । एक अन्य सहचरी उसी संकोच के निवारणार्थ कहती है कि हे सखी जब हाथी ही दे दिया तो अंकुश पर क्यों विवाद करती है जब मन ही दे दिया तो लज्जा संकोच के बंधन का मोह किसलिये ?

तदनन्तर गोपियों ने श्री मुकुन्द की शोभा का आनंद लिया । एक गोपी अपनी सहचरी से कहती है, सखि । देख प्रियतम के मद भरे नेत्र कुछ मुदे कुछ विह्वलता भरे कैसे शोभावान हैं उनके सुन्विकण कपोलों पर पङ्क्तिमकरामृत कुण्डलों की झलक से कुछ पीत वदर कान्ति लिए हुए मण्डस्थल कैसी शोभा दे रहे हैं ।

सिंह पौर पर पहुँचते ही चौपाल पर गोपुर के आगे श्री नंदजी ने श्री कृष्ण बलदेव दोनों बंधुओं को उठाकर हृदय से लगा लिया । श्री ब्रजेश्वरी यशोदा और रोहिणी ने उनकी संध्या आरती उतारी । श्री राम श्याम ने दंडवत करके आशीर्ष पाई । ग्वालों ने गायों को खिरकों में पहुँचाया और रामश्याम ने महलों में जाकर उवटन करा कर स्नान किया, दिव्य वस्त्र धारण किये, मार्ग का परिश्रम दूर हुआ ।

प्रदोष-लीला — सन्ध्या और रात्रि के बीच के समय को प्रदोष काल कहते हैं । श्री कृष्ण बलराम के वन से लौटते ही चारों ओर झुटपुटा हो गया और ग्वाणिया लोग रत्नजटित दीहनी लेकर गोदीहन के निमित्त इकट्ठे हो गए । श्री कृष्ण व बलदेव जी भी इस निमित्त खिरक में गए ।

वै उस समय क्रमशः पीताम्बर व नीलाम्बर धारण किए हुए थे । उनके

1- श्रीमद्भागवत 10वां स्कंध, अध्याय 21, श्लोक 19.



नेत्र शरदकालीन कमल के समान बड़े बड़े और शोभायमान थे । किशोर अकथा, वृद्ध वक्षस्थल पर लक्ष्मी रेखा किलोल करती हुई, भुजाएँ बाजूबंदों से शोभित, सखामण्डली में प्रसन्न मुख से जाते हुए मानो मतवारे हाथियों के बच्चे घूमते घामते चले जा रहे हैं ।

सखाओं सहित खिरक में पहुँच कर उन्होंने गोदीहन किया जो मन को बहुत ही आकर्षित करने वाला था । तदनन्तर लौट कर नंद भवन में व्यास के लिए पधारे । वहाँ बाबा सहित सुस्वादु अन्न से बने पदार्थ आरोगे और चंद्रशालिका में शयन करने के लिए गए । माँ यशोदा की आज्ञा से उनके नर्मसखा सिर पर तेल मर्दन करने लगे और पगथली मसलने लगे । फिर ब्रजचंद ने माँ से निवेदन किया कि वे बहुत थक गए हैं कोई उन्हें जगाए नहीं । माँ ने पहरोदार बिठा दिये । कुछ समय पर्यंत नंदनंदन ने उत्कणावश यमुना जी की ओर की झिड़की छोली और वहाँ की शरदकालीन शोभा देखकर उनके मन में श्री कृदावन के यमुना पुलिन पर क्रीड़ा करने का विचार आया ।

फिर क्या था । कौवट की ढाया में प्राची दिशा में चन्द्रविम्ब उदय हुआ । कौशीवादन करते ही रासेश्वर, मधुश्वरी, सखी, सहचरी समस्त परिकर आकर उपस्थित हो गया । ब्रज देवियों ने इष्ट प्राप्ति के लिए 'जातीय मयदा), स्त्री (स्वभाव का त्याग', दैहिक कृत्यों का त्याग' सब कुछ किया । इनकी कोई रोक

- 1- ददर्श कृष्णं राघं च ब्रजे गोदीहनं गतो ।  
 पीतनीलाम्बर धरो शरदम्बुसहेक्षणो ।  
 किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्री निकेतौ बृहदजौ ।  
 सुमुखौ सुन्दरवरौ बाल दिवारद विव्रनयौ ॥

— श्री मद. भागवत् 10वाँ स्कंध, अध्याय 38।

श्लोक सं० 31-32

न सका क्योंकि गोविन्द ने उनके चित्त का आकर्षण कर लिया था । इस प्रकार ब्रज गोपियों के युथ वेणुनाद श्रवण करके उम्मादिनी अवस्था में प्रदोष काल में वंशी वट की ओर अभिसार करके चले ।

रात्रिकालीन लीला -- रात्रिकालीन अथवा नैशलीला प्रमुखतया रासविलास, वन भ्रमण, रतिलीला, यमुना जल केलि हास परिहास और आनन्दविनोद की लीला है । गान, नृत्य, चित्रकला, अभिनय संगीत इसमें सभी का सुंदर सम्मिश्रण और प्रदर्शन रहता है । इसके आलम्बन उद्दीपन स्वयं परमात्मतत्त्व श्री निकुंजेश्वर और निकुंजेश्वरी उनके सखी सहचरी वृन्द, वृन्दावन की विहार थली, गोवर्धन के रमणीक रमण स्थल यमुना तट, वींक्ट, कदम्ब तल, तमाल, सरोवर और पूर्ण चन्द्रोदय द्वारा विस्तारित चंद्रिका आदि हैं जिनके साहचर्य से एक अलौकिक मंगलमय दिव्य वातावरण की सृष्टि होती है जो रासिकों का प्राण और रागानुमामर्ग साधकों का सर्व्व है ।

इस लीला में श्री कृष्ण का अभिसान के अनन्तर सखियों के माध्यम से श्री राधा से मिलते हैं । कचिन वेदी पर दोनों का उपवेशन होता है तदनन्तर यमुनादर्शन और यमुना पुलिन में चक्रमयणादि, हल्लिशक-नृत्य, रास, गान, स्वर, भ्राम, श्रुति, तान, मूर्च्छनाकाविविध वाद्ययंत्रों के साथ उपक्रम होता है । मधुपान, रतिलीला, कान्तियों का वेश विन्यास, परिहास आदि चलते रहते हैं । यमुना में जल केलि, सर्व शयन लीलादि नैश लीला के प्रमुख अंग हैं ।

पद्म पुराण के पाताल छठीय वृन्दावन माहात्म्य के 52 वें अध्याय में दैनन्दिनी या अष्टकालीन लीला का सुंदर वर्णन हुआ है जिसके नारद जी श्रोता और गोपीभाव से श्री राधाकृष्ण का भजन करना इसका परम उद्देश्य माना गया है ।

भगवान् की अष्टकालीन या नित्य लीला में रसस्वादन अनवरत और अखंड रहता है, कहां माधुर्य प्रतिक्षण अभिवृद्धि पाता है । अवतार लीलाओं में ऐसा नहीं है । अधिकांश अवतार लीलाएँ तो प्रभु के चमत्कार मात्र हैं, केवल ऐश्वर्य के

दयितक हैं जिनका हृदय की रसकता और मनोवेगों पर गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ता । माधुर्य भाव से तो इनकी भाव भूमि कोसों दूर है । इस निपट व्यक्तता में प्रमोद वन, वृन्दावन अथवा गोवर्धन लीलाओं की वह रसमाधुरी कहाँ जिसका विशाल समुद्र नित्यलीला में निरन्तर हिलोरे मारता रहता है । प्रेम की विशुद्धता और माधुर्य का अछूट अस्वादभगवत् उपासना प्रणाली की श्रेष्ठता का आधार माना जाता है । इस कारण भगवान् राम और भगवान् श्री कृष्ण की अवतारकालीन लीलाओं का पर्यवसान नित्य लीला में देख पड़ता है ।

स्थानगत भेद - स्थान के आधार पर लीलाओं को (1) जल क्रीड़ा (2) थल क्रीड़ा दो भागों में विभाजित किया जाता है ।

इनमें जल क्रीड़ा के स्थानों में पवित्र नदियाँ जैसे सरयू, यमुना, गंगा कनक भवन के अंदर स्नान कुंज में स्थित सरोवर तथा श्री कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित अनेक ताल सरोवर, मानसी गंगा, कृष्ण कुण्ड, श्याम कुण्ड, राधा कुण्ड आदि हैं जिनमें अनेक दिव्य लीलाएँ ऋतुओं के अनुसार होती हैं ।

थल क्रीड़ा के भी अनेक स्थान हैं जिनमें विविध लीलाएँ सम्पन्न होती हैं । श्री भगवान् राम की लीलाएँ प्रमुखतया सरयूतट स्थित शृंगारवन, रसालवन, चम्पकवन चंदनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदम्बवन आदि में आयोजित की जाती हैं । इनके अतिरिक्त द्वादश उपवन भी इस क्रीड़ा के स्थान हैं जिन्हें क्रमशः तुलसीवन, जूहीवन, लवंगवन, कदलीवन, लवंगवन, कुंदनवन, कदलीवन, वसन्तीवन, चम्पावन, केसरवन, गुलाबवन, माधवीवन और माधवीवन कहा गया है । श्री राम जी की लीला के (1) मिथिला (2) चित्रकूट (3) प्रमोदवन मुख्य स्थान है । 'प्रमोदवन' की मुख्य राजधानी रत्नागिरि साकेत की पर्वतीय क्रीड़ा भूमि है ।

श्री कृष्ण लीला में (1) ब्रज या गोकुल (2) मथुरा (3) वृन्दाका तीन प्रमुख स्थलों की गणना की जाती है। उनके विहार के 12 वन और 24 उपवन हैं जहाँ सखी सचरियों और भक्ति शिरोमणि राधाजी के साथ उनकी लीलाएँ सम्पन्न होती रहती हैं। वृन्दावन और गोवर्धन का रसमयी गोकुल की लीलाओं से सम्बन्ध है। जल बिहार, नौका बिहार, रथयात्रा स्थानीय लीलाओं में उच्च स्थान रखते हैं।

लीलावाद सृष्टि विज्ञान का एक सिद्धान्त— वादों के इस आधुनिक संसार में विचारक का ध्यान स्वतः इस तथ्य के ओर आकर्षित होता है कि क्या भगवद् लीलाओं का क्रम विज्ञान के अन्य सिद्धान्तों की भाँति तर्क और शास्वत सत्य की प्रक्रिया का अनुपालक है अथवा नहीं ?

इस दृष्टि से विचार करने पर सृष्टि भ्रामिक तथा यथार्थ दोनों की कोटियों में आती है। भगवान् की लीला के कारण सृष्टि का अस्तित्व है इस अर्थ में वह यथार्थ है परन्तु लीला या खेल केवल कल्पनिक सिद्धान्तों के अनुसार क्रीड़ा काल में सृष्टि का प्रत्यावर्तन है इस अर्थ में वह अयथार्थ है। सृष्टि के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीन स्तर हैं इस कारण भगवान् की लीलाओं के भी क्या ये तीन स्तर होते हैं यह विचारणीय है।

आधिदैविक दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की लीला है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण शिव और पार्वती का सामरस्य है। विभिन्न मतों ने ब्रह्म की विभिन्न स्तरों में कल्पना की है परन्तु यह सर्वसम्मत निर्णीत है कि परब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर और परमतत्त्व है जिसका प्रकृति से नित्य साहचर्य है। परब्रह्म और प्रकृति दोनों अभिन्न हैं परन्तु वे भिन्न से प्रतीत होते हैं।

उनका लीलामूर्ति होकर नृत्य करना सृष्टि की सृजनशीलता, गतिशीलता और प्रगति का रहस्य है । यह लीला का आधिदैविक दृष्टि से निराकरण मानना चाहिये ।

अब आई आधिभौतिक दृष्टि की बात । उस क्रम में सृष्टि की एक सौरमण्डल की संज्ञा दी जाती है जिसके केन्द्र में सूर्य और परिधि में अनेक नक्षत्र सूर्य की परिक्रमा करते दीख पड़ते हैं । अतः सौरमण्डल नित्य गतिशील है । जैसे सौरमण्डल है वैसे ही प्रत्येक अणु भी है जिसका एक केन्द्र है और उसके चारों ओर विद्युत्कण परिक्रमा करते रहते हैं । इस प्रकार अणु और ब्रह्माणु दोनों की रचना का एक ही आधार है और उनकी गतिशीलता अथवा लीलामय प्रत्यावर्तन भी एक ही है । यह वह स्थिति है जहाँ गति और गतिशील द्रव्य दोनों का अनेक हो जाता है । अथवा यह कहना उपयुक्त होगा कि सभी गतिशील वस्तुओं का महासीमकरण हो जाता है । अपने आधिभौतिक प्रयोग में भी लीला विज्ञान का प्रक्रियात्मक व्यापार है ।

आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त सृष्टि ज्ञानशक्ति, सविदन शक्ति अथवा चेतना का विस्तार मानना चाहिये क्योंकि ज्ञान शक्ति से प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में आत्म ज्ञान (अथवा आत्म परिचय) होता है । सृष्टि का विलास वैभव भी आत्म पूर्वक होने से आत्मा का विलास मात्र मानना होगा । ससार में बाह्य दृष्टि से जिसे गति (मैशन) कहते हैं आन्तरिक दृष्टि से उसे ही भावना कहना पड़ेगा । जो बाह्य प्रवृत्ति है वह आन्तरिक प्रेरणा की उत्तेजना है । बाह्य जगत् प्रवृत्ति मूलक अथवा प्रवृत्ति परायण है तो आन्तरिक जगत् प्रेरणादायक है । इस प्रकार आत्मा, अनात्मा, विद्या, अविद्या, विषयी और विषय का अनादि काल से एक खेल चला आ रहा है जिनसे ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखाएँ हो गई हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से इन शाखाओं में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् और रहस्यम् से सम्बन्धित विधाओं का विशेष स्थान है । लीलावाद के विकास में भी हमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् और रहस्यम् का विस्तार स्पष्ट लक्षित होता है । इस

दृष्टिकोण से भी हमें लीलाओं को समझना होगा और उनके वर्णिकरण की संगति बिठानी होगी ।

सत्यम् की दिशा में प्रकृत होकर लीला विश्लेषण करने पर स्पष्ट प्रतीति होती है कि ब्रह्मलीला इसी तत्त्व पर आधारित है । रामचरित्र में इहलोक और परलोक में शाश्वत कल्याण की भावना पग पग पर अन्तर्निहित लक्षित होती है अतः शिवम् के आधार पर रामलीला का विकास मानना सर्वथा संगत है । श्री कृष्णलीला में सौंदर्य और माधुर्य की अभूतपूर्व अनंतराशि संग्रहीत है अतः सौंदर्य के दृष्टिकोण को उन लीलाओं में प्रधान तत्त्व स्वीकार करना होगा । रासलीला में सौंदर्य-साधनों की सर्वतोमुखी अतिशयता की प्रवृत्ति देखी जाती है, कृष्ण लीला में उसका स्थान भी भूधर्मा पर है अतः उसको उद्भावना में सौंदर्य की प्रधानता देनी पड़ेगी । गोकुल लीला, ब्रजलीला और निकुंज लीलाएँ उस साधना का विषय हैं जिनमें साधना की गूढ़ता, साधक की अतिशय समर्पण भावना इष्ट में एकीभूति रति तथा प्रभुकी अहेतु की कृपा के अवलम्बन मात्र से विशेष स्थिति में सहस्रों में से किसी विरले को ही लीला प्रवेश की सामर्थ्य प्राप्त होती है । ये लीलाएँ बड़ी रहस्यात्मक हैं । उनका मर्म ग्रहण होना सामान्य बात नहीं है । अतः रहस्यम् के दृष्टिकोण से उनका विकास माना चाहिये । लीला तत्त्व के अन्त सभी दृष्टिकोण लीला के विकास में एक प्रभावी प्रतीत होते हैं । सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् और रहस्यम् सभी अपनी एकाकी स्थिति में लीला का आधार हो सकते हैं । इनका तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र और मोक्षशास्त्र से सीधा सम्बन्ध है उन्हीं के द्वारा लीलाएँ लोक कल्याण, और लोक निमणि का सकल साधन है ।

ब्रह्मलीला का तात्त्विक अर्थ है कि एक मात्र ब्रह्म सत्य है और अन्य सब कुछ सी अनुभव गम्य है वह ब्रह्म की लीला है । रामलीला का तात्त्विक अर्थ है कि एक मात्र शिवम् राम है और अन्य जो कुछ है वह इसी शिवम् का विलास या स्फुरण है । तत्त्वतः रामलीला का अर्थ हुआ कि एकमात्र परमार्थ उस है, 'रसोवैस' और अन्य जो कुछ भी कुछ है वह सब इस रस का विलास है । स्पष्ट

का मूल तत्त्व आनंद है । आनंद से ही समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है ऐसा मानना रामलीला की समझना है । प्रत्येक वस्तु में जो रस या आनंद है वह भगवान् का अंश है । रामलीला सृष्टि की इसी रसत्मकता का प्रतिपादन करती है ।<sup>1</sup>

पुनश्च रामलीला यह बतलाती है कि जो कुछ अच्छाई है वह भगवान् के चरित्र का अंश है । रामलीला जगत की मंगलत्मकता का प्रतिपादन करती है । ब्रजलीला, वृन्दावन लीला और निकुंज लीला स्वयं मोक्षा या कैक्य हैं । मोक्षानुभूति का ही दूसरा नाम ब्रजलीला, वृन्दावन लीला और निकुंज लीला है ।<sup>2</sup>

#### लीलावतरण का वैशिष्ट्य -

(1) जैसा पूर्व में कथन किया जा चुका है लीला का मुख्य हेतु स्वयं भगवान् ही हैं । वे निरंतर अपने साथ स्वयं क्रीड़ा रत हैं । जब तक अज्ञानाधिकार में रहता है वह इस नित्य लीला की कल्पना भी नहीं कर सकता । उसे पहले भगवान् से अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा तब उसे भान होगा कि वे नाना रूपों में विभिन्न केधारण किए अपने साथ स्वयं क्रीड़ा कर रहे हैं । उपनिषदों में इसे आत्मरमण या आत्मक्रीड़ा की संज्ञा दी गई है । अतः अपनी क्रीड़ा के योग्य भक्ति और योग सब कुछ वे ही हैं । वे अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं अतः उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं जो स्वस्मयः आनन्दमय, चिन्मय और अप्राकृत हैं । लीला केवल अभिनय मात्र है जिसका रसस्वादन के निमित्त आयोजन होता है । समस्त क्रीड़ाओं के मध्य में भी भगवान् लीलतीत रूप से अपनी लीलाओं के दृष्टा स्वयं ही हैं । एक मात्र वे ही अनन्त विचित्रताओं के साथ सर्वदा और सर्वत्र खेलते और खिलते प्रतिभासमान हो रहे हैं । यही उनकी नित्य लीला है ।<sup>3</sup>

1 - लीलातत्त्व मोमसा- डा0 संगमलाल, सर्वेवर ब्रजलीला अंक पृष्ठ 11

2- लीलातत्त्व - सर्वेवर ब्रजलीला अंक पृष्ठ 11

3- तस्य पुनर्विश्वोत्तीर्णं विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकरोक्थनस्य  
स= सर्वविध मेवाञ्जित अभेदेनैव स्फुरित न तु वस्तुतः अन्यं  
किञ्चित् ग्राह्यं ग्राहकं वा अपितु स सर्वं यत् । नानावैचित्र्य  
सहसैः स्फुरति - शक्ति सूत्र.

(2) कोई कोई धर्मचार्य जन्म मृत्यु का भय, त्रिताप ज्वाला प्रवृत्ति सप्तिरिक् यातनओं का निवारण भगवान् की उपासना का मुख्य उद्देश्य मानते हैं क्योंकि जब तक जीव भगवान् के सम्मुख नहीं होता उसे अनेक भय बने रहते हैं और अनेक विषमताओं और संतापों के कारण उसको न तो भगवद् भजन की ओर रुचि होती है और न वह अपने कल्याण की ओर से आशुस्त ही रहता है । अतः उपासना का मुख्य उद्देश्य परब्रह्म के साथ जीव का जो स्थिर सम्बन्ध है (जिसे पुलकिर जीव सप्तिरिक् भय की प्राप्त हुआ है) उस सम्बन्ध की स्मृति जाग्रत करने के लिए उपासना की आवश्यकता है । परन्तु संसार भय निवृत्ति की वासना उपासना की प्रवर्तक मात्र है । उपासना के अभाव से भगवत् कृपा से जब जीव की सम्बन्ध जाग्रति हो जाती है तब उसे यह अनुभव होता है कि परम कल्याण भगवान् के अतिरिक्त उसका और कोई नहीं है । तब उनसे उसका रागमय मधुर सम्बन्ध स्थापित होता है ।<sup>1</sup> अतः परिणाम यह निकला कि सप्तिरिक् भय निवृत्ति उपासना का मुख्य उद्देश्य न होकर उसका मुख्य उद्देश्य श्री कृष्ण प्रेम है । इस श्री कृष्ण प्रेम के कारण और उसकी उपलब्धि का सर्व प्रमुख साधन लीला है । प्रभु की लीलाओं का गान, चिंतन और अनुकरण, साधक से सिद्ध देह प्राप्त कर उनकी लीलाओं में और उनके लीला परिकर में प्रवेश का प्रयास सब कुछ लीलाओं के माध्यम से ही संभव है ।

इस तथ्य में भी एक रहस्य अंतर्निहित है । 'लोकवत्लीला देव्यय'<sup>2</sup> इस वेदान्त सूत्र से प्रकट होता है कि परब्रह्म (श्री कृष्ण) लीलामय है । वे खेल क्रीड़ा में रत रहते हैं, उन्हें लीला करना इष्ट है । परन्तु यह लीला प्रवृत्ति किसी उद्देश्य को लेकर नहीं है । छोटे शिशु की भाँति आनंद की प्रेरणा में आनंदस्वादन के लिए ही वे लीला करते हैं । उनके रसस्वादन स्पृहाहीलाला

1- श्री मद वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह - श्री राधागोविंद नाथ

एम०ए० पृष्ठ 159

2- वेदान्त सूत्र 2-1-33



की प्रवर्तक है । लीला रसास्वादन भगवान् अपने स्वस्म से ही करते हैं उसके उपादान उनके स्वस्म में ही अनुष्ठित है । इसके अतिरिक्त लीलायें अनन्त रस वैचित्र्य का समावेश विभिन्न भावस्वरूपों के द्वारा होता है । दूसरी बात यह है कि लीला रसाकी सिद्ध नहीं होती -- उसके निमित्त सहयोगी चाहिये । भगवान् को लीला के साधन उनके 'परिकर' हैं । भगवान् बड़े करुणामय और कृपालु हैं । उनकी अहोरात्र की कृपा से उनके लीला परिकर में सहज प्रवेश हो जाता है । भगवान् सबको अपने चरणों में शरण देने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं । क्योंकि जीवों का उद्धार करना ईश्वर का स्वभाव है :-

'लोक निस्तारित सई ईश्वर-स्वभाव' ।

(3) भगवान् लीलामय हैं । अवतारी रूप में श्री राम मयादि-पुरुषोत्तम और श्री कृष्ण लीला पुरुषोत्तम कहे जाते हैं । श्री राम की लीलाएँ मयादि वैष्टित और लोक संग्रह से सम्बन्ध हैं श्री कृष्ण की लीलाओं में लोकानुराजन की प्रवृत्ति प्रधान है । उनकी लीलाओं का मुख्य हेतु जीव (परिकर मात्र) को आनन्दानुभव कराना है ।

(4) आस्वादन के लिए आस्वादयस्तु का सानिध्य अपरिहार्य होता है अतः जीव के लिए भगवत् सानिध्य परम आवश्यक है । आनन्दास्वादन की पूर्वावस्था जीव की स्वाभाविक स्पृहा है परन्तु वह प्राकृत सुख का आनन्दानुभव करता है । इस प्रकार आनन्दास्वादन की योग्यता और स्पृहा होने के कारण भगवत् सानिध्य में अप्राकृत आनन्दानुभव नहीं कर पायेगा ऐसा नहीं कहा जा सकता परन्तु जीव के लिए आनन्दास्वादन का मुख्य हेतु भगवत् सेवा है । भगवान् भक्त वस्तु हैं, उन्हें भक्तों को सुख देना अभिप्रेत है जो हलादिनी शक्ति के द्वारा अतिपल होता है यही परिकर संग्रह में प्रेम रूप में परिणत

होकर सेवा द्वारा भगवान् को सुखास्वादन कराती है और भक्तों के भगवान् का माधुर्यादि प्रदान कराती है । जितना प्रेम जिस भक्त में विकसित होता है वह उतना ही अधिक माधुर्य रस का अस्वादन कर सकता है ।<sup>1</sup> प्रेम का विकास भगवत् सेवा की तत्परता से होता है । भगवान् की लीलाओं में निरपेक्ष भाव से योगदान उनकी प्रमुख सेवा है । इसके लिए सहचर-किंकरी रूप में सेवा करना अनिवार्य है । अतः लीला स्वयं परमात्मा और परिकर वृन्द के आनन्दस्वादन और माधुर्य प्रतिफल का माध्यम है । उत्कृष्ट सेवा लीला के ही माध्यम से सम्पन्न होती है क्योंकि जीव की सेवा आनुगत्यमयी है । वह दास्य, सख्य, वत्सल्य और मधुर परिकरों के चारों भावों में से किसी एक भाव के आनुगत्य में श्री कृष्ण सेवा प्राप्त कर सकता है । आनुगत्य इस कारण से कि जीव स्वस्म्यतः भगवान् का दास है और उनके अनुगत होना ही उसका अधिकार है । अतः अपने अभीष्ट भावानुकूल परिकर का आनुगत्य लेकर तदनुस्य लीला में भगवत् सेवा ही जीव का स्वस्मानुबन्धि कर्तव्य है ।

(5) लीलावतरण और लीलानुकरण में एक विचित्र रस है । उस रस की अनुभूति से जो आनन्द प्राप्त होता है वह परमात्मा के अनुभवानन्द और ब्रह्मानन्द के स्वस्मानन्द दोनों से अनेक गुना अधिक है । कारण यह है कि निर्विशेष अथवा अव्यक्त अव्यक्त - शक्तिवत् ब्रह्म आनन्द स्वस्म्य हैं परन्तु उसमें चित्-शक्ति की अभिव्यक्ति न होने से उसमें आनन्द की वैचित्र्य नहीं है । भगवान् के जिस रूप में चित् शक्ति का जितना अधिक विलास होता है उस स्वस्म्य में आनन्द सर्व माधुर्य की उतनी ही अधिक मात्रा होती है । इसी प्रकार परमात्मा की अनुभवानन्द है । परमात्मा की अनुभूति का आनन्द शाश्वत सर्व अलौकिक है । उनमें शक्ति के कुछ

1.- आभार माधुर्य नित नव नवहय ।

स्वस्वप्रेम अनुस्य भक्त अस्वादय ।

— श्रीमद् वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह में उद्धृत

विकास होने के कारण उसका रूप है और माधुर्य भी है अतः ब्रह्मानन्द से उसमें बहुत गुना आनन्द है परन्तु परमात्मा में लीला नहीं है और न लीला-परिवार ही है । अतः लीला परिवार के सहित लीला प्रवर्तन में जिस आनन्द की स्फूर्ति होती है परमात्मा की प्राप्ति में उस आनन्द वैचित्री की अनुभूति संभव नहीं है । कारण यह है कि भगवान् के श्री राम एवं श्री कृष्ण स्वस्वों में उनके सुयम्बुओं के साथ लीला माधुर्य की विशेषता रहती है जिसके परिणाम स्वस्व आनन्द वैचित्री की अस्वादन व्यक्तीकृति सर्वाधिक है ।

(6) ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि का सृजन हुआ है जो 'यतो वा ह्यानि भूतानि जायन्ते' आदि श्रुति वक्त्यों से सिद्ध होता है परन्तु सृष्टि की प्रक्रिया भगवान् की लीला के कारण है । सृष्टि कर्म में उनकी प्रवृत्ति लीलावश ही है । किसी अन्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए नहीं । गोविन्द भाष्यकार का अभिमत<sup>1</sup> है कि सुखोन्मत्त पुरुष जैसे सुख के संचार से नचि कूद करने लगता है इसी प्रकार स्वस्मानन्द स्वभाव से भगवान् अन्य लीलाओं की भाँति सृष्टि निमणि की लीला भी सम्पन्न करते हैं । इस प्रकार सृष्टि के समस्त कर्म व्यापार भगवान् की लीलावृत्ति के परिणाम है । परब्रह्म की प्रत्येक लीला में कल्याण का पूर्ण समावेश रहता है क्योंकि भगवान् का स्वभाव लीला करता है वे उसी स्वभाव के परम दयावान (परम कल्याण) भी हैं और प्रत्येक जीव के प्रति उनकी कल्याण का प्रकाश भी उनके द्वारा होता है । उनकी समस्त लीलाओं से आनुषंगिक रूप से उनकी दयार्द्रता प्रगट होती रहती है । इस आनुषंगिकता को स्पष्ट करने के लिए आचार्यों ने अग्नि और प्रकाश का उदाहरण प्रस्तुत किया है और उसका विश्लेषण करते हुए कहा है कि जैसे जहाँ अग्नि है वहाँ प्रकाश भी रहता है उसी प्रकार जहाँ भगवान् की स्वस्व शक्ति का विकास है वहाँ कल्याणमयी रहती है । सृष्टि लीला में तो भगवान् अपने से

1- सृष्टादिक हरिर्नैव प्रयोजन्यपेक्ष्य तु कस्यते,  
केवलानन्दाद् यथा मत्तस्य नर्तनम् ॥

गोविन्द भाष्य 2-1-33

बहिर्मुख रहने वाले जीवों के प्रति विशेष कल्याण का विधान रखते हैं । अहं पर जनित मायिक सुख दुःख भोगे बिना जीव की भगवतोन्मुखता संभव नहीं है । उन मायिक सुख दुःखों को भोगने के लिए मायिक भोगक्षतन शरीर की आवश्यकता है जो प्राकृत ब्रह्माण्ड की सृष्टि के द्वारा प्राप्ति होता है । भगवान् लीलाक्षी जीव के उद्धार के निमित्त मायिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं जिनमें जीव कर्म फल भोगकर अंत में भगवत् सेवा प्राप्ति के उपयोगी साधन भजन का सुयोग पाकर धन्य होते हैं । कोई अन्य व्यक्ती इस निमित्त जीव के लिए नहीं है । सृष्ट ब्रह्माण्ड में जीवों के लिए यह समस्त सुयोग भगवान् की कल्याण की परिचायक है । श्री मद्भगवत् में नवयोगेन्द्रोनि श्री निमि महाराज से कहा है "हे महाभुज ! सर्वभूतत्या आद्यपुरुष ने इन समस्त महाभूतों द्वारा स्वीय अंशभूत जीवों के विषय भोग सर्व मुक्ति के निमित्त दवतियगादि भूत समूह की सृष्टि की है ।" उक्त समस्त विवरण से भगवान् की लीलाओं के सूत्रपात और जीवोद्धार के निमित्त उनकी व्यक्ती की अनिवार्यता सिद्ध होती है ।

लीला प्रवेश - यह पूर्व में कहा जा चुका है कि साधारण मनुष्य शरीर से भगवान् की लीलाओं में प्रवेश असंभव है । उनके लीलाओं के आस्वादन और उनके परिकर रूप में सेवाधिकार प्राप्ति के लिए कठिन साधना की आवश्यकता है । कठिन साधना से जीव के अदृष्ट दोषों का परिहार हो जाता है । तदनंतर गुरु के शरणा गति होने पर एको नाम रूप, गुण, सेवा के निरंतर अभ्यास, लीला चिंतन, भगवान् के नाम-जय इनके दिव्य गुणों के अनुकरण और मनन, कथा श्रवण, स्तुति, जीव मात्र पर दया, धर्म में निरंतर निष्ठा आदि साधनों से साधक के चित्त में भगवान् के प्रति निश्चल प्रेम अछण्ड विश्वास और उनकी

1- श्रीमद् भगवत् 9वां स्कंध, अध्याय 13, श्लोक 9-10

2- इस निबंध की पृष्ठ संख्या ४४.

लीलाओं में प्रगाढ़ रुचि हो जाती है । उनके अष्टकलीन लीलाओं के कारण विशिष्ट गोपी, सखी या सहचरी भाव की चर्चा निमग्नता यथेश्वरी ने अनुत्तर आदि विशेष साधनों से गुरु द्वारा प्रदत्त भाव की सिद्धि हो जाती है । फिर तो श्रीदास गोस्वामी के स्वर में स्वर मिलाकर उसकी यही प्रार्थना होती है । 'हे वरोस राधे ! मेरी आशा अमृत के समुद्र को प्राप्त करने की भरति अत्यन्त भारी है । मैं उसे प्राप्त करने की आशा में बड़े ही कष्ट से जीवन के दिन काट रही हूँ । अब तुम मुझे दुःखिया के ऊपर दया करो । तुम्हारी कृपा के बिना मेरा जीवन, मेरा ब्रजवास और श्री कृष्ण दस्य सब कुछ व्यर्थ है । हा गोकुल चंद ! हा मधुर स्मित सुप्रसन्न मुखारविन्दु ! हे दयासगर ! तुम प्रणयपूर्वक जहाँ श्रीमती राधा जी के साथ नित्यविहार करते हो, मुझे भी प्रिय-सेवा के लिए वहाँ से चलो ।''

विभिन्न सम्प्रदायों ने रसिक साधनाक्रम में अपनी साम्प्रदायिक चर्चा और निष्ठा के अनुसार साधक से सिद्ध देह की प्राप्ति और अपने इष्ट देव की मधुर लीलाओं में प्रवेश के साधना क्रम का विस्तार से वर्णन किया है । जिन सबके समक्ष के लिए समित अवकाश है ।

श्री राम सम्प्रदाय की रसिक शाखा में 'वृहद ब्रह्म संहिता' बाधुर्योपासना का श्रेष्ठ ग्रंथ है । उसमें निर्देश दिया गया है 'आनंद सिंधु श्री राम की लीलाओं

1- आशा भरो रमृत सिन्धु मयै कथंचित ।  
 कालोमयातिगमितः किल साम्प्रतं हि ।  
 त्वंचित कृपां मणि विधासस्मि नैव किं मे ।  
 प्राणैर्त्रिजिन च वरोस्त्वकारिणापि ॥  
 हा नाथ गोकुल सुधाकर सुप्रसन्न-  
 स्वनारविन्द मधुरस्मित हे कृपाद्र ।  
 यत्रत्वया विहरते प्रणयैः प्रियार-  
 त्तत्रैव मामपि नय प्रिय सेवनाम् ॥

के सम्प्रदाय प्रवेश में भगवान् का निरपेक्ष अनुग्रह आचार्य श्री कृपा, मंत्र का अक्षमय अनुष्ठान, मंत्रब्रह्म का जीवन में अवतरण सर्व अन्य शरणगति के बिना किसी भी प्रकार संभव नहीं है ।<sup>1</sup>

वहाँ पर इससे आगे कहा गया है कि 'इस दिव्य लीला का अनुभव प्रपन्नजन अपनी सिद्धदेह के द्वारा ही कर पाते हैं । ज्ञान और योग की साधना से साधकों की इच्छा निवृत्त हो जाती है और बिना किसी इच्छा के लीला की प्राप्ति नहीं होती, अतः ज्ञानियों एवं योगियों के वहाँ पहुँच पाने का प्रश्न ही नहीं उठता । वे सक्ति के चतुर्दिक व्याप्त ब्रह्म के सत्यमय प्रकाश में ही लीन हो जाते हैं ॥ केवल रसमार्ग से ब्रह्म अनुशीलन-कर्ता-भक्तजन ही निराकार ब्रह्म ज्योति का भेदन कर नित्य सत्कार परमात्मा की लीला का सक्षात्कार कर सकते हैं ।

इसी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामसखे जी ने भी अपने 'नृत्य राधव मिलन' में इस तथ्य का अनुमोदन किया है कि योगनिष्ठात योगी जन जिस ज्योति में निमज्जन करते हैं और शान्त ब्रह्म जिस ज्योति से घिरा हुआ होता है रसिक जन उस ब्रह्म ज्योति का सङ्ग भेदन कर सकते हैं और तदनन्तर रसिक शारंगिणी श्री राधकेन्द्र सरकार के लीला परिकर में समाविष्ट हो जाते हैं ।<sup>2</sup>

1- बृहद् ब्रह्म संहिता पृष्ठ 69-70

2- चित मूरति भगवान जो रामा ।

ताकी प्रभा भई दूँ नामा ॥

परमात्म धन ज्योति विराजहि ।

फैल्यो ब्रह्म तेज सो कजहि ॥

योगी मंडक जानी कामहि ।

रसिक लखत रवि मूरति रामहि ॥

योगी प्रणव सुसोझहि जानी

उचरत राम रसिक रस ध्यानी

योगी विदुष ज्योति धराममे ।

राम यथारथ रसिकन पाये । — नृत्य राधव मिलन - श्रीराम सखे पृ० 16

श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त पक्ष के आचार्य श्री सेवक जीने श्री ब्रजचंद सर्व वृन्दावनेश्वरी श्री राधाजी के नित्य परिकर प्रवेश के संदर्भ में संकेत दिया है कि 'प्रमादभक्ति की प्राप्ति चाहने वालों को सबसे प्रथम संसार के प्राणी और पदार्थों से यहाँ तक कि अपने शरीर की आसक्ति तक का त्याग करके केवल परमात्मा अपने इष्ट श्री राधाकृष्ण में ही अपनी आसक्ति रखनी चाहिये । जगत की आसक्ति रहित होकर परमात्मा की आसक्ति होने पर प्रेमा भक्ति सिद्ध होती है । समस्त लौकिक कामनाओं का त्याग कर प्रभु से अपना सम्बन्ध जोड़े । मोन धारण कर विशुद्ध मन में प्रिया प्रियतम की नित्य नैमित्तिक लीलाओं का चिंतन करे । अहर्निश इस प्रकार लीला चिंतन करते करते उस साधक को अपना स्म दिव्य शरीर सेवनीय वपु लीलोपयोगी सिद्ध सहचरी स्म प्राप्त हो जाता है । सहचरी स्म दिव्य वपु प्राप्त होने पर उन लीलाओं में कैकर्म महाफल की प्राप्ति होती है । श्री राधा माधव और उनके परिकर वर्ग सेवा साधना के अनंतर धनीभूत एक ही रस तत्व में परिश्रित हो जाते हैं किसी प्रकार का अंतर भेदभाव नहीं रहता । सेव्य-सेवक दोनों तदाकार हो जाते हैं ।'

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री भट्ट जी महाराज श्री श्यामश्याम की निरुंज मंदिर में टहल करने के निमित्त प्रवेश पाने के लिए युगल शतक में अटिेश करते हैं :-

१- पढ़त-गुनत गुन नाम सदा सत संगत पावै ।  
 अस बाढ़ै रस-रीति विमल बानी गुन गावै ।  
 प्रेम-लक्षण भक्ति सदा आनंद हितकारी  
 श्री राधायुग चरण प्रीति उपजै अति भारी  
 निज मल्ल टहल नव कुंज में नित सेवक सेवा करन ।  
 निस दिन समीप संतत रहै सु श्री हरिवंश चरण शरण ॥

—श्री सेवकवाणी - हितध्यान प्रकरण पृष्ठ ॥ १६

श्यामा श्याम पद पावै सोई ।

मन वच क्रम करि सदा निरंतर हरि गुरु पद पंकज रति होई

नंद नंदन वृषभानु सुता पद भजे तजे मन आने जोई

जयश्री मह अटकि रहे स्वामीपन आन कहै मानै सब होई ॥<sup>1</sup>

कि सर्व प्रथम मन, वचन और कर्म से गुरु को भगवत् स्म मान कर गुरुदेव द्वारा प्रदत्त अन्तर्हित वपु से निकुंज मंदिर में श्री श्यामाश्याम की भावना करना, दूसरी युगल शतक महावणी आदि रस ग्रंथों का नित्य नियम से पाठ और राधा कृष्ण युगल नाम का जप, गुरु चरणों, सन्तों में निष्ठा एवं युगल श्री विग्रह की का चित्त पर स्थापित कर उनकी सेवा तथा नंद नंदन और महारानी वृषभानुजा जी की अनुस्यू सोमगा हवि का मन में निरंतर ध्यान करते रहना ये ही सब निकुंज मंदिर के प्रवेश के साधन हैं । श्री भट्ट जी का कथन है कि रसमार्ग में उपरोक्त कथित विधान का उत्पन्न अथवा विरोध स्म में कोई बात प्रस्तुत कर यदि कोई आचार्य अन्य प्रकार की चर्या का अनुवर्तन करने को कहते हैं तो वह सब (कोई) निरर्थक बिकवास है ।

\*\*\*

---

1- युगल शतक पद संख्या 8 सं० ब्रजवल्लभ शास्त्री वेदान्त-आचार्य ।



क ट वा अ ध्या य

=====

### निकुंज लीला, स्वस्थ और सिद्धान्त

श्रीमद्भगवद्गीता में मूर्त प्राप्ति के उपाय और गुणातीत पुष्पों के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है "शाखतस्य धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च" कि "शाख धर्म और ऐकान्तिक सुख यह सब मेरे ही नाम हैं, इसलिए मैं इनका परम आश्रय हूँ।" <sup>1</sup> शाखत धर्म के लिए स्थिर बुद्धि और मनोरणों के स्थायित्व, अतिशय समर्पण-भावना एवं सकल सधना का वातविरण, परमावश्यक है, इसी से ऐकान्तिक सुख की उपलब्धि होती है। अतः कविवार सेनापति कहते हैं "हरिजन पुजन में वृन्दावन कुंजन में बैठि रहो काऊ तस्वर तर जय के" <sup>2</sup> उसे वे, अपने जीवन का परम साध्य मानते हैं। ये वृन्दावन की कुंज क्या हैं? लौकिक और पार-लौकिक परमानन्द की परिरूपना के मुक्त-क्षेत्र हैं। जहाँ सधना से सिद्ध देह प्राप्त साधक <sup>3</sup> श्यामश्याम की, अतीव माधुरी, उनके परम काम्य निकुंज बिहार की विविध क्रीड़ा और लीलाओं के परम स्वाद की निरच्छा निरंतर अनुभूति करता हुआ सम्स्त इन्द्रियों की सकाग्रता में अनुबोधित होकर मनसी सेवा के माध्यम से किंकरी भाव अपनाए उन लीला और क्रीड़ाओं में अपनी सधना के अनुसार सेवा-सानिध्य में निरत रहता है। कुंज का शाब्दिक अर्थ है "वृक्ष लतदि से मंडप सा ढका स्थान" ऐसा स्थान यदि बस्ती की छतपट से दूर हो, किसी सरिता के सुंदर कूल पर स्थित हो, चन्द्रमा की चन्द्रकला से परिवेष्टित हो जहाँ मुकुलित मन से वन-कुसुम अपने सुवास को पवन में उद्वेलित कर उसे शीतल मंद सुगंध की संज्ञा दे रहे हों, जहाँ मीरों का कलहव एवं भ्रमरों की गुंजार हो, हरी हरी

1- श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 14 श्लोक सं० 27

2- कवितार रत्नाकर - सेनापति पृष्ठ 21

3- इस निबंध की पृष्ठ संख्या

घास और कोयल बैलवृंदों से आकाशित रमणीक मन के रमने योग्य स्थली ही, मंद मंद मधुर गति से प्रवाहित समीर में जहाँ कहीं कलरव का समिश्रण शब्द-ब्रह्म से सद्भावात् सम्बन्ध स्थापन की प्रेरणा दे रहा हो वहाँ किसी भी लौकिक अथवा पारलौकिक साधना की उपलब्धि हो सकती है । अभीष्ट सिद्धि में साधन का सर्वोपरी महत्व है । साधन साध्य का विशिष्ट सीपान है । इस निष्कल सकाग्रता में सफलता तो साधक का बरक्स आह्वान करती है :-

फूलि रहीं तस्वेलि जहाँ तहाँ मंद सुगंध समीर झकोरें ।  
निर्तत मोर निकुंज के अगों सुवेलित हैं सिंगरे धुनि जोरें ।  
प्रेम भी कहू है न संसार रहे टक लाइ चितै उहि ओरें ।  
चित्र लिखे से कनक धरे सुख-सिंधु परे मन लेत हिलोरे ।<sup>1</sup>

वृन्दावन के कुंजपुंजों की पावन पृथ्वी श्री हरि के चरण कमलों से अंकित है :-

"पद अंकुज जावक जुत मृध्ना प्रीतम उर अवनी"

श्रीमद् भागवतकार लिखते हैं कि वनराज श्री वृन्दावन की अवनी भगवत् स्म है ।<sup>2</sup> इस कारण इसका सर्वोपरी महत्व है । यह श्यामसुंदर के हृदय की मणि है । अतः दुर्गम से दुर्गम, परात्पर से परात्पर अगोचर से अगोचर, सदा एक रस, नित्य परिपूर्ण जिसका आदि, मध्य, अक्सान कुछ नहीं है । वहाँ स्वयं प्रकश, स्वहृत्ता विग्रह सत्, चित् अनंद धन अपने निजानंद

1- गोस्वामी चतुर शारंगणि विरचित भावना - सागर पृष्ठ 17

2- (1) श्रीमद् भागवत पृ० 10-18 श्लोक ।

(1.1) गोविन्द सच्चिदानंद विग्रह वृन्दावन सुरभूरुहतलासीन सतत "

गोपबल तापिनी उपनिषद्, पूर्व तापिनी 56 वीं श्रुति ।

अनुभवमय होकर विराजते हैं । वृन्दावन की इनकुंजों में :-

भ्रमर कात भुंजार कुंज फूलति की फूली ।  
 लसत सरीवर मीहि कृष्ण फूलन के झूली ।  
 भरी कमल जल उधट स्य झलकत जल मारी ।  
 पवन गवन की हलत प्रेम मानी उमगाही ।  
 दम्पति आनन्द में भरी मिलत परस्पर अंक भरि ।  
 उठत सुगंध सुहावनी प्रतिबिम्बित कवि जुगल वर ॥<sup>1</sup>

यहीं कहीं आस पास ही में श्यामश्याम का प्रिय क्रीवट है जहाँ का पत्ता पत्ता क्रीध्वनि से प्रतिध्वनित श्री राधा नाम से परिपूर्ण है । यहाँ पर श्री दम्पति आनन्द परिपूर्ण होकर परस्पर अंक भर मिलते हैं जिनके श्री अंगों के परस्पर स्पर्श से मनोमुग्धकारी सुवास चतुर्दिक प्रवहमान है और वहाँ के वातावरण में उन युगल शरीरमणि की कवि प्रतिबिम्बित हो रही है । प्रेमानन्द विभोर रसिक वर श्री श्यामसुन्दर और रसिक शरीरमणि श्री राधा - दूल्हा दुल्हिनी-रस खेलते हैं । यहाँ "नितनित लीला नितनित रास" अभ्योजित होते हैं । ये ही सब इस भूमि में प्रेम के उमड़ने के कारण हैं । कुंजों में ब्रज लीला सुख का अनुपमेय आनन्द सदैव प्रसारित होता रहता है । कुंजों की लीलाएँ निकुंज लीलाओं की पृष्ठ भूमि के स्वरूप में हैं । कुंज निकुंजों के प्रवेश द्वार हैं । सनत्कुमार संहिता में निकुंजों को अनेक कुंजों (पचासी) से परिवेष्टित नितति एकान्त रस केलि रत्न गृह कहा है ।<sup>2</sup>

1- भावना सगर - चतुरशरीरमणि विरचित पृष्ठ 24

2- मध्ये वृन्दावने रम्ये पंचशतकुंज मण्डिते ।

कल्पकृष्ण निकुंजेषु दिव्यरत्नमये गृहे ॥

सनत्कुमार संहिता, जैव धर्म में उद्धृत पृष्ठ 720

निकुंज - हिन्दी और संस्कृत कोषकारों ने निकुंज शब्द का तात्पर्य बतलाते हुए उसे "सघन वृक्षों और लता आदि से आवृत प्रेम स्थल" कहा है। शब्द स्त्रीकोष के व्याख्याता श्री तारकनाथ भट्टाचार्य ने उसे "लतादिपि हित स्थले" कहा है। डा० रसाल ने अपने "भाषा शब्द कोष" में निकुंज के स्पष्टीकरण में "गतीष्वपि दूरी यमुना निकुंजे" कहकर उसके अभिसार के अनन्तर प्रेम परिचर्या का एकान्त स्थल होने का संकेत दिया है। वास्तव में निकुंज परम रम्य प्राकृतिक वनस्थली की सुहावनी गोद में अप्राकृत प्रेम लीला का एकान्त स्थल है। जहाँ प्रिय-प्रियतम अपने अभीष्ट परम काम्य के परिपालन में समर्थ होते हैं। अतः अपने विरुद्ध स्म में निकुंज रसकेलि और सुरतिविहार का स्थान है। श्री कृष्ण भक्ति के विकास संदर्भ में जब वैष्णवी में कान्तभाव की उपासना का प्राधान्य हो चला और उनकी रस-स्म से उपासना की वृज-कृन्दावन में विरोध प्रचलन हुआ तो उनकी सुरति विहार की लीलाएँ निकुंज लीला की संज्ञा से अभिहित होने लगीं। कालान्तर में निकुंज का अर्थार्थ होकर वह श्री राधा कृष्ण की अलौकिक अप्राकृत कामकेलि की अभिव्यजना करने लगा। निकुंज लीला का प्रवेश का तात्पर्य सहचरी स्म में श्री राधा कृष्ण की दिव्य प्रेम लीलाओं में कैर्क्य साधना की उपलब्धि की योग्यता लौकिक - इनके निजी लीला परिकर में सम्मिलित होने की विशिष्टता हो गया। रसिक भक्त और श्यामाश्याम की माधुर्य भाव के संज्ञा उपासकों के भक्ति भाव से अनुप्राणित होने के फलस्वरूप उनके इह लोके लीला संवरण को निकुंज गमन अथवा निकुंज लीला प्रवेश कहा जाने लगा क्योंकि श्यामा श्याम के भक्त का कभी विनाश नहीं होता। उसे सलिलय, सस्युग्म आदि मुक्तियाँ की भी कामना नहीं होती। डा० राण बिहारी गोस्वामी ने अपने शोध प्रबंध में निकुंज का परिचय इस प्रकार दिया है।<sup>1</sup>

1- रसिकों ने कृन्दावन की कुंजों का कनिबड़ी क्लीनता और

अतः अपने नवीन परिवेश में निकुंज श्री कुंज बिहारी विहारिनि की सुरति विहार लीला की विशिष्ट श्रुती हो गई जिसमें श्री श्यामाश्याम स्नान करके, श्रीार कुंज में पट-पीताम्बर, रूप सौंदर्य के उपकारों से सुसज्जित होके, मीजन कुंज में मीगवती सखियाँ के नवीन मेवा मिठाई और शाकादि से पूर्ण तृप्त होकर, लताकुंज में सुवासित पुष्पों से बने सुवासित बिहौनों पर विश्राम करके, सीस महल कुंज में किशोरता से उमगे अंग प्रत्यंगों में उन्मत्त अस्तस्य से बके शयन मीग की इच्छा और सेज-विलास के हुलास से पूर्ण होकर, चारों ओर सखियों के समूह द्वारा किशोरी किशोर की रति विलास सूचक रग रगनियों में गायन समाज और मुख्य सखी द्वारा आरती उतारने के अनन्तर सुरत समागम हेतु नव निकुंज में प्रवेश कराती है ।

नव-रु निकुंज प्रवेश की तैयारी में उपरिलिखित कुंजों के उपादानों के अतिरिक्त चित्र कुंज, मणि कुंज, कदम्ब कुंज माधुरी कुंज प्रभृति कुछ अन्य कुंजों की भी गणना है जो श्री श्यामाश्याम के सुरति संयोग की उनके उत्साह वर्धन के निमित्त पूर्व पीठिका के रूप में सतत सक्रिय देख पड़ती हैं :-

चित्र विचित्र कुंज राजत नव वैलि वृक्षवर ।

बहुविधि पंकी रूप धरे शोभित तिन ऊपर ।

और तीव्रता के साथ किया है :-

चित तैं न टरे ब्रवि कुंजन की ।

अपनी रची श्याम सुधावर की, जु वही सलिता सुझ पुंजनि की ।

सित नील असन सुपीत प्रसून, कहां लों कहीं अलि गुंजनि की

श्री विहारी विहारिनिदास कहे, चित तैं न टरे ब्रवि कुंजनि की ।

प्रेम के धनीभूत होने की दशा में वृन्दावन के विहार का क्षेत्र भी स्मिष्टता जाता है । वृन्दावन की ओर अधिक सूक्ष्म प्रदेश में निकुंज ही हैं । अतः नित्य विहार रस की श्रृंखला स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय में निकुंज रस कहने की परंपरा है ।  
x x x x उनके सेवा ठाकुर श्री कुंज बिहारी हैं विरोध कर इस सम्प्रदाय के रसिकों ने निकुंजों का वर्णन बड़े चाव से किया है ।

कृन्दावन की शिखर निकुंज प्रिया प्रियतम की कम्पस्थली हैं । ये अत्यन्तमनोहर हैं और काम के आवेश को अनेक प्रकार से बढ़ाने वाली है । (सम सखी की वाणी सखी 56) कृन्दावन की इन कुंजों में अलि गुंजते हैं । कुंज मनों मदन के सदन हैं । उनमें विचित्र कौतुक छाया हुआ है । यह कौतुक प्रिय-प्रियतम की निकुंजों में ही रीके रहता है । प्रिय-प्रियतम को ये निकुंज अत्यन्त प्रिय हैं । x x x सखी सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार कृन्दावन की इन निकुंजों में विधिवन निकुंज परम गोप्य और प्रिय-प्रियतम की परम एकान्त स्थली है । इसकी शोभा और भी विलक्षण है । मर्हा प्रेमार्नन्द इस निकुंज में प्रतिपल पल्लवित होता रहता है । प्रिया लल के आनन्द के कारण यह निकुंज अत्यन्त कवि मय है ।<sup>1</sup>

सीसन के कीर चित्र रंग भरि महल बनायो ।  
जल बिन सरवार लसत एक सीसा सौ कायो ।  
कृत्रिम झग तरु बेलि सब झलकत कवि अद्भुत वान ।  
बुहियन कर्त मेय जह सो शोभा मन को हरन ।<sup>2</sup>

इस प्रकार चित्र कुंज में सब कुछ कृत्रिम उपादानों की सृष्टि है उस का रस अद्भुत है जहाँ बिना ही यत्न किये रस विहार के लिए उद्दीपन हो रहा है ।

श्री कुंज बिहारी एवं कुंजबिहारिनि इन कुंजों के उपादानों के उपयोग करते हुए नवनिकुंज की ओर बढ़ रहे हैं । प्रेमधीन रसिक बिहारी प्यारी की सार सभार करते जाते हैं :-

1- कृष्ण भक्ति में सखी भाव - डा० शरण बिहारी गोस्वामी

पृष्ठ 306

2- भावना सागर, सप्तम प्रकाश उत्तरार्ध, गो० चतुरशिरामणि ।

वन की कुंजनि कुंजनि डोलत  
 निकसत निपट सकीरी वीथिन परसत नाहिं निचोलनि ।  
 जात पाछे ललिता आगे श्यामा प्यारी ।  
 ता आगे पिय मारग फूल विहावत जति ।  
 कठिन क्ली बीन बीन न्यारी न्यारी प्यारी जू के चरन  
 कोमल जानि सकुचत जीय गड़वै हू ठरात ॥  
 दीर्घ लता कर सौं निरवारत, पाछे गहि ठारत पल्लव पात ।  
 सूरदास मदन मोहन पिय की अधीनताई देखत री मेरी नैन 'सिरात' (1)

सभी कुंज निकुंज कृदावन में यमुना की कंकनाकार परिधि में स्थित है जहाँ की अधीश्वरी  
 श्री वृन्दादेवी श्यामश्याम के लिए वन की शोभा में क्षण प्रतिक्षण परिवर्तन करती  
 जाती है :-

किन किन वन की ब्रवि नई, नवल जुगल के हेत ।  
 समुझि बात सब जीय की, सखि वृन्दा सुझ देत ॥ 2

यदि नहीं नव निकुंज में श्यामश्याम के प्रवेश के पूर्व श्री वृन्दा देवी उसका  
 सम्मार्जन भी करती है । श्री हितहरिकेश जी ने राधा सुधानिधि में 'पाद स्पर्श  
 रसोत्सव' के संदर्भ में उक्त निकुंज के मार्जन (सम्मार्जन) का वर्णन किया है ।<sup>3</sup>

सम्मार्जन शब्द मार्जन में सम् उपसर्ग लगा कर बना है । उसका अर्थ है  
 पुष्पों के पटल आदि की झाड़ू पोंछ कर देना । वृन्दा देवी का सहचरी अथवा  
 दस्य भाव इस कर्ष में सतर्कता का परिचायक है । लता आदि से निर्मित इन

1- सूरदास मदनमोहन की जीवनी और पदावली - अग्रभूषण प्रेस मथुरा पृ 23

2- श्री ध्रुवदास की वयलीस लीला, वृन्दावन सतलीला पृष्ठ 14

3- पादस्पर्श रसोत्सव प्रणतिधि गोविन्द मिन्दीवर

श्यामं प्रार्थयितुं सुमञ्जुलरहः कुंजश्च सम्मार्जितुम् ।

- श्री हितहरिकेश कृत राधा सुधानिधि श्लोक संख्या 60

कुंजों की एकान्तता गोपनीय व्यापार के सम्पादन-सामर्थ्य की द्योतक है । इन कुंजों को मंजुल भी कहा है क्योंकि इनमें पुष्प, पत्र, फल और स्थान की सुंदरता है । निर्मिता के बिना विशेष प्रयत्न के इनके चारों ओर स्वतः निर्मित लताविल आदि का परकोटा है, और अस्तारण के सौष्ठव के साथ निर्मणि कौशल का प्रदर्शन है । सम्यजन के उपरान्त श्री राधा माधव को इस नव निकुंज में लया जाता है । इस नव निकुंज के शोभा सौंदर्य का क्या कहना है उसकी वृन्दादेवी ने स्वयम् कर स्वयं रचना कार्ही है । श्री हित हरिवंश कहते हैं - "हे सभी नवनिकुंज की रचना बड़ी ही सुंदर है उसके भव्य भवन का निर्मणि माधविका (चमेली) और केतकी की सुवासित लताओं से हुआ है । उस नव निकुंज में शरद ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि का प्रकाश रहता है और शीतल मंद सुगंध पवन का प्रसार होता रहता है । परिमल के लोभ से लुब्धक और वहाँ श्रमित होकर भी मँडराते रहते हैं और कोयल एवं कीर नाचते रहते हैं । वहाँ के वृक्ष और लतादिक के विविध रंगों के कोमल किशलय से श्री राधामाधव की मृदुल सुरति शेषा वनाई गई है जहाँ पर विविध पेय पदार्थ, सुवासित अमृत मधु अक्षय आदि से भरे सुवर्ण कलश और पात्र बड़ी सावधानी और सभार के साथ पृथ्वी पर सजस्य हुए रखे हैं । उस सुन्दर शेषा पर विराजमान श्री किशोर किशोरी जो वाक रचना में अति कुशल हैं परस्पर हास-परिहास में निरतिष्ठ हैं जिसके बीच बीच में प्रियतम प्रियजी के उरोजों का स्पर्श करने का प्रयास करते हैं परन्तु प्रियजी उनको क्त्र से आवृत्त कर लेती है । इस दुराव से प्रियजी की परागमुखता और उनका कुटिल भ्रमण देखकर श्री श्यामसुंदर का अनुराग बढ़ जाता है , प्रेम पिपासा के तीव्र आवेग में वे विवश हो जाते हैं और प्रियजी के कंधों को कस कर पकड़ लेते हैं । फिर वे चतुर शिरोमणि उनके नीवी का बंधन छील देते हैं और उनके नीलचिल को हटा देते हैं प्रिया जी इस पर कृत्रिम कोप का अभिनय कारती है और 'नहीं नहीं' के अमृत वचन कहती जाती है । तदनंतर श्री श्यामश्याम परिभ्रम, विपरीत रति, सरस सुरति केलि का परस्पर सुख वितरित करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानों इन्द्र नील मणि के वृक्ष को सुवर्ण निर्मित केलि ने आच्छादित कर लिया हो । उन सुरति रत्नधारियों के मिथुन संग्राम से ललाट-मटल श्रम सीकर आवृत्त हो चुके हैं जिसका ललितादिक सभीजन मन में अनवरत अनुराग लिए अपने क्त्रांकल से प्रक्षालन कर देती हैं । इस कृष्ण रसामृत सार में अनुगमन करने वाले भक्त श्री राधाजी



के सुकुमार पद पद्यों की कृपा से प्रेम लक्षणा भक्ति के अधिकारी होते हैं ।<sup>1</sup>

निकुंज लीला के अन्य गद्यकों ने 'नव निकुंज' को 'मोहनमल' कह कर वहाँ श्री श्यामश्याम की सुरति केलि की संयोजना की है । श्री हरिव्यस देवजी के अनुसार मोहन मल्ल के प्रशस्त अंगन में परम कमनीय मोहन मण्डल है जिसके ऊपर परमेश्वर परम वैभवपूर्ण अष्टकोण का सिंहासन है । उस सिंहासन के आठों कोनों पर निज परिकरों सहित आठों यथेश्वरी विराजमान हैं जो मध्य में सिंहासन पर बिजाली हूँ मोहन, मोहिनी की सेवा में तत्पर हैं ।

1- देखत नव निकुंज सुनि सजनी लागत है अति चास ।  
 माधविका केतकी लता लै, रच्यो मदन आगास ॥  
 सरद मास, राकानिसि, सीतल मङ्ग सुगंध समीर ।  
 परिमल लुब्ध, मधुव्रत विधिकत, नदत कोकिला कीर ॥  
 बहु विधि रंग मृदुल किसलय दल, निर्मित पिय सखि सेज ।  
 माजन कनक विविध मधुपूरित, धरे धरनि पर हेज ॥  
 तापर कुसल किसोर किसोरी करत हास परिहास ।  
 प्रीतम पानि उरज वर पासत प्रिया दुरावत वास ॥  
 कामिनि कुटिल भ्रुकुटि अवलोकत दिन प्रति पद प्रतिकूल ।  
 आतुर अति अनुराग विवस हरि धाह धारत भुज मूल ॥  
 नगर नीकी बंधन मोचत रींचत नील निचोल ।  
 वधू कपट हठ कोप कहत कल 'नैति नैति' मधु बोल ॥  
 परिभ्रमन विपरित रति कितरत सरस सुरत निजु केलि ।  
 इन्द्रनील मनिमय तरु मानों लसत कनक की वैलि ॥  
 रति रन मिथुन ललट पटल पर भ्रुं श्रम जल सीकर संग ।  
 ललितादिक अंचल शक शीरत मन अनुराग अंगी ॥  
 हित हरिवंश जथामति वरनत कृष्ण रसामृत सार ।  
 प्रवन सुनत प्रापक रति राधा-पद अम्बुज सकुमार

—श्री हित चोरासी पद संख्या 30, वेणु

प्रकाशन, कृदावन ।

अलक लहैती लाड़िली अलक लहो सुकुमार  
अलक लहो मोहन महल अलक लहोई विहार ।<sup>1</sup>

इस विहार का दर्शन और स्वामी-स्वामिनी की प्रत्यक्ष सेवा का आनंद वर्णनीय है । सधियों को इस अपने परिचर्या में जीवन का परम लक्ष्य मिल रहा है ।

सखी सहचरी फूली तन में, सरस सुंदरी महमही मन में ।  
प्रेम मंजरी परम सुहाई, मन मोहिनी महा मनभाई ।  
कनक तनी रति बनी योवनी, चयत कारिनी सुभ सुदासनी ।  
एक वरन तन वैस किसीरी, एक स्य रस माहिं अकोरी  
अमकि अमकि टहलै अनुसरही, जो हरि प्रिया जू आज्ञा कारही  
रंग रंगीली के रंग रचवै, मंगल विमली खेल मचवै ।  
चरन चरन पर परत एक गति, कर पर करतारिन की अति अति ।  
यह सुख मुख कहु कहत न आवै, विन श्री हितु कृपा को पावै ।<sup>2</sup>

इस प्रकार निकुंज रस स्वस्व परम ब्रह्म अवतारी श्री कृष्ण और उनकी स्वश भृता श्री राधा की दिव्य सुरति विहार श्रुती है जो परमस्व स्य श्री कृन्दावनधाम, कंकना कर श्री यमुना जी और श्री राधा जी की स्वश भृता सहचरियों की किंकरी भावना और समर्पण वृत्ति से उन दिव्य दम्पति के आनन्दतिरेक का कारण बनी हुई है । निकुंज निखिल सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य से महित उन सर्वशक्तिमान की प्रेमीदम्पत, अधीनता की लीला भूमि है जिसका कण कण परम पावन और तेजोमय है । उन युगल बिहारी के धाम तत्व की अंगसंगिनी होने के कारण यह भी उनकी ही भाति परम पवित्र और अख्यन्त दिव्य है ।

निकुंज में अनेक कुंज सधियों के नाम के होते हैं जैसे हित सखी कुंज, ललिता कुंज, विशाखा कुंज, चन्द्रावली कुंज, रंग देवी, सुदेवी कुंज आदि । इन

1- सेवा सुख, महावणी पद संख्या 82

2- श्री हरिव्यास देव कृत महावणी सेवा सुख पद संख्या 84

कुंजों में नित्य-नैमित्तिक विहार के मनीष्य होते हैं। लाडिलो-लल और सखियों की हल्का-स्व प्रेरणा के अनुसार ही कुंजों में प्रिया प्रियतम की विहार लीला देखी होती है।<sup>1</sup> अतः यह मान कर चलना कि निकुंज श्री श्यामा श्याम की केवल सुरति ब्रीड़ा का मध्य भवन और रमण स्थली है सर्वांग में उचित नहीं है। प्रधानतया उसका प्रिया प्रियतम के सुरति विहार से ही सम्बन्ध है परन्तु निकुंज में उनके रस-प्रमोद और रस-विग्रह की अनेक भूमिकाएँ उपस्थित और विलीन होती रहती हैं। नित्य विहार से निकुंज लीलार्षी का यही तात्त्विक अंतर है। निकुंज जैसा पूर्व में कहा जा चुका है अनेक कुंजों के समूह का नाम भी है। इनमें से प्रत्येक कुंज प्रेम-प्रमोद की विशिष्ट साधन सम्पन्नी संकलित होता है (जैसे स्नान कुंज, भोजन कुंज, शीश महल कुंज शृंगार कुंज आदि)। इनके कर्तव्य निर्वह अथवा परिचर्या में प्रमाद आदि के विवाद प्रायः हो सकते हैं जो राग द्वेषादि के दोषों के आधार पर नहीं वरन् प्रणय-कोप-मूलक और प्रेम विवर्धक ही होते हैं। श्री हरिव्यास देव जी कहते हैं :-

“निकुंज में प्रातः से शयन पर्यंत प्रेम विवर्धन करने वाली अनेक लीलार्षी होती रहती हैं जो अंततोगत्वा श्री युगल सुंदर और सखियों के मन में अनुराग बढ़ाने वाली होती है।”

मंगल आरति शयन प्रर्यता, जुगलचंद की केलि अनंता  
सुचित, सुचित्तन रंग बढ़ावे, रंग रंगीली के मन भावे।<sup>2</sup>

श्री हितहरिकृष्ण जी ने अपने राधासुधानिधि में इस संदर्भ में ‘पाद-स्पर्श महोत्सव’ शीर्षक निकुंज लीला का एक बड़ा ही मनोरंजक प्रसंग प्रस्तुत किया है।<sup>3</sup>

बात ऐसी हुई कि मोहन महल में रस केलि निमग्नता के बीच कौतुक हेतु श्री राधा माधव को चौसर खेलने की सूझी। दोनों आमने सामने झुट गए।

1- श्री राधा सुधानिधि में निकुंज लीला युक्त भावनाओं का चिंतन पृष्ठ 112, संकलनकर्ता श्री लक्ष्मीनारायण वैद्य, वृन्दावन।

2- हरिव्यास देव कृत महावाणी सेवा सुभ पद संख्या 83

3- राधा सुधानिधि - श्री हितहरिकृष्ण श्लोक संख्या 60

श्री श्यामसुंदर की दृष्टि निरंतर श्री श्यामजी के स्म लाक्ष्य पर ही पड़ती रही अतः वे दावों पर क्रमशः अंगद, हार, पड़ुची, पीताम्बर, किंकनी हार गए । फिर एक दाव अजमाया तो इस बार में चन्द्रिका को भी दे बैठे । फिर कुछ सोचकर शतरंज खेलने का श्री श्यामा जी से आग्रह किया संभवतया इसी में जीत जायें । परन्तु उसमें श्री दाल न गली फिर लौट कर चौसर (चौपड़) पर ही आ गए । बार बार की पराजय जनित असियाहट से उनकी अंखि नीची थीं । अतः अपने उत्कर्ष हेतु उन्होंने स्नैटार्ड (रौंटी) का मोका निकाल लिया जिसे श्यामा जी ने पकड़ लिया :-

चौपड़ खेलत बदि बदि बाजी लाल रचत बहु विधि चतुरार्ड ।

मारत गोट रौंटी करि मोहन, गहि रही हथ प्रिया लखि पार्ड ।<sup>1</sup>

इस पर सहचरीगण हंसने लगी और कुछ तू मैं हो गई । श्री ललिता सखी ने हस्तक्षेप किया प्रियाजी कहती थीं कि इनके बारह दाव हैं लालजी कहते कि सोलह । प्रियाजी की स्म निहार में आभिर उनकी ओर से खेल में प्रमाद तो चल ही रहा था । श्री ललिता जी बोलीं दोनों पक्षों को सच्चाई पर रहना चाहिये बार बार स्नैटार्ड कर खेल का रस-विक्षेप करना बुरा है । इस पर लालजी थोड़े झपे । खेल पुनः जमा और अंत में स्वामिनी जी की जीत और लालजी की पराजय हुई । सखियों ने विजय घोष किया जिसकी जय जय ध्वनि से निकुंज गूँज उठा ।<sup>2</sup>

निकुंज के खेलों का नियम है कि पराजित पक्ष को अपनी हार की स्वीकृति देनी पड़ती है । यदि विवाद हो तो निकुंज के न्यायालय में उसका फैसला होता है । लालजी को पराजय स्वीकार न थी अतः मामला निकुंज न्यायालय के सुपुर्द हो गया । उसका मकन बड़ा विशाल और भव्य होता है ।

न्यायाधीश के चुनाव के लिए ललितादिक अष्ट सखियों की सभा हुई जिसमें सर्व सम्मति से राजीव लोचना सखी और मालती सखी न्यायाधीश चुनी गई । निकुंज-

-----  
1- प्रिया पीताम्बर मुरली जीती ।

हा हा कारत न देति लाड़िली चरन लुठति निसि बीती ।

-विट्ठल विपुल की वणी ।

महाराज्य की एक ब्रत स्वामिनी श्री राधाजी के इस मुकदमें की एक पक्ष होने से उसकी पैरवी एडवोकेट जनरल श्री ललितजी ने की । विधि विधान से मुकदमा क्लृप्त श्यामसुंदर की ओर से श्री चन्द्रावली ने पैरवी की होली के दिन फैसले की घोषणा की गई ।

“चौपड़ के खेल में प्रियतम निर्विवाद पराजित हुए हैं और श्री राधा जी की विजय सक्षी और प्रमत्ता के आधार पर सिद्ध है अतः धर्मशास्त्र के अनुसार तो वे हारे हैं परन्तु अपनी प्राणशरी की मुझ बलि को निहारते हुए उन्होंने उनके प्रेम को जीत लिया है । निकुंज परिपाटी के अनुसार जो हारता है वही जीतता है । अतः सरकारी फैसला है कि महाराणी सर्वशरी जीती और धर्मशास्त्रानुकूल प्रियतम पराजित हुए परन्तु निकुंज प्रेम में श्री राधा रानी के नियमानुसार श्री श्यामसुंदर कृष्ण भी जीते जीते”

मुकदमें में तो किसी प्रकार बात सध गई परन्तु व्यवहार पक्ष में इस पराजय के बदले प्रियतम से एक गोट लेने का एक सार्वजनिक सभा में जिसमें श्री प्रिया प्रियतम दोनों उपस्थित थे निर्णय हो गया । इस “पाद स्पर्श रसोत्सव” की संज्ञा दी गई ।

बड़े भारी उत्साह और विशेष सज सज्जा से इस उत्सव के सम्पन्न होते समय लालजी से प्रिया जी के पाद स्पर्श के लिए निवेदन किया गया । वे जैसे ही पाद स्पर्श के लिए हुके प्रियाजी ने उन्हें रोक दिया और अकमल देकर सिंहसन पर बिठा लिया । श्री राधा जी के जिन चरणों का स्पर्श करने लालजी चले थे वे कैसे हैं इसका राधा सुधानिधि में मनोहारी वर्णन है ।

कर्म तुलिक्या करिण हरिणा या त्वत्प के रजिता ।

नाना केलि विदग्ध गोप रमणी कृन्दे तथा वीदिता ।

या संगुप्ततया तथापनिशदा हृदयेव विद्यातते ।

श्री राधा चरण व्ययी मम गतिलस्यैक लीलामयी । ।

—श्री राधा सुधानिधि श्लोक संख्या 205

1- गोदधरि चूमि कक्ष परसि घनश्याम ने, चित्र जावक विचित्रित रचेरी ।

विविध क्रीडन मध चतुर ब्रज नगरिन, नाय निज शीश मस्तक धरेरी ॥

गुप्त अति निगम अणमन नहीं लब्धि, परत रहत मन वच सदा उर बसेरी ।

नृत्य लीला ललित सकल सुख पगी, श्री राधिका पग-पद-कमल गति सुमेरी ॥

—हरिलाल व्यास कृत श्री राधा सुधानिधि की टीका ।

इस प्रकार सर्वेश्वरी श्री राधा के निकुंज महाराज्य में निकुंज लीलामधुरातिमधुर रस मंदाकिनी की अजसुधारा है प्रवहमान है जो अनुभूति में प्रभाव में अमृतमय और स्वाद में सौष्ठवपूर्ण है । इसमें अवगाहन कर्ता जीव (सहचरी वर्ग) अपने परम काम्य रस-सागर में निमज्जित रहते हुए सतत आनंद मग्न रहते हैं । उन्हें परलोक का कोई आकर्षणहीन होता क्योंकि इस लीला मधुरी के लिए इन्द्रादि देवगण प्रतिदिन आकक्षा करते हैं ।

निकुंज लीला का नित्य और नैमित्तिक क्रम — इस निबंध में लीलार्थों के भेद-प्रभेदों का विश्लेषण करते हुए पूर्व में अष्टकालीन लीलार्थों का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है । अष्टकालीन लीलार्थ ही निकुंज लीलान्तर्गमनित्य लीलार्थ है । ब्राह्म मुहूर्त में श्री युगल शिथिल गीत, अस्तव्यस्त कृत्र, शयन किए होते हैं तभी सन्निया उन्हें इस स्थ में देव दर्शन का लाभ प्राप्त कर लेती हैं । प्रकाश होते ही वे उन्हें 'आरस तजिये जउ बलि, ब्रजलगी भुरहरी होन' के सक्ति से जगाती है, मार्जन कराती है, उनके रति-चिन्हों को मिटाती है और मंगला आरती कराती है । तदनन्तर स्नान-कुंज में स्नान शृंगार कुंज में शृंगार, शीश कुंज में शोभादर्शन और भोजन शृंगार में शृंगार कुंज में बाल प्रयोग समर्पित कराती है । आरती कुंज में शृंगार आरती के अनन्तर श्री युगल भवन बिहार होता है और मध्यन्हवेल में युगल को भोजन कुंज में रत्नजटित कंचन चौकी पर बिठाकर राजयोग समर्पित किया जाता है । कृष्ण भोग कृत्तीसौ व्यजन से युक्त भोज्य पदार्थ होते हैं । भोजन के पश्चात् मध्यन्ह कालीन विश्राम और फिर उत्थापन होने पर तर मेवा औषधिविधि मिठाई का भोग अर्पित किया जाता है । वहां से फूल सखी की फुलवारी में श्री युगल का वाटिक-विहार होता है । संध्या होने पर संध्या आरती की जाती है जिसमें मनोहारी संगीत पदगायन और नृत्यादि होते हैं चार घड़ी तक श्री युगल अपनी सकान्त कुंज में विश्राम करते हैं और फिर भोजन कुंज में व्यास के लिए पधारते हैं । भोजन के अनन्तर शयन कुंज में गुदगुदी कमल शैया पर लेटते हैं जहां सहचरीगण उनकी पैर चप्पी कराती हैं और उनकी उनीदी दशा में वहां से चली जाती हैं । मध्य-रात्रि होने पर सखीजन श्री श्यामाश्याम

की पुनः जगाती है। उनका श्रृंगार काती है। तदन्तर नृत्य संगीत और रास होता है। रास का अवसान विवाह-लीला में होता है। विवाह के अनंतर सुहगरास की रहसि केलि होती है जिसे देखकर सहचरीगण अपने भाग्य की भूरि-2 सराहना करती है।

नैमित्तिक लीला — नित्य के दैनिक कर्तव्य-कर्म कालान्तर में उबा देने वसि होते हैं। अतः जीवन में समरसता बनाये रखने के लिए उत्सव समारोह व ऋतु अनुकूल चर्चा और यथा समय क्रमानुसार आनंद उल्लासपूर्ण समायोजनों की अनिवार्यता है। निकुंज लीलाओं में इनकी नैमित्तिक लीला संज्ञा है। नैमित्तिक लीलाओं में होरी बसंत, हिंडोला और रासलीला विशेष समाकर्षक है अतः सभी सम्प्रदायों की पूजा उपासना पद्धति में इन पर अधिक बल दिया गया है और लीला गायकों ने इनका विशद रूप से गान किया है। इसका उत्सव क्रम का प्रायः बसंत से हुआ है, और दीपावली में उनका उपसंहार होता है। श्री पंचमी के दिन होरी बसंत की स्थापना होती है और उस दिन से रथ यात्रा तक रंगीली होली, धमार गायन, हो हो कर के नृत्य संगीत और नाना प्रकार की मद मस्ती भरी क्रीड़ाएँ निरंतर सम्पन्न होती हैं ५ रहती हैं। अक्षम तृतीया के दिन पूजन, ग्रीष्म ऋतु में जल क्रीड़ा, वनबिहार, जल यात्रा, रथयात्रा में युगल किशोर आनंद विभोर रहते हैं। वर्षा ऋतु में कदंब कुंजों में सखियाँ हिंडोला डलकर राधामाधव को झुलती हैं। रिमझिम बूंदों में वृषा के नीचे छड़े होकर वर्षा की फुहार का आनंद विशेष स्वाकर्षक है। श्रीमद् जी ने काली कामरिया की झीई में उनके परस्पर अलिंगन का मनीहारी वर्णन किया है।

1- ठहरे दोउ एक झुहिया मही ।

कशीवट तट जमुना जल में, निरखत चंचल शही ।

कारे कामरिया अंतर दम्पति, श्यामश्याम लघटाही ।

श्री मट कृष्ण कूट में कंचन, जलवराधत अलकाही ॥

पवित्रा धारण किए उनकी विशेष आधा प्रसूति होती है जिसका महावणी में प्रभावपूर्ण संकेत है ।<sup>1</sup> झुला झूलन वर्षा ऋतु के आनंद समारोह का विशेष उत्सव है । हरियाली तीज और हरियाली अमावस में रंग रंगीले कस्त्राभूषणों से सुसज्जित झुला झूलते दम्पति की आभा वर्णनीय होती है ।

रंग हँडोरे झूलत रंग भरे पिय प्यारी ।

अति आतुर आसक्त स्याम-यन्त्रस्या सुठि सुकुमारी ।

हरित अर्चन बन सधन लगति नव वचन रचन रचिकारी ।

श्री दास किशोर भये वर भागिनि नित्य निकुंज बिहारी ॥

— श्री किशोरदास जी की वाणी वर्षोत्सव पद सं० 104

वर्षा के अनन्तर शरद ऋतु सञ्चियों को विशेष सुखदाई है । इसमें कद्रमा का उज्ज्वल प्रकाश, निर्मल यमुना पुलिन, हीरों के समान चमकती बालुका, शीत के मनीषुधकारी प्रभाव से प्रेम की अतुरता, रस-संचार का वातावरण सब कुछ निकुंज लीला विस्तार के अनुस्यू होता है । विजया दशमी और शरद पूर्णिमा के उत्सव इसमें विशेष सुखकर हैं परन्तु उनसे भी अधिक स्थावर्क रासोत्सव है जो निकुंज रस की परिव्याप्ति में सर्वाधिक अनुकूल है । सभी वैष्णव सम्प्रदायों में रासोत्सव का विशेष महत्व है । राम सम्प्रदाय की रासिक शास्त्रा के कवियों ने लीला नयक श्रीराम की रासलीला का विशेष उत्साह से वर्णन किया है ।

सञ्चिन विच नृत्यत युगल किशोर ।

विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि कमलत चहुँ ओर ।

कककार रास मंडल रचि रंग रागिनी के कल सार ॥

1- पवित्रा पहिरे प्रीतम प्यारी ।

पचरंग पाट जरीवर फौदा सोभा बढिल महारी ॥

साविन सोज रचि कनक थार विच पूजा विधि विस्तारी ।

अप्राण प्रियन के प्राणत्रान हित पहिराये सुखकारी ।

यह सुख देखि देखि अनुरागहि भाव भरी सहचारी ।

श्री हरि प्रिया की या कवि ज्यार करि तन-मन बलिहारी ॥

— हरिव्यास देव कृत महावणी, उत्सव सुख पद सं० 99



चन्द्रकला विमलादि रंगीली, वीणा मृदंग लिए का जोर ।  
 चंद्रा चन्द्रवती मिलि गावति, शेषा स्वरहि भरति रस वीर ।  
 मदनकला कर्ताल बजावत, सारंगी नंदा टंकोर ।  
 पिय शिर सुभग सुक्रीट विरजै, चन्दरिका सीता शिरदोर ।  
 चंद्रहार धारी उर चमकत, पिय तन मोतिन माल उजोर ।  
 कोटि कोटि रतिकाम विमोचन, नटवर वैभ श्याम अरु गौर ॥  
 स्म माधुरी कहि न परत है, अंग अंग बनि के उठत हिलोर ।  
 कर से कर दोऊ मिलि धारे, नयनन सैन कसत दुहुँ ओर ।  
 कबहुँ अधर रस लित परस्पर, रसमत वारे पिय चितचोर ।  
 धारी हाव पियाचित काधक, पिय के भाव धारी निज ओर ।  
 दोउ रस सिंधु मगन रस लम्फट प्रभु अली नहिँ चाहत मोर ।'

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है 'सुरति केलि' के लिए विवाह का पूर्व समर्थोजन आचार और लोक व्यवहार दोनों दृष्टियों से एक अनिवार्यता है निरुंज लीला के गायकों ने उसका अवश्य ही विधान किया है । विवाह के समय के लोकाचार सभियों और बड़ी बड़ियों की हस परिहास और तीव्र काम पिपासा उत्तेजक गीत माला प्रेम रस के उद्देक में विशेष सहायक होते हैं । श्रीराम सम्प्रदाय की रसिक शास्त्रा में तो श्री राम के वरना स्वस्म से ही इसका सूत्रपात होता है । विवाह में एक विशेष आकांक्षा उत्पन्न और हर्षातिरेक होता है । देवीस्थान इसके लिए सबसे उपयुक्त अवसर है :-

राम बना कहु के गयो टौना ।  
 जवतै सखी लखी वह मुरति सुरति हिय तैं जस्त अजौना ।  
 भय न लाज उर मै न महाबल नैह उमीगत ही सर होना ।

- 
- 1- स्वामी अग्रदास की वाणी से रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना में उद्धृत पृष्ठ 426 भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'

पैन कटल चुभी नैनन में दिन नहिं चैन रैन नहिं सोना ।  
 कूट धीर दृग नीर कपोलन झोलि बोल कहु बोलि सको ना ।  
 टूटि व हत कुल कानि तीर तस प्रेम प्रवाह स्खै रोकी ना ।  
 में मरि नैन झोलि घूँघट पर करिहों देह सुगंधित सोना ।  
 वैजनाथ जानकीनथ के हथ विकात लोक सकुचोना ॥<sup>1</sup>

इस प्रकार निकुंज लीला उन सर्वशक्तिमान परब्रह्म का अपनी अल्लादिनी शक्ति और उनकी स्वशा भूता सभी सहचरियों के साथ सभी के रसल्लास के लिए व्यवस्थित आनन्द केलिक्रम है । सुरति उसका विशेष अंग है । निकुंज परम रम्य सौंदर्य, माधुर्य विभूति मंडित एकान्त स्थली है और भगवान् के एकान्तिक सुख स्वस्व और शाश्वत धर्म की प्रतिभूति है अतः जीवी के कल्याण का राजमार्ग है ।<sup>2</sup> हाँ उसकी सधना दुरुह है और जोछिम से झाली नहीं है ।

रामभक्ति की रसिक शास्त्रा में निकुंज लीला का स्वस्व -

राम भक्ति की रसिक शास्त्रा में श्री राम अवतारी की तथा अवतार लीला के दो अलग अलग स्थान माने गए हैं । प्रथम दिव्यलोक में साकेत दूसरा भूलोक में अयोध्या । अयोध्या साकेत उनकी प्रीत्य स्थली है ।<sup>3</sup> अवतारी लीला का स्वस्व नित्य माधुर्यमय है, अतएव साकेत में उनका नित्य विलास होता है ।<sup>4</sup> अयोध्या अवतार लीला की भूमि है अतः उसका आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है । अयोध्या की मानवी लीलाओं में धर्मवर्ध और मर्यादा की प्रधानता रहती है । वे श्रेष्ठ से विशेष समन्वित होती है ।<sup>5</sup> साकेत परब्रह्म राम का माधुर्य लीला केन्द्र है ।

साकेत के मध्य में कनक भवन है और उसके भी केन्द्र में श्री सीताराम का शयन कक्ष है । जिसकी शक्ति प्राप्त करना रसिक सधना का मुख्य उद्देश्य है । यह शयन कक्ष

- 
१. सीताराम लंछन पदावली, वैजनाथ मुद्रा पृष्ठ ४०५ (पृष्ठ २)
  २. उपलब्ध ग्रन्थ सिद्धांत पृष्ठ २१
  ३. वही वही पृष्ठ २१
  ४. बृहद् बृहद् लंछन पृष्ठ २०
  ५. वही वही पृष्ठ २१

कनक भवन की आठ कुंजों में से एक है यहाँ पर लीलावतारी राम की विभिन्न कुंज निकुंज लीलाएँ सम्पादित होती रहती है । निकुंज कुंजों के समूह का भी नाम है और एकान्त कुंज का भी जो गोपनीय सुरति केलि आदि लीलाओं के सम्पादन के अनुकूल हो । इस दिव्य लीला का दर्शन उन्हीं साधक स्य सहचरी में होता है जो सर्व प्रथम साधना-क्रम में अपने पिण्ड में इन लीलाओं का पूर्व साक्षात्कार का चुके होते हैं ।<sup>1</sup> राम सम्प्रदाय की रसिक शाखा में पंच भावीपासना प्रचलित है । साकित में उन विभिन्न उपासकों की आराधना के अलग-2 स्थान नियत हैं । सखी भाव के उपासक कनक भवन, सखा भाव के रंग भवन, दास्य भाव के रत्न सिंहासन और वात्सल्य भाव के साधक जन्म भूमि की पूजा करते हैं । कनक भवन के अन्तर्तम प्रदेश में सखियों का प्रवेश होता है, उनमें भी अष्टवर्णीय मंजरियाँ रहस्यलीला कक्षा की सेवा में नियुक्त होती हैं । उसके बाद के आवरणों में वयस्क सखाओं और सखियों को स्थान दिया जाता है । माधुर्यपासना के सन्निकट परिकरों में उनका स्थान निम्न है । वात्सल्य और शांत भाव के साधक परिकर नहीं माने जाते । वे मल्ल के बाहर रहते हैं ।

साकित लीला में श्री रामचन्द्र परब्रह्म के साकार रूप हैं ।<sup>2</sup> चतुर्भुज नारायण और अष्ट भुज भूमा का उनके ऐश्वर्य से आविर्भाव हुआ है । उनके व्यक्तित्व में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों का समिश्रण है । रास में वे अनेक रूप धारण कर लेते हैं और सीता की अंगजा सखियों के साथ विहार करते हैं । उनके ये रूप भी स्वयं रूप अथवा तदैकात्म्यरूप होते हैं ।<sup>3</sup> अंशावतार नहीं होते । श्री राम दक्षिण नयक हैं । राम सखे जी ने उनकी आठ पटरानियों का उल्लेख किया है और वाल अलीजी ने सहस्रों मुनि कन्याओं, राजकन्याओं और गन्धर्व कन्याओं को उनकी भार्या माना है । सीता उन सबमें प्रधान थीं । वे पराशक्ति हैं और श्री रामकी सभी पत्नियों उनके अंश से उत्पन्न हुई हैं । अतः श्री राम एक पत्नीव्रती हैं । राम सम्प्रदाय में स्वकीया का विशेष महत्त्व है । निकुंज लीला की अधिष्ठात्री देवी सीता ही हैं । उनका आविर्भाव ब्रह्म की रमणीका से हुआ है । वे श्री, भू, लीला आदि की अधिष्ठात्री देवी<sup>4</sup> हैं । उनकी अंगजा 33 नित्य सखियाँ अथवा लीला सहायिकाएँ हैं ।

1- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय - डा० भगवती प्रसाद सिंह पृ० 275

2- अन्य तरंगिनी पृ० 4

3- वृ० 30 र० पृष्ठ 8।

4- भू श्री ललितेश्वरी देवी, लक्ष्मी लक्ष्ममूर्तिता । ब्रह्माण्ड कोटि भाण्डस्य सर्ववस्तु महेश्वरी ।  
--उपासनात्रय सिद्धान्त पृ० 90

राम में वे अपने अंग से सहस्रों उपशक्तियाँ उत्पन्न कर श्री राम को प्रसन्न करती है ।<sup>1</sup>  
 सखी का के परिकारों में 'सर्व्वर' का वही स्थान है जो 'कृदा देवी' का है ।  
 सर्व्वर अन्य परिकारों की भाँति कैक्य भी करती है और दम्पति की गुह्यतम स्थिति  
 में भी इनको प्रवेश का अधिकार है । मान निवारण, संगीत और व्यजन सेवा उनकी  
 मुख्य सेवाएँ हैं । रसिकों के अन्य का श्री चारु शीला सखी और कद्रकला जी को पृथक्  
 रूप से सर्व्वर मानते हैं । उनकी कृपा से दम्पति सानिध्य अवश्य प्राप्त होता है ।<sup>2</sup>  
 इस सम्प्रदाय की निकुंज सेवा में तत्सुखी भाव का प्राधान्य है ।

कृष्ण सम्प्रदायों की भाँति राम सम्प्रदाय की रसिक शाखा में अष्टयाम सेवा  
 का विधान है । अतः सखियाँ अपनी युथ्वर सहित रंग भवन में जाकर प्रिया  
 प्रियतम का दर्शन करती हैं और चारु शीला वाद्य यंत्रों की शक्ति से मधुर गायन  
 द्वारा उनका उत्थापन करती हैं । तदनन्तर स्नानादि नित्य कर्म कराने के अनन्तर  
 शृंगार कुंज में प्रसाधन, शीश कुंज में दर्पण सेवा तदनन्तर मृगया और वागविहार  
 फिर भोजन और तदनन्तर शयन (विश्राम) । अपराह्न में सभा, दरबार में मंत्रियों  
 के साथ न्याय और राज्य प्रबंध विषयक कार्य, तदनन्तर सभा व बन्धुओं के साथ क्रीड़ा,  
 संध्या को घुड़सवारी का अयोध्या के राजमार्गों पर घूमना और प्रमोद वन में सीता  
 के साथ रास । भोजन के अनन्तर रात्रि शयन । यह लीलाओं का नित्य क्रम रहा ।  
 नैमित्तिक क्रम में विवाह, रास, हिंडोला, जल विहार, रथयात्रा, वन विहार के  
 अतिरिक्त भड्कतु सेवा का विधान भी कृष्ण सम्प्रदायों की भाँति यहाँ भी है ।

श्री कृष्णदास पदहारी के शिष्य स्वामी अग्रदास जी इस सम्प्रदाय में निकुंजी-  
 पासना के प्रवर्तक माने जाते हैं उन्होंने अपने 'अष्टयाम' में सखी सहचरियों और  
 कुंज निकुंजी का विवरण इस प्रकार दिया है :-

भगवान् राम के नित्य अष्ट सखा परिकारों में श्री सुलोचन मणि, सुमद्र  
 मणि, मुकुट मणि, जयसेन मणि, वशिष्ठ मणि, शुभनील मणि, अनीमणि और रसेश्व  
 केतु मणि हैं जो सदैव ही उनकी सेवा में प्रस्तुत रहते हैं ये सखियों की भाँति अंतःपुर  
 में प्रवेश के भी अधिकारी हैं ।<sup>3</sup>

1- रामायण द्रुति जस्ता, जानकी स्वणि तो स्वयं । -हनुमत्संहिता पृ० 10

2- नेह प्रकरा पृष्ठ 5

3- श्री अग्रस्वामी कृत अष्टयाम स्लोक सं० 10, 11 प्रकराक-म० रामरीभादास, अयोध्या पृ० ७७

उनकी अष्ट यथेश्वरियों में श्री लक्ष्मण, श्री श्यामला, श्री हंसी, श्री सुमंगा, श्री कर्माध्वजा, श्री चित्ररेखा, श्री तेजोस्मा और श्री इन्दिरावली जी हैं। समय समय पर पुष्पा रूप धारण कर श्री राम जी सेवा में तत्पर रहती हैं। इनके अतिरिक्त पुनः 8 सखियाँ और हैं। ये सब नित्य सेवा का विधान करने वाली हैं।<sup>1</sup>

ध्यान मंजरी में अयोध्या के 84 कोस के विस्तार में 'अशोक वन' है जिसके मध्य एक रूप वृक्ष है। उसके पास ही अधोभाग में मनोरम मणिमय मण्डप है और मंदिर है जिसके चारों दिशाओं में द्वार हैं, बीच में रत्नवेदी है जिसके मध्य में सिंहासन है और सिंहासन के मध्य अष्ट दल कमल है। उसमें कर्णिका है। कर्णिका में प्रथम मकार चंद्रबीज है, पुनः अकार भानु बीज है ऊपर के भाग में 'रकार' वद्वि बीज है। उसी अग्निमहल में श्री सीताराम जी का निवास है।<sup>2</sup> जहाँ वे अष्ट सखियों से सेवित हैं। दक्षिण में चंपा, उत्तर में व्यजन पश्चिम में कूत्र लिख भारतादि भ्राता और सेवकादि पुष्पमाला, ताम्बूल आदि की सेवार्त हैं। ईशान कोण में श्री लक्ष्मण जी, पूर्व में श्यामला जी, अग्निकोण में हंसी जी, दक्षिण में सुमंगा जी, नैऋत्य में कर्माध्वजा, पश्चिम में चित्र रेखा, वायव्य में तेजोस्मा और उत्तर में इन्दिरावली हैं। श्री लक्ष्मणजी ताम्बूल की, श्यामला जी सुगन्धित वस्तुओं की, हंसी जी चंदन लेपन, निगमा जी चमर की सेवा, सुरसा जी वाद्य की सेवा, वाक्मी जी चरण चापन सेवा, बहुमंगला राग आलाप सेवा, मृगजा जी की गान सेवा है और श्री रामकल्याण जी जब श्री राम विहार करके लौटते हैं तो गोपुर के गवक्षों से उनके मुख कमल का सखियों सहित अवलोकन करती हैं।<sup>3</sup> इसी प्रकार अन्य सखियों की भी सेवा है 'अशोक वन' में अत्यन्त रमणीय 'ललित कुण्ड' है उसकी चारों दिशाओं में श्री लक्ष्मण, श्यामला, हंसी एवं सुमंगाजी के निवास (कुंज) बने हैं। उनके बीच-2 अन्य चारों सखियों के हैं। ललित कुण्ड की सी स्थिति 'माधवी कुंज' की भी है जहाँ अष्ट सखा आठों दिशाओं में अपनी अपनी कुंजों में निवास करते हैं।

1- श्री अग्रस्वामी कृत अष्टयाम श्लोक सं० 12, 13 पृष्ठ 9 प्रकाशक महन्त रामशोभादास  
अयोध्या पृ० 8

2- वही वही श्लोक सं० 19- 21 तक पृ० 12-14

3- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना - भुवनेश्वर मिश्र माधव पृ० 189-90

इन्हीं कुंजों के अन्तर प्रदेश में निकुंज भी है जहाँ श्री सीताराम की विविध केलिक्रीड़ाएँ सम्पन्न होती हैं। वन विहार, हिंडोला, जल विहार, शृंगार कलेवा, वृहद शृंगार, अखेट लीला, प्रमोद वन विहार, विवाह लीला, व्यास, शयन, उत्सव वधाई के सजीव और सधना समन्वित कवि इस सम्प्रदाय के कवियों ने किए हैं। नित्य विहार विषयक सुरति केलि के विरोध प्रसंग इनकी रचनाओं में नहीं देख पड़ते। संभवतया श्री राम का मर्यादा पुस्तोत्तम रूप उनके लीला विस्तारी रूप से विशेष प्रभावी होकर उसमें वलोक रहा है। फिर भी ऐसे कवियों का अभाव नहीं है।

सेज सुख सोये सविरि गोरि ।

प्राण वपुष मन लगन गोद सुख सिमिट भये एक ठोरि ।

लपटि भुजातिन सोहति मानी नेह लती सुख द्रुम निसिकोरि ।

पलक लगी वर वदन मनोहर मीन सुधासर वोरि ।

सीतल मंद सुगंध सुचित में समै समुझि गुनकोरि

कृपा निवास सियापद पंज, सेवनि नैन निहोरि ।

### निकुंज लीला का सिद्धान्त पक्ष :-

निकुंज लीला का उपास्य 'रस तत्व' है। इसी कारण इसकी उपासना को निकुंज रसोपासना कहा गया है। और इसकी रीति का नाम 'रस रीति' है। जिस लीला में जितने अधिक रस (प्रेम) का प्रकाशन होगा वह उतनी ही प्रभावी और मन को रमनि के उपयुक्त होगी। दारु, सख्य, वात्सल्य आदि रसों की लीलाओं में प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती क्योंकि रति मानव-मात्र की मौखिक प्रवृत्ति है और वह विभिन्न कारण-कार्यों के योग से पल्लवित होकर रस रूप में हृदय स्पर्शनी वन का आनन्दातिरेक में समर्थ होती है। इस आनन्दातिरेक को ही भक्त भगवान् का स्वस्व मानते हैं। वास्तव में वह प्रभु 'रस-स्वस्व' है श्री। 'रसोवैसः' <sup>2</sup> 'रसोदये वायं लब्ध्वा सुखान्दी भवति' आदि श्रुतियाँ उनके रस रूप होने के प्रमाण हैं। भक्तों की प्रेरणा के अनुसार भगवान् नाना रूपों में परिणत होते हैं। यही उनकी लीला है।

-----  
 XXXXX रसमयि रसलित रसि मधुर रसप्रसन्न रसमेव रसि रसमयि

1- कृपानिवास पदावली, पृ० 230, राममहिम साहित्य में मधुर उपासना-भुवनेश्वरामित्र माध

2- तैत्तिरीय उपनिषद्

प्रेमी उपासकों की दृष्टि से भगवान् की ये लीलाएँ ब्रज रस और वृन्दावन रस दो वर्गों में विभाजित की गई हैं ।<sup>1</sup> ब्रज रस में भगवान् कृष्ण की समस्त बाल लीलाएँ हैं जो उनके जन्म से लेकर प्रसूतः मथुरा गमन तक हैं जैसे यमलक्ष्मि उद्धार, पूतनाबध, केशवध, मत्स्यन चोरी, चीर हरण, गीचाण, गोवर्धन धारण कालीयमर्दन और रासलीला आदि । ब्रज रस में भगवान् की सौन्दर्य, ऐश्वर्य और माधुर्य तीनों विभूतियों का त्रिवेणी संगम है । ऐश्वर्य उनमें प्रमुख स्म से सक्रिय देख पड़ता है । गोकुल और ब्रज वृन्दावन के पावन धामी में नन्द-यशोदा, गोपी ग्वाल, गो-गोवतन, असुर और उनकी माया, कलार-करील, कौशिक, यमुना कुल, कदम्ब की डार ब्रज रस के आगार हैं जहाँ से यह रस उमड़ता हुआ गोलोकधाम की ऐसी ही लीलाओं से बहुत अधिक समाकर्षक और उत्कर्षमय है ।

वृन्दावन रस अथवा निकुंज रस ब्रजरस से थोड़ा भिन्न है । यह एकान्त निष्ठ उपासकों की अमृत्य निधि है । गीता में जिस एकान्तिक सुख को भगवत्स्वस्म कहा गया है<sup>2</sup> वह निकुंज रस ही है । निकुंज लीला निकुंज रस का समाश्रय है । रस-स्म निकुंज विहारी श्री राधा कृष्ण अथवा श्री सीताराम उसके उपास्य हैं । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में हमें ब्रह्म के मिथुन स्म का संकेत मिल जाता है जहाँ श्री और लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी स्म में कथन किया गया है ।<sup>3</sup> उपनिषदों में इसका विस्तार से वर्णन है और वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि पुरुष विधि ब्रह्म के रमणेच्छा से पति पत्नी स्म में दो अंग हो गए । यथा :-

अस्मै वेद मय आसीत् पुरुष विध . . . स नैव रेमे । तस्यादेकाकीन रमते । स द्वितीय मैच्छत । . . . । पतिश्च पत्नी चा भवताम् ।

- वृहदारण्यकोपनिषद्, चतुर्थ ब्राह्मण

और अंगों के विकास क्रम में वैष्णव उपनिषद् और पुराणों के द्वारा यह मिथुन तत्व उन युगल विहारी के स्म में परिणत हो गया । युगल विहारी का यह स्म प्रेम मय है

1- श्री हरिव्यासदेवाचार्य और महावणी - डा० राजेन्द्र गोतम पृ० 139

2- शाख्यस्य धर्मस्य सुखस्थैकान्तिकस्य च - श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय 14 श्लोक 27

3- श्रीरचते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ - पुरुष सूक्त शुक्ल यजुर्वेद ।

और नित्यक्रीड़ा परायण है । वृन्दावन उस क्रीड़ा के लिए सबसे अनुकूल भूमि है ब्रह्म संहिता में निर्दिष्ट किया गया है :-

श्रियः कान्ताः कन्तिः परम पुण्यः कल्पतल्ली,  
द्रुमा भूमिश्चिन्ता मणिगणमयी तोयममृतम् ।  
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रिय सखी,  
चिदानन्द ज्योतिः परममथवा स्वादयमपि च ।<sup>1</sup>

श्री वृन्दावन में जितनी कान्ताएँ हैं वे सर्व श्री राधारानी की कामव्यूह स्मा है - श्री कृष्ण प्रिया हैं । वहाँ कन्ति केवल श्री कृष्ण ही हैं । वहाँ के तरु कल्पतरु हैं और भूमि चिन्तामणि मय है । वृन्दावन का जल अमृत तुल्य है, सखियों का पारस्परिक वातलाप संगीत मय है । यहाँ के परिकरों की गति नृत्यमय होती है । वंशी यहाँ प्रिय सखी है । ऋग्वेद में भी वृन्दावन धाम का ऐसा ही रस मय वर्णन है और उसे रसोपासना का अनुकूल स्थान बताया गया है ।<sup>2</sup>

वृन्दावन या निकुंज रसोपासना के आराध्य वृन्दावन बिहारी निकुंजेश्वर श्री कृष्ण हैं । समस्त प्राणिमात्र उनके भोग्य हैं । उन सभी के भोक्ता केवल वे ही हैं । वे परम स्वतंत्र हैं जिस जीव को जिस रूप में भी चाहें प्राप्त करें परन्तु फिर भी वे भक्तों की भावनाओं के समक्ष पराधीन हो जाते हैं और उनके भावानुकूल ही उन्हें अपना भोग्य बनाते हैं ।<sup>3</sup> वे वसुदेव जी के घर भगवान् पुण्योत्तम अवतारी श्री कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं । वे नित्य निकुंज बिहारी हैं और अजन्मा हैं ।<sup>4</sup> निकुंज बिहार युगल किशोर के द्वारा संभव है अतः उन निकुंज बिहारी ने क्रीड़ा हेतु अपनी अरुहादिनी शक्ति की राधा रूप में उद्भावना की और फिर वे युगल राधा माधव रूप में लीलाकिशोर प्रसिद्ध हुए :-

1- ब्रह्म संहिता 5 - 28

2- 'विष्णोः पदे परमेश्वर उत्सः' - ऋग्वेद 1/15/4-5

3- भावार्त्ताकर श्री राम जी रामायणी पृष्ठ 3

4- नन्द पत्न्या यशोदया मिथुन समजायता

गोविन्दाख्यः पुमान् कन्या ह्यम्बिका मथुरागता

वसुदेव समानीते वसुदेवे बिलत्मानि ।

लीने नन्दसुते राजन् धने सौदामिनीय था । आदि पुराण ।



यस्या ज्योतिरभूददेधा राधामाधव स्मधूव ।

तस्यादिदं महादेवि गोपालेनैव माधितम् ॥ - सम्मोहनतंत्र ।

और वे स्याम गौर अपने युगल रूप में ही आराध्य हैं :-

गौरते जो विनायस्तु स्यामते जः समर्चयेत

जयेद्वाध्यस्यते वापि स भक्त्वात् की शिवे ।

युगल किरीट की निकुंज रहसि का समस्त संभार सम्मोहन तंत्र सभी-सहचरी वर्ग पर है और उसकी क्रीड़ा भूमि श्री वन श्री वृन्दावन है । इस प्रकार निकुंज लीला के चार विधायक तत्व हो जाते हैं । 1- परमत्म तत्व श्री कृष्ण अथवा श्री राम 2- शक्ति स्या श्री राधा अथवा श्री जानकी 3- सहचरी वर्ग और 4- श्री वृन्दावन अथवा श्री साकेत धाम । विक्रम की सलहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति के प्रसार क्रम में श्री निम्बार्क, क्लृप्त, मध्व गौड़ीय सम्प्रदायों का विकास हुआ । इनमें क्लृप्त सम्प्रदाय में ब्रज लीला परकं भगवान् श्री कृष्ण की बाल लीला परायण रूप ही को स्वीकार किया गया और अन्य सम्प्रदायों की अनुकरणात्म प्रतिक्रिया में निकुंज रस का यत्र तत्र गान हुआ परन्तु साधना और भावना दोनों दृष्टियों में यह सम्प्रदाय बाल भावीपासक ही रहा । मध्वगौड़ीय सम्प्रदाय में परकीया तत्व पर अनावश्यक बल देने के कारण निकुंज लीला गान के सौरभ और सौष्ठव का मूलभूत आधार ही - विनष्ट हो गया । उसकी गरिमा और तेजोमयता क्षतिग्रस्त होकर एक परंपरा और शास्त्रीय विधान परायणता के प्रतिपालन का वहाँ विशेष प्रयास हुआ । विशुद्ध निकुंज लीला गान की कोटि में वहाँ अपेक्षा कृत बहुत ही थोड़े ग्रंथों का प्रणयन हुआ । हाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में सम्प्रदाय के उद्भव और विकास क्रम में इस उपासना प्रणाली पर निरंतर बल रहा है । श्री हित हरिवंश जी, श्री स्वामी हरिदास जी एवं वंशो अली जी के सम्प्रदायों में भी यह उपासना प्रणाली सर्वतोभावेन ग्राह्य रही है । कृष्ण सम्प्रदायों के प्रभाव क्रम में राम भक्ति की रसिक शाखा में भी निकुंज भावना को यथोचित रूप में आश्रय मिला ।

### निकुंज लीला के विधायक तत्व -

1- श्री कृष्ण - लीला नायक देवी में भगवान् श्री कृष्ण का भारतीय जन मानस पर सबसे अधिक प्रभाव है। वे परब्रह्म परमात्मा, सर्व शक्तिमान, सर्वतंत्र स्वतंत्र है। श्री कृष्ण अखिल आत्मजों के आत्मा हैं। आदि, अव्यक्त, निर्विशेष और निरीह है।<sup>2</sup> गीता में धर्म की स्थापना, ज्ञान की संरक्षण, दुष्टों का दलन भक्तों की रक्षा और प्रेमी भक्तों की प्रेमोत्कण्ण पूर्ण करने के निमित्त उनका अवतार कहा गया है।<sup>3</sup> वे अप्राकृत और अविनशील सत्य हैं। मृतप्राणियों के ईश्वर होने पर भी उनका जन्म प्राकृत पुत्रों की भाँति नहीं हुआ वे अपनी प्रकृति को वश में करके योगमाया से प्रकट होते हैं। किन्तु प्रेमी रसिकों के द्वारा उपासित श्री कृष्ण का स्वस्य नित्य, सर्वेश्वर और नित्य लीला रत है। उनकी ये अवतार लीलाएँ शाश्वत, नित्य दिव्य एवं सच्चिदानन्दधन सत्य हैं। श्री मद्भागवत में भगवान् कृष्ण के मधुर सत्य को प्रधानता देकर उनका लीलागान किया गया है इस कारण कालान्तर में उनके माधुर्य मण्डित सत्य उपासना का प्राधान्य हो गया। 16वें शती में इस उपासना प्रणाली के विकसित होने पर वे गोपी और सखी सहचरी भाव में विभिन्न सम्प्रदायों के उपास्य बन गए। भागवतकार के अनुसार उनके लीला कथा रस निषेधन के अतिरिक्त इस संसार को पार करने का कोई अन्य उपाय नहीं है।<sup>5</sup>

मध्व सम्प्रदाय में हरि ही परात्पर हैं। वे ही विष्णु हैं। सर्वगुणों से पूर्ण संसार वर्जित, निर्दुःख और नित्यानन्द योगी हैं।<sup>6</sup> निम्बार्क प्रणीत दश श्लोकी में उन्हें स्वभाव से ही समस्त दोषों का अपहर्ता, अशेष कल्याण औरगुणों की राशि व्यूहणी और वीर्य कहते हुए उपास्य माना है।<sup>7</sup> चैतन्य सम्प्रदाय में परात्पर

1- कृष्णमेव मवेहि त्वमात्मा नमस्त्रिभुवनम् ।

जगद्धितय सौख्यत्र देहीवशाति मायया ॥ - श्री मद्भागवत 10/14/55

2- श्रीमद् भागवत 10-3-24

3- श्रीमद् भगवद्गीता - अध्याय 4 श्लोक 7, 8

4- - वही - वही श्लोक 6

5- श्रीमद् भागवत 12 - 4 - 39

6- मध्वाचार्य प्रेम दर्शन मीमांसा भा02

7- स्वभावतोऽपि अपस्त मस्त समस्तदोषमशेष कल्याणगुणैकराशिम् ।

व्यूहकिं ब्रह्म परावीर्य ध्यायेत् कृष्णं कमलैर्हरिम् ।

- निम्बार्क कृत - वैदान्त दश श्लोकी श्लोक संख्या 4

श्रीकृष्ण ही उपस्थ है । आचार्य क्लृप्त ने अपने ग्रंथ सिद्धान्त मुक्तावली में कहा है कि श्री कृष्ण सच्चिदानन्द स्य, सर्वशक्ति स्वतंत्र, सर्वज्ञ और गुणवर्जित है । अतएव आत्मानन्द समुद्रस्य उन श्रीकृष्ण का चिन्तन करना परमधर्म है ।<sup>1</sup>

श्री कृष्ण का निकुंज बिहारी स्वस्व - निकुंज भावना के उपासकों ने श्री कृष्ण का केवल रस स्वस्व ही गृहीत किया है जिसकी निकुंज बिहारी स्य में उपसना की जाती है । उनका यह स्वस्व चिन्तन में बड़ा ही मृदुल एवं सुकुमार है । वह पुण्यत्व की कठोरता से परे है । उनका शृंगार भी निकुंज का शृंगार है जिसे सद्भिष्यो शृंगार कुंज, शीश कुंज आरती कुंज में सम्पादित करती हैं । यह बहुत कुछ उनकी प्रण प्रिया के शृंगार से अनुकूलता रखता है (विराजमाना अनुस्य सोमगा - वेदान्त दश स्तोकी स्तोत्र संख्या 5) । निकुंज बिहारी सक्षात् शृंगार है । शास्त्रज्ञों ने शृंगार का कर्ण स्थान ही माना है । काम का स्य भी श्याम है । राधा जी का कार्य अपनी उदारता में गौर है । अतः युगल की जोड़ी यम-दामिनी स्वस्व है ।

समस्त निकुंज लीला गायन में श्री कृष्ण के दैन्ययुक्त स्वस्व को ग्रहण किया गया है जिसका मूल कारण रस उपलब्धि की अकिक्षा है । श्री हरिव्यास देव जी कहते हैं :-

मन मोहे री सोहे अति सुंदर वानिक मोहन लाल की  
झुंकरन हवीली रंगरीली पणियां गोरि भाल की ।  
नवल नासिका नय मोती की झलकरन स्य रसल की ।  
श्री हरि प्रिया कसो नित हृष्य में चितवन नैन विशाल की ।<sup>2</sup>

और श्री भट्ट जी उनकी दैन्ययुक्त अवस्था में राधे जी के पीछे पीछे जाते हुए प्रणय मिक्षा की मान्यता में प्रवृत्त पाते हैं :-

मोहन श्री राधे राधे कै न वेलें ।  
प्रीति रीति रसकर नगरि हरि लियो प्रेम के मोलें ।  
हास-विलास-रास राधे संग शील आपनों तोलें  
जय श्री भट्ट जदपि मदन मोहन तोऊ हरि हरि सिर डोलें ।<sup>3</sup>

1- आत्मानन्द समुद्रस्य कृष्णमेव विचिन्तयेत् - सिद्धान्त मुक्तावली - 15

2- हरिव्यास देवाचार्य कृत महावर्ण

3- याल शतक - श्री भट्ट देवाचार्य कृत

इन कुंज बिहारी की वन विहारी और गोवर्धन धारी श्री कृष्ण से नाम-सम्बोधन में भी भारी भिन्नता है । उनका कुंज बिहारी नाम तो सर्व ग्राह्य है ही श्री ध्रुवदास जी ने उनके ऐसे ही नामों का उल्लेख किया है ।<sup>1</sup> विग्रह रूप में भी भिन्नता देखी गई है । श्री निम्बाकचर्य के सर्वेश्वर स्वामी हरिदास जी के बिहारी जी, श्री भट्ट देवाचार्य के मदन गोपाल, हितहरिवंश जी के राधावल्लभ, रसिक देव जी के श्री रसिक बिहारी अकार, सज्जा, सेवा विधि और उपासना प्रणाली में क्लृप्त सम्प्रदाय के श्री व्यासकधीरा, मदनमोहन जी, मधुरेश जी आदि से बहुत भिन्न हैं । ध्यान के दृष्टि कोण से भी भिन्नता है क्योंकि निकुंज सेवा में युगल बिहारी का एक मुद्रा में ध्यान करने की परंपरा है अतः श्री युगल के अलग-2 चित्र अथवा प्रतिमूर्तियाँ अथवा रूप सज्जा के विवरण नहीं मिलते ।

श्री राधा — उपरिष्ठ कथन में यह भली भाँति स्पष्ट किया जा चुका है कि भगवान् श्री कृष्ण ही परात्पर ब्रह्म हैं और रस स्वयं है । रस-क्रीड़ा के निमित्त उन्होंने दो रूप कर लिये हैं क्योंकि क्रीड़ा के निमित्त युगल की अनिवार्यता है । अतः वही अनादि पुरुष स्वयं राधिका रूप धारण कर उनके समाराधन में तत्पर हैं । इसलिये वेदज्ञ लोग उस रसिकानन्द को 'राधा' कहते हैं । क्योंकि स्वयं एक रूप अपने दूसरे रूप की आराधना (उपासना) कर रहा है । वैष्णव

1- लाल रंगीली श्री — भाइये, तल्ले प्रीति रंगीली पाइये ।

श्री राधावल्लभ लाड़िलो, दलह, नित्य किसोर ।

कुंज - बिहारी भाव तो, मुख प्यारी चंदन कोर ।

रस रंगी राधाधनी, राधाधन, सुकुमार ।

कुंज रवन सीमा भवन, वर सुंदर सुधर उदार ॥

ध्रुवदास की कयालीस लीला, पद्यावली पृष्ठ-2

लालजी की नामावली वृन्दावन ।

उपनिषद् सर्व पुराणों ने इस युगल तत्व की एक स्मृति का, एक रसता और समता का मुखर स्म से प्रतिपादन किया है । कृष्णोपनिषद् में कहा गया है कि जो श्री कृष्ण और राधा में व्यवच्छेद करता है वह बहिर्मुखा है ।<sup>1</sup> गर्ग संहिता में कहा गया है कि श्री कृष्ण और राधा में जो अभेद देखता है वही ब्रह्म पद को प्राप्त होता है ।<sup>2</sup> ब्रह्म संहिता के अनुसार जो राधा है वही कृष्ण है और जो कृष्ण है वही राधा है ।<sup>3</sup> सम्मोहनतंत्र, ब्रह्माण्डपुराण, स्कन्द पुराण सभी इसका समर्थन करते हैं । इस प्रकार परात्पर प्रभु का दिवविधि होकर, युगल स्वस्व होकर राधा कृष्ण स्म में वैष्णवी का ध्येय बन गया । स्कन्द पुराण में शीघ्रतः किया गया है कि राधा श्री कृष्ण की आत्मा ही है । वे नित्य राधा के साथ रमण करते हैं इसलिए मर्मज्ञ उन्हें आत्माराम कहते हैं ।<sup>4</sup> नारदीय पुराण में राधा और श्री कृष्ण के नित्य स्वस्व को दूध की धक्लता और पृथ्वी की गंध के समान अभेद-युक्त माना है ।<sup>5</sup>

पद्मपुराण में राधा को सृष्टि, स्थिति, प्रलय कारिणी, विद्या और अविद्या, त्रयी और परा स्वस्या महशक्ति सर्व माया तथा चिन्मयी शक्ति बताया गया है -

1- वामांग संहितादेवी श्री राधा वृन्दावनेश्वरी ।

योऽनयो स्यादवयवच्छेदी ध्रुव स तु बहिर्मुखाः । - कृष्णोपनिषद् ।

2- गर्ग संहिता वृन्दावन छण्ड 12 - 32

3- राधया माधवी केवी माधवे नैव राधिका ।

विभ्राजते जनेषु योऽनयोः पश्यते भेदं न मुक्त ।

-जीव मोक्षामी कृत ब्रह्म संहिता की टीका ।

4- आत्मा तु राधिका तस्य तथैव रमणारसो ।

आत्माराम त्यागवित्र प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥

-स्कन्द पुराण - वैष्णव छण्ड ।

5- धाक्य दुग्धयोर्द्वयत पृथिवी गन्ध पोरिव ॥

- नारदीय पुराण पृष्ठ 172

श्री राधा ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव के देह धारण का कारण है । जितना भी यह चराचर जगत जिस माया से परिमित है उसका पालन करने वाली कृदावनेश्वरी श्री राधा ही है उनका अलिंगन का कृन्दावन के ईश्वर (श्री कृष्ण) कृन्दावन में वास करते हैं ।<sup>1</sup> श्री राधा ही भगवान् नारायण की शक्ति हैं, परा है, नित्या हैं — वे परमात्मा को शक्तिमान बनाती हैं । उनके बिना वे सृष्टि रचना में समर्थ नहीं हो सकते । सृष्टि में जो कुछ शिव और सुंदर है वह सभी श्री राधा का ही विग्रह है ।<sup>2</sup> उनको ही सृष्टि की आधारभूता मान कर विराट् का विम्ब स्वीकार किया गया है ।

वृहद् ब्रह्म संहिता में 'राधा' शब्द की व्याख्या रसलीला विधायिका अथवा लीला वदारा रस प्रवाहिनी के रूप में की गई है ।<sup>3</sup> लीला के चिन्तन में राधा तत्त्व भगवान् कृष्ण की अल्हादिनी स्वस्म में ही चितनीय है । बोधी भाव में वे उनकी अल्हादिनी शक्ति ही है जिनमें प्रेम तत्व के साथ उनका शक्ति रूप भी समन्वित है । वैष्णव सिद्धान्त में ब्रह्म की परा और अपरा दो शक्तियों की मान्यता है । परा में ब्रह्म की अन्तरंग लीला का विकास है और अपराशक्ति के वदारा बाह्य लीला सम्पन्न होती है । अपरा शक्ति गुणाश्रया और क्षेत्रज्ञा है । इससे जगत का विस्तार और सृजन कार्य होता है । पराशक्ति ईश्वर की स्वस्म भूता शक्ति है । वह भगवान् की योग्य शक्ति है । उसके साथ ही वे स्वस्म लीला का आनन्दित होते हैं ।

1- कृदावनेश्वरी नाम्ना राधाधात्रानुकारणात् ।

तमालिंगन वसन्तं तं मुदाकृन्दावनेश्वरम् ॥

—पद्मपुराण, पातालखंड - 77 - 15 - 17

2- सृष्टिश्चित्यत स्मा या विद्याविद्यात्रयी परा ।

स्वस्मा शक्ति स्मा च माया स्मा च चिन्मयी ॥

ब्रह्मा विष्णु शिवादीनां देह धारणकारणम्

—पद्मपुराण, पाताल खंड 111, 118

3- अनया राध्यते कृष्णो भगवान् हरिरेश्वर ।

लीलया रस वाहिन्या, तेन राधा प्रकीर्तिता ॥

—वृहद् ब्रह्म संहिता, अ० 5 श्लोक 70, 71

उस आत्ममूर्तराक्ति का स्वस्व भी भगवान् के समान सन्निदानंदधन स्या है । यह आनंद प्रदायिनी सत्त्व गुणात्मिका शक्ति है । इस शक्ति के द्वारा ही वे स्वयं आनंदित होते हैं और दूसरों को आनंदित करते हैं । यही शक्ति प्रभु की निज लीला का आधार है । इस परब्रह्म की लीलारस प्रदान कर अल्लादित करने वाली शक्ति को ही 'राधा' नाम से सम्बोधित किया जाता है । राधा ही श्री कृष्ण की भाँति भक्तों को भी अल्लादित करती है ।

साधक रसिक जनों ने राधातत्त्व को चिंतन के क्षेत्र में विशुद्ध प्रेम ही माना है । राधा प्रेम की साकार मूर्ति है । योगिराज आरविन्द के शब्दों में, "राधा भगवत्प्रेम की प्रतिमा है, ऐसा अनन्य भगवत्प्रेम कि जो प्रेमी की उर्ध्वतम आध्यात्मिक सत्ता से लेकर शरीर तक सवगिण में परिपूर्ण और अल्लभ हो । जिसमें निरपेक्ष आत्मदान और पूर्ण-समर्पण हो और शरीर तथा अत्यन्त जड़ प्रकृति में परमानंद भर जाय" 1 डा० शशिभूषण दास गुप्त ने राधा के क्रम विकास में उनके प्रेम के संबंध में गौड़ीय सम्प्रदाय के राधा सम्बन्धी विचारों का मथन करते हुए कहा है कि वैष्णव सम्प्रदायों में यद्यपि राधा को कृष्ण के समान ही उपास्य का स्थान प्राप्त हो चुका है फिर भी उनका भक्त श्रेष्ठ का रूप ही अक्षुण्ण बना रहा है । "उस दृष्टि से राधिका ही भगवान् की भक्त श्रेष्ठ है" 2

निकुंजलीला की उपास्य श्री राधा ब्रजलीला की राधा से सर्वथा भिन्न है । ये नित्य निकुंज बिहरिणी हैं, कारण स्या है, विशुद्ध प्रेम स्या है । ब्रजलीला की राधा इनकी अंशमात्र है और कार्यस्या है । श्री विहारिनिदास ने राधा के इस स्वस्व को स्पष्ट करते हुए कहा है :-

राधा नित्य विहारिनि रानी

कारन ते कारज ब्रज प्रगटत, सोइ किन हू ना जनी 3

1- योग प्रदीप - योगिराज आरविन्द पृष्ठ 45 - 46 श्री आरविन्द ग्रंथमाला, कलकत्ता ।

2- श्री राधा का क्रम विकास - डा० शशिभूषणदास गुप्त पृ०, 101

3- सिद्धान्त सार संग्रह - किशोरदास

ब्रज के श्रेष्ठ कवियों की राधा सामान्या है जो गोदोहन, रसार्च और पनघट पर प्रेमानुरक्ति के अवसर की ताक चाक में भी देखी जा सकती है परन्तु निकुंज लीला की राधा 'नित्य सुहागिन रानी' है । ब्रज में तो वस्तुतः कृष्ण ही उपास्य हैं । श्री राधा और कृष्ण का जन्म कर्म आदि निकुंज रसिकों के शिष्टाचार मात्र है उपास्य नहीं है तो महामधुर निकुंज रस के अनन्य भाव से उपासक हैं ।<sup>1</sup> वास्तव में निकुंज-भाव से आराध्य राधा, अजन्मा है, नित्य किशोरी है और सदैव एक रस है ।<sup>2</sup> राधा नाम श्री स्वतः निकुंज लीला परक है । सुधर्म बोधिनी में कहा गया है ।

‘‘रा’’ अक्षर श्री गौरतन ‘‘धा’’ अक्षर धनश्याम ।

सहज परस्पर अस्मरति, लिखि मिलि ‘‘राधा’’ नाम ॥

गौर देत नित सर्व सुख, श्याम रूप वहे लेत ।

‘‘रा’’ दाने ‘धा’ धारणे, राधा नाम समेत ॥<sup>3</sup>

राधान्तत्व सब सुखों को देने वाला है और श्याम रूप सुखों को ग्रहण करता है । इस प्रकार नित्य सुखों की दानों मूर्तियों की प्रतीक श्री राधा है । श्री राधा के निकुंज-भाव परक नामों की सूचियाँ राधावल्लभ सम्प्रदाय के श्री ध्रुवदास,<sup>4</sup> निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री हरिव्यास देव<sup>5</sup> स्वामी हरिदास के शास्त्रा सम्प्रदाय से संग्रहीत सेठ हरगुलाल द्वारा प्रकाशित हुई हैं<sup>6</sup> । इन नामावलियों से श्री राधा के निकुंज-परक स्वस्व का बोध होता है । श्री बिहारिनिदास ने तो उन्हें दिव्य-वपु-इच्छा विग्रह वपु कहा है जो नित्य आनंद मय है :-

1- साधारण राधा आराधत, साधत कृष्ण पियारो ।

जन्म कर्म वृषभानु सुता नन्दनन्दन शिष्टाचारो ॥

करि सतसंग सजातिनि सौ मिलि ससै सबे निवारो ।

सेवत महामधुरी रसिक अनन्यनि को मत न्यारो ।

-बिहारिनिदास के सिद्धान्त के पद , पद संख्या ॥5

2- मेरे नित्य किशोर अजन्मा- बिहारिनिदास

3- सुधर्म बोधिनी प्रसंग 2, 3

4- प्रियादास की नामावलि लीला क्यलीस लीला ध्रुव दास

5- हरिव्यास देव कृत महावाणी पृ० 27-30

6- सर्वोपरि नित्य बिहारिनी नामावलि - वृन्दावन



"इच्छा-विग्रह धरि लैलावपु, सब अवतारिनि पर अवतारी"

—बिहारिनिदास जी के सवैया संख्या 28

परन्तु वह मानुषी स्थाकार साधारण मानवी की भाँति मल मैथुन से युक्त न होकर परम दिव्य हैं :-

इनके मल मैथुन कहू नारहे, दिव्यदेह विहारत वन मारहीं ।।

—विहारिनिदेव —

श्री राधा अनन्त रूप सौंदर्य की निधि हैं । उनका सौंदर्य कि सब प्रकार की स्थूलता से मुक्त है । उनके रूप में दिव्य और सर्वोच्च सूक्ष्म भावना का प्रकाश है और वह रूप प्रतिक्षण परिवर्द्धमान है ।<sup>1</sup> अतः नित्य नवीन है, जो रमणीयता का आगार है । इस महामधुर गम्भीर तरंगायित रूप रस की अगाधता की धार लेने की शक्ति किस में है ? स्वामी हरिदास जी के अनुसार तो उस रूप की गहराई को तो स्वयं ठाकुर श्री बिहारीजी ही जानते हैं अथवा वे महामग्न जिन्हें श्री निकुंज बिहारी के प्रेमास का आश्रय प्राप्त है । अन्यथा देवगिनहों श्री उनके रूप सौंदर्य को देख कर आश्चर्य-विस्मित हैं और राधा की एक दृष्टि उन पर कैसे पड़े इसके लिए समुत्सुक हैं ।<sup>2</sup> स्वामी जी ने उनके निकुंज बिहारिनी स्वस्व की श्रव्य आँकी केलिमाल में प्रस्तुत की है जो नितान्त स्थावर्क है । श्री हितहरिकेश तो अपने ग्रंथों में उनके रूप सौंदर्य का वर्णन करते नहीं अघाते :-

1- (1) क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतया । मादय ।।

(2) प्यारी तेरी मुख देखत में नयो नयो नीकी लागे ।

—केलिमाल- स्वा० हरिदास पद संख्या

2- भली सब देखि देखि ।

जच्छ किन्नर नगलोक देवस्त्री रहीं भुवि लेखि लेखि ।

कहत पास्यार नारि नारि सों यह सुन्दरता अवरोखि अवरोखि ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कैसे हूँ चितवैं ये परोखि परोखि ।।

—केलिमाल पद सं० 42

कहा कहीं इन नैननि की बात ।  
 ये अलि प्रिया वदन अम्बुज-रस अटके अनत न जात ।  
 जब जब सकत पलक संपुट लट अति आतुर अकुलात ।  
 लम्पट लवनिमेष अंतर तैं अलप कलप सत सत ॥  
 श्रुत पर कंज दृगंजन कुच विच मृग मद व्हे न समात  
 श्री हरिकेश नाभिसर जलचर जचित सविल गात ।

व्याकरण-आगम के अनुसार शब्द ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है । यह शब्द ब्रह्म श्री राधा के नूपुरों से उत्पन्न होने वाला कलारव है । सनत कुमार संहिता में लिखा है कि एक बार श्री राधा माधव रास नृत्य करने के अनंतर निकुंज मंदिर में गए जहाँ उन्होंने परमानंद दायिनी सुरति केलि की । उस समय श्री स्वामिनी जी के नूपुर से जो शब्द उत्पन्न हुआ वह 'शब्द ब्रह्म' कहा गया । इसी शब्द-ब्रह्म से मध्यातीत पुच्छ उत्पन्न हुआ जिससे प्रकृति तथा पुच्छ (माया और मायापति भगवान्) अकिर्मित हुए, उनसे नारायण प्रगट हुए और नारायण जी के नाभिजन्य कमल से ब्रह्मा जी निकले, उनसे महदेव जी तथा अन्य प्रजपति निकले<sup>2</sup> महावाणीकार श्री हरिव्यास देव जी का मत ब्रह्म इससे भिन्न है । वे नाद के अण्ड से द्रवित अण्ड धारा को ही सत्सृष्टि का हेतु मानते हैं ।

नाद के अण्ड तैं अण्डधारा द्रवित,  
 श्रवत जा मध्य सत सृष्टि के हेत ॥<sup>3</sup>

यह 'नाद' श्री राधा के 'सुरतिकेलि' जनित नूपुर के कलारव से उद्भूत हुआ । इस प्रकार श्री राधा माधव के क्रीड़ा क्रम से अल्हादित श्री राधा समस्त दिव्य सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है । इसी से उन्हें समस्त कारणों का कारण रूप में सम्बोधित किया गया है ।

1- हित चतुरासी पद सं० 60 हित हरिकेश, वैष्णु प्रकाशन वृन्दावन ।

2- सनत्कुमार संहिता श्लोक संख्या 72-76 पृष्ठ 31 ।

3- हरिव्यास देवाचार्य कृत महावाणी, सिद्धान्त-सुख पद सं० 10

निष्कर्ष स्पष्ट में कहा जा सकता है कि श्री राधा स्व, गुण और प्रेम की अगरी है । पूर्णन्द स्व श्री कृष्ण जिनके समक्ष अपनी देह की सुधिबुधि छो दें उस स्व राशि का क्या ठिकाना ? कस्तुतः श्री राधा और श्री कृष्ण के स्व में प्रेम के दो स्व हैं जो मीक्षता और मीग्य कहे जा सकते हैं । राधा मीग्या है और इस अधिकार के कारण उन्हें लीला विलासमें प्रधानता प्राप्त है । वै श्री कृष्ण की भी उस प्रदात्री हैं इस कारण उनके अनन्त अधिकार हैं । वै श्री कृष्ण की आराध्या और स्वामिनी हैं अतः निकुंजोपासना की अधिष्ठात्री देवी और आराध्या है ।<sup>1</sup>

### श्री वन श्री कृन्दावन

निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना में स्व, गुण, धाम परिकर आदि कोई उपादान नहीं है । सगुणोपासना में यह सब आवश्यक है क्योंकि ये ही उनकी पहचान के अंग हैं और उन तक पहुँचने के सोपान हैं । अतः भगवान् के प्रत्येक स्वस्व के साथ उसका धाम की भी मान्यता है । वेदों में विष्णु भगवान् के धाम को परम पद या विष्णुपद कहा गया है । ऋग्वेद में उसे मधु का उत्स बतलाया है ।<sup>2</sup> वेद और उनसे सम्बन्धित ग्रंथों में परम व्योम ब्रह्मपुर ब्रह्मलोक, अव्यक्त धाम, अक्षर धाम, त्रिपादविभूति, चिदाकाश, दहराकाश आदि धामों का भी संदर्भ आया है जो त्रिगुण माया से परे है और जहाँ पर नित्य सुख है ।<sup>3</sup> ये स्थान ब्रह्माण्डों से परे ब्रह्माण्डातीत शून्य से भी विलक्षण हैं ।

विष्णु की जब साकार स्व में विभिन्न अवतारों के स्व में प्रतिष्ठा हुई तो उपरिष्ठ सभी लोक धामों का महत्व गिर गया और उनके स्थान पर वैकुण्ठ की मान्यता चल पड़ी और इसे अन्य सभी धामों से श्रेष्ठ माना जाने लगा । श्री मदभगवत्

1- सूरसौरभ - डा० मुनीराम शर्मा पृष्ठ 123

2- तदस्य प्रियमभिधात्री अर्था नरो तत्र देवः यवी मदन्ति ।

उस क्रयस्य बंधुरित्या विष्णोः परमे पदे मध्व उत्स ॥

—ऋग्वेद, द्वितीयाष्टक, विष्णु सूक्त ।

3- कृन्दावनक, सँकवर पृ० 22, 23, 24

में वैकुण्ठ को सर्वोच्च धाम बतलाया गया है ।<sup>1</sup> परन्तु स्वधाम के रूप में वैकुण्ठ नाम श्री मद्भागवत में स्पष्ट नहीं है । पुराणों में श्री कृष्ण के धाम को 'गोलोक' कहा गया है । वैकुण्ठ का भी उनके नाम से सम्बन्ध है परन्तु वास्तव में वह 'गोलोक' ही है । महाभारत के शान्ति पर्व में श्री कृष्ण जी ने स्वयं गोलोक को ब्रह्मलोक के समान नित्यधाम कहा है -

सर्वं बहु विधेस्त्रैश्वरामीह वसुधाम् ।

ब्रह्मलोकं च कौन्तेय गोलोकं च सनातनम् ।

महाभारत शान्तिपर्व, 342, 138

कृष्ण भक्ति के समस्त सम्प्रदायों में गोलोक की श्री कृष्ण के धाम के रूप में मान्यता है । निम्बार्क, क्लृप्प, मध्व गोड़ीय सम्प्रदायी भक्त और आचार्यों ने गोलोक और वृन्दावन को एक ही मान कर भगवान् की लीला भूमि के रूप में वंदना की है ।<sup>2</sup>

गोलोक और वृन्दावन के अतिरिक्त ब्रज की भी श्री कृष्ण धाम के रूप में अनेक स्थानों पर चर्चा आई है । वैकुण्ठ और गोलोक उनकी अप्रकट लीला के धाम हैं, ब्रज, द्वारका और मथुरा उनकी प्रकट लीलाओं के धाम हैं । मथुरा और द्वारका की लीलाओं की तुलना में ब्रज की लीलाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है । ये लीलाएँ अधिक अंतरंग मानी जाती हैं । स्कंद पुराण के भागवत महात्म्य में ब्रज को गुणातीत माना है और श्रीमद् भागवत के गोपीगीत में ब्रज को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है क्योंकि वहाँ भगवान् ने जन्म लिया था ।<sup>3</sup> ब्रज में श्री गोकुल और वृन्दावन दो धामों की मान्यता है जिनमें क्लृप्प सम्प्रदायी गोकुल को गोलोक का प्रतीक मानते हैं शेष सम्प्रदायों में वृन्दावन को ही महत्त्व दिया जाता है ।

1- श्रीमद् भागवत स्कंध 3, अध्याय 16

2- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव - शरण बिहारी गोस्वामी -पृ 288

3- जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रज श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि ।

-श्री मद्भागवत गोपीगीत 10, 31, 1

गोपालतापिनी उपनिषद्, पुरुषार्थवीथिनी उपनिषद् और कृष्णोपनिषद् में वृन्दावन को श्री कृष्ण की क्रीड़ास्थली कहा गया है जो सर्वोपरि दिव्य एवं सच्चिदानन्द स्वस्व है तथा अत्यन्त गोप्य स्थल है ।<sup>1</sup> पुराण साहित्य में तो वृन्दावन का सर्वाधिक महत्त्व प्रतिपादित है । महारास श्री मदभागवत का सबसे अधिक मर्मस्थल है उसकी पृष्ठ भूमि श्री वृन्दावन ही है । उद्धव जी ने भी भगवान् के इसी वृन्दावन धाम के लतापतदिक बनकर रहने की कामना की है ।<sup>2</sup> ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य, स्कन्द, नारद आदि सभी पुराणों में वृन्दावन का विशद वर्णन है । पद्म पुराण के पाताल ३ अर्द्ध में 69 से 83 तक के 15 अध्यायों में वृन्दावन का माहात्म्य वर्णित है । उसके अनुसार गोलोक का समस्त ऐश्वर्य गोकुल और व्दारका में प्रतिष्ठित है पारन्तु नित्य वृन्दावन समस्त ब्रह्मणों से ऊपर बताया गया है । यह वृन्दावन पूर्ण-ब्रह्म सुख से पूर्ण, नित्य, आनन्दमय और चिन्मय है । वैकुण्ठादि धाम उनके अंश ही हैं ।<sup>3</sup> सनत्कुमार संहिता, गर्ग संहिता, वृहद् ब्रह्म संहिता, अनन्त संहिता, नारद संहिता तथा तंत्र ग्रंथ — गौतमीय तंत्र, रासोल्लासतंत्र, उध्वनिमततंत्र आदि में वृन्दावन के अत्यन्त रोचक साहित्यिक एवं उपास्य स्वस्वों के वर्णन भी पड़े हैं ।

सभी वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में भगवान् श्री कृष्ण के नित्यधाम के रूप में वृन्दावन का महत्त्व प्रतिपादित है । श्री स्व गोस्वामी ने वृन्दावन का परम गुह्य, रहस्यमय, आनन्द के सागर रूप में वृन्दावन का चिन्तन किया है । वहाँ के निकुंजों में दिव्यातिदिव्य विलासों द्वारा श्री राधा कृष्ण निरवधि रसमय क्रीड़ा कर रहे हैं ।<sup>4</sup> श्री जीव गोस्वामी ने वृन्दावन को सर्वोपरि बताते हुए गोलोक को वृन्दावन का वैधव्य प्रकाश कहा है ।<sup>5</sup> उनकी दृष्टि में वृन्दावन भगवान् की स्वस्व शक्ति का ही प्रकाश है ।

1- त्वमेकं गोविन्द सच्चिदानन्द विग्रहं पंचमदं वृन्दावने — गोपाल पूर्वतापिनी - 8

2- आसामहोचरणेण जुषामहेयाम् वृन्दावनं गुल्यलतोषणीनाम्

—श्रीमद्. भागवत। 10 - 47 - 6।

3- पूर्णं ब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ।

वैकुण्ठादि तदंशानि स्वयं वृन्दावनं भुवि ।

यद्ब्रह्म परमैश्वर्यं नित्यं वृन्दावनमयम् ।

कृष्ण धाम परतैर्था वनमध्ये विशेषतः । —पद्मपुराण पाताल ३ अर्द्ध 69-9-1।

4- श्री स्व गोस्वामीकृत निकुंज रहस्यस्तव श्लोक सं० 3।

5- इत्थं वृन्दावनस्य प्रकट लीलानुगत प्रकाश राव गोलोक इतिव्यख्यातम्

—श्री कृष्ण संदर्भ श्री जीव गोस्वामी कलकत्ता पृ० 4।9

धाम भी वास्तव में भगवान् का एक स्वल्प होता है । वह अप्राकृत तत्त्व है । प्राकृत गुण वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते । वह नित्य भगवद्धाम है ।<sup>1</sup>

निकुंज उपासकों का अभिमत है कि वैकुण्ठ या गौलीक से ऊपर भगवान् का नित्य वृन्दावन धाम है । वहाँ प्रभु की नित्य लीलाएँ होती रहती हैं । उसी का अवतारण भूतल पर दृष्टिगत वृन्दावन है । पद्म पुराण में इस अप्रकट सर्व प्रकट वृन्दावन का परिचयात्मिक दिग्दर्शन है । इसी पुराण में वृन्दावन के आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक तीन प्रकार बतलार गए हैं ।

निकुंज उपासना में वृन्दावन की रस रूप से उपासना की जाती है । रस स्वरूप ही नित्य वृन्दावन धाम सिद्ध धाम रूप में अभिव्यक्त होता है । धाम के समस्त उपादान लीला संयोजन की पृष्ठ भूमि है और यही रस तत्त्व उसके नदी, सरोवर, ताल, तमाल, गुल्यलता, मोर-चकोर, पशु-पक्षियों आदि के रूप में अभिव्यक्त है ।<sup>2</sup> ऐसिक जनों ने इस रस रूप वृन्दावन का अपनी अपनी सूचि के अनुसार विभिन्न दृष्टियों से अनुभव किया है परन्तु इनविविध रूपों में भी प्रेम की प्रधानता सर्वत्र दृष्टिगत होती है । निकुंज बिहारी विहारिनि वृन्दावन की कुंजप्रहों में नित्य नवीन युगल किशोर रूप धारण किये प्रेम लीला में निमग्न रहते हैं । यह प्रेममय वृन्दावन उनकी क्रीड़ाओं को गतिमान बनाता है । यही निकुंज लीला का आधान है । प्रियान्प्रियतम की क्रीड़ा और उनका प्रेमकर्षण वृन्दावन पर ही अवलम्बित है । वह उनकी रति का आगार और नेह का निधान है ।<sup>3</sup> निम्बार्क, राधाकलभ, स्वामी हरिदास एवं ललित सम्प्रदाय के निकुंज लीला उपासक कवियों ने वृन्दावन के सभी रूपों के अत्यन्त विराद और उत्साह पूर्ण चित्र उपस्थित किये हैं । श्री हरिव्यास देव जी महावणी में कहते हैं :-

1- कृष्ण भक्ति कव्य में सखी भाव - शरण बिहारी गेस्वामी पृ० 294

2- पुराण संहिता श्लोक संख्या 23 से 30

3- श्री वृन्दावन सहज सुहावनी ।

नव-नागरी पै नवल नगर नेह निधान ॥

—श्री बिहारिनिदास के रस के पद सं० 164

जय जय श्री कृन्दावन धाम, चिदानन्द धन पुरन काम ।  
 वहति विमल कल केलि सपिनी श्री जमुना चहुँ ओर  
 अति रस रंग तरंग उमंगनि अंग अंगनि प्रति बढवनि मोद ॥  
 दिव्य कनक मय अरुनि अलङ्कित, मृदु मनि मङ्कित मयी मनोज ।  
 विविध भाँति तरु वेलिन शैली, रति रेली अलवेली ओज ॥

x

x

x

x

रंग दास दरहसि वसुधा पुनि, अस सुनि विसद विचित्र अनल ।  
 अमित कला अमृतादि कुंज मधि विलसत भवन अधीपत मूल ॥  
 ऐश्वर्यादि अलिल भुव गजन रंजन स्य अमित रति मैत्र ।  
 नखशिख सुषमा रतनगर वर, कलकमनीय कमल दल नैन ॥  
 अदृष्ट इकरास अदभुत अव्यय, आनन्द मयी अर्चित्य अमंग ।  
 परमधाम अभिरंग पुरंदर सुंदर स्याम सहचरिन संग ॥  
 नित्य नषीनी नवल लाडिली नित्य नवीनी नवल सु लल ॥  
 नित्य नवीनी नवल सहचरी, नित्य नवीनी नवल सुखाल ॥  
 नित्य नवीनी नवल कुंज में, नित्य नवीनी नवल सु नेह ।  
 नित्य नवीने उमंगि उपंगि दोउ, वरञ्जत नवल नवीनी मेह ॥  
 विविध विनोद विहारिनि जोरी, गोरी श्याम सकल सुखरास ।  
 हित सहचरी श्री हरिप्रिया हरषत चरन कमल के पास ।<sup>1</sup>

और आदिवंशी के रचनाकार श्री भट्ट जी केवल कृन्दावन के सम्बन्ध-सूत्र से श्री कृष्णजी का निकुंजलीलानाम कत्व स्वीकार करते हैं । उसके बाहर उनका कोई भी स्वस्य उन्हें ग्राह्य नहीं है :-

रे मन कृन्दाविपिन निहार ।  
 जद्यपि मिलै कोटि किन्तामनि तदपि न हँस पसार ।  
 विपिन राज सीमा के बाहर हरि हूँ को न निहार ।  
 जय 'श्री भट्ट' धुरि-भूषण तन यह आशा उर धार ।<sup>2</sup>

1- महावंशी - हरिव्यास देवाचार्य कृत सिद्धान्त सुख पृष्ठ 174

2- युगलशतक श्री भट्ट देवाचार्यकृत पृष्ठ 45

कृदावन का योगपीठ— प्रत्येक उपासना-प्रणाली में इष्टदेव की मानसी-भावना को नित्य निरंतर अक्षुण्ण और चेतनाशील बनाये रखने के लिए उनके उपास्य स्वल्प का ध्यान करना अनिवार्य होता है । इसमें इष्ट स्वल्प की शक्ती, उनके नाम, रूप, वयस, गुण, संवलित शोभा-शृंगार परिकर, धाम, लीला मुद्रा क्रीड़ा-वितान आदि से समन्वित - दर्शन को हृदयंगम करके उसे अखण्ड (अष्ट कालीन) चिंतन का विषय बनाने का सद्गुरु उपदेश करते हैं । उसके माध्यम से ही गुरु के अनुग्रह साधना और भगवान् की अहेतुकी कृपा से लीला प्रवेश का इष्ट-स्वल्प की अधिकार मिलता है जिससे क्रमशः प्राप्ति संभव है । यह जन्म जन्मतिर की साधना और भगवत्कृपा का प्रसाद ही मानना चाहिये । इष्ट स्वल्प के अनवरत मानसी ध्यान विषयक चिंतन निमित्त इस समन्वित दर्शन की 'योगपीठ' संज्ञा है । निकुंज लीला के उपास्य श्री युगल बिहारी श्री राधाकृष्ण है । उनका धाम कृदावन है और वे सखी सहचरी से निरंतर सेवित हैं । कृदावन के कुंज निकुंज के गोप्य मोहन-महल में उनकी निकुंज लीला संपादित होती है । श्री भट्ट जी निर्देश करते हैं कि :-

सन्तो सेव्य हमारे श्री पिय प्यारे कृदाविपिन विलासी ।

नंदनंदन वृषभानु नन्दिनी, चरण अनन्य उपासी ।

मत्त प्रणयकरा सदा एक रस, विविध निकुंज निवासी

जै श्री यह युगल वंसीवट, सेवत मूरति सब सुखरासी ।<sup>1</sup>

इस लीला में कृदावन की विविध निकुंजों में एकास रहकर सुरति केलि में मत्त श्यामश्याम जिनके कैकर्य में यथेश्वरियाँ और सहचरी गण निरंतर निरत हैं उपास्य हैं । उनके योगपीठ का महावणी में श्री हरिव्यास देवजी ने विशद वर्णन किया है । उनका कथन है कि 'ब्रह्मण्ड के अन्तर्गत सबसे नीचे पाताल की कुक्षि में अष्टाद्विंशति नरक हैं । उनके ऊपर सप्त पाताल हैं । पातालों के ऊपर हमारा लोक है और उसके ऊपर ध्रुवलोक, गृह, नक्षत्र और अन्तरिक्ष है । उसके ऊपर स्वर्ग है जो सँख्या में पाँच - महेन्द्र, महर्लोक, जन, तप और सत्यलोक हैं । ब्रह्मण्ड आकृति

1- श्री भट्ट देवाचार्य कृत - युगल शतक, सं० ब्रजक्लम शरण पृष्ठ 2 पद संख्या 5



में सबसे छोटा पारन्तु महत्ता में सबसे बड़ा है । फिर क्रमशः एक से एक बड़े अर्ध  
 अर्ध ब्रह्मण्ड हैं जो मायिक प्रकृति भी सृष्टि हैं । उनसे आगे कारणार्णव विराजा है  
 और उससे आगे चैतन्यज्योति स्वस्व परब्रह्म का विस्तार है तदनन्तर भगवत्लोक है,  
 उसके पश्चात् अवध धाम है, उससे आगे व्यास और तदनन्तर मथुरापुरी है ।  
 उससे भी आगे विशुद्ध प्रेमात्म्य के परमोन्मादक रस स्वस्व श्री कृष्ण की प्रेम सम्पत्ति  
 स्वस्व ब्रजधाम है और तदनन्तर श्री कृदावन धाम है । इसके मध्य में परम  
 सुन्दर मन्त्र कामवीज विलासात्मिका निकुंजवाटिका — मोहनमहल है ।

श्री विपिन राज की वह भूमि जिस पर मोहन महल बना है परम दिव्य,  
 स्वर्ण के समान देदीप्यमान तथा प्रेमोन्मादक सुगन्धिपूर्ण है । उसमें दिव्य मणियों के  
 जड़ाव से युक्त लम्बे चौड़े मार्ग, सरोवरों तथा दिव्यातिदिव्य कुँजे हैं जिनके वृक्ष नितान्त  
 दिव्य है - सरस शोभा मय है । उनकी पीढ़ नीलमणि मय, शाखा हरित मणियों  
 की और पत्ते पीत मणियों के तथा फल अस्म मणियों के हैं । उन पर लल रंग  
 (सुरंग) के परम मधुर तथा शोभायुक्त फल झिल रहे हैं । अनेकों वृक्ष ऐसे हैं कि  
 जिनके फल, फूल शाखा मूल विविध दिव्यरंगों के हैं। वहाँ के वृक्ष और जिस भूमि पर  
 वे उगे हैं उसमें विचित्र सामंजस्य है जैसे पद्मरागमय मणितो मरकत मणियुक्त वृक्ष,  
 इन्द्र नील मणियुक्त वृक्ष तो स्वर्ण मणि मय लतिकारें आदि ।

इनमें से कुछ लतिकारें अर्ध भामिनी होकर लतानिकुंज, वितान आदि की  
 रचना कर रही है तथा कुछ लतरें बहती हुई धारा - सदृश भूमि पर गमन करती  
 हुई उस निकुंज में गुदगुदे सिंहासन तथा मृदुल शय्या आदि की रचना कर रही है ।

इस धाम के चारों ओर केलिलपिणी कंकणाकार श्री यमुना जी है जिनमें  
 सक्षात् शृंगार रस द्रव ही प्रवहमान हो रहा है । यमुना रंगविरंगी तरंगों से  
 ढवि विकसित है जिसमें अस्म, नील, पीत रंगों के कमलगण विकसित हैं जिन पर  
 मधु के लोभी भ्रमर गुंजार कर रहे हैं और हंस, सारस, चक्रवाक, मोर, कोकिला, चातक  
 कीर चकोर सभी मधुर स्वर में युगल वर का नाम स्मरण कर रहे हैं ।

-----  
 1- हरिव्यास देवाचार्य कृत - महावाणी, सिद्धान्त सुख पृष्ठ 171--177 तक ।

वनराज की इस अनुपम वानिक को देखकर सम्पूर्ण शोभाली के अगार श्री युगल किशोर के मन में लोभ उत्पन्न हो गया है जिसके फलस्वरूप वे एक क्षण मात्र के लिए भी विमुक्त नहीं हो रहे हैं। श्री यमुना जी के मध्य में अमितदल कमलाकार प्रशस्त भूमि है जिसके मध्य अष्टदल की पंक्ति है। प्रत्येक दल के ऊपर अष्ट यथेश्वरियों की आठ कुंजी हैं, उनके मध्य में दिव्य कर्णिका है। इस कर्णिका के चारों ओर मान, मधुर, मम और स्वस्म नाम के चार सरोवर हैं जिनके चारों ओर विविध वृक्ष, नगी से जड़ाऊ घाट और सीढ़ियाँ हैं। इन सरोवरों के मध्य कविकुल अष्ट द्वारों का विस्तृत महल है जिसके प्रत्येक द्वार पर कामरस विजयिनी पतकिरी पहना रही हैं तथा उन पताकियों पर लिखा है 'मान विरह भ्रम को न लेस जंह रसिक राम को रसमय मोन'। इस महल के बीच प्रशस्त चौक है जिसके मध्य स्थल में कामरस पुंजीभूत विशद मणि मण्डल है। इस मणिमण्डल की आठों दिशाओं में अष्टमोहिनी नायक आठ कुंजी हैं जिनमें मंगला से शयन पर्यंत श्री युगल की अष्टकालीन सेवा सम्पन्न होती है। -- उस मणि मण्डल के ऊपर मोहन-महल है जिसकी विविध मणिमय विचित्र रचना है। मोहन महल में मृदुल शैया पर दिव्य सुरति केलि क्रीड़ा परायण श्री श्यामश्याम विराजमान है। मोहन महल के चारों ओर रसपुंज मोहन मण्डल है जिसके आठ कोनों पर निज परिकरों सहित आठ यथेश्वरियाँ विराजमान हैं जो मध्य सिंहासन पर विराजि श्री मोहन मोहिनी की सेवा में तत्पर हैं। मोहन महल तथा सम्पूर्ण निज धाम में श्री श्यामश्याम निकुंज लीला परायण है।<sup>2</sup> श्री हरिप्रिया जी ने अष्ट सखियों - यथेश्वरियों तथा परिकर की शोभा और सेवा का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है जिसका मनन और चिंतन रस प्रवेश का राजमार्ग कहा गया है।<sup>3</sup>

डा० भगवती प्रसाद सिंह ने 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' शीर्षक अपने शोध प्रबंध में भगवान् श्री सीताराम की निकुंज लीला के संदर्भ में इसी प्रकार ब्रह्म सक्ति

1- श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत महावाणी पृष्ठ 171 - 177 तक

2- निकुंजो पासना रहस्य - कुंज विहारी शरण, कृदावन।

3- कर्म अरु ज्ञान करिके सदा दुल्लभा - सुल्लभा पराम्भक्तिहिं प्रकाशी।

हितु श्री हरिप्रिया की कृपा दृष्टि से निकट निरखें नित्य दासी

महावाणी - हरिव्यास देवाचार्य पद 7 पृष्ठ 175

के योगपीठ का वर्णन किया है और उसका चित्र भी दिया है जिससे वह यथेष्ट स्पष्ट है ।<sup>1</sup>

सहचरी वर्ग -- निकुंज लीला का अंतिम और सबसे प्रभावशाली विधायक तत्व सखी-सहचरी है । जिस प्रकार श्री कृष्ण नित्य है - राधा नित्य है वृन्दावन नित्य है उसी प्रकार राधा कृष्ण परिकर स्या सहचरी वर्ग भी नित्य है । श्री राधा की कृष्ण की अंग सगिनी - उनकी प्रणेश्वरी है और रस-संचारिणी है - इनके बिना कृष्ण अपूर्ण है और कृष्ण के बिना राधा अपूर्ण है इसी प्रकार सहचरी वर्ग के बिना राधा कृष्ण दोनों ही अपूर्ण और नितान्त अधूरे हैं । उनके बिना राधा कृष्ण की रसकेलि संभव नहीं है - सर्वथा नीरस फेकी और त्याज्य है । सहचरी वर्ग जीव अथवा साधक का प्रतीक है जिनके परमार्थ हेतु निकुंज लीला का विधान है । वे राधा कृष्ण की रास लीला, निकुंज बिहार, विवाह मंगल सभी स्थितियों में पूरक है । वे रस - संचार में यथा-वसर युगल दम्पति की प्रेरणा का स्रोत है । वसन्तगम में मानिनी राधे ने श्री हित सखी प्रेम का उद्बोधन करते हुए कहती हैं :-

आजु मेरे कहे चलो मृगनेनी ।<sup>2</sup>

गावत सरस जुवति मंडल में, पिय सों मिलें भले पिकबैनी ।

परम प्रवीन कोक-विद्या में अभिनय निपुन लग मति लैनी ।

स्य रासि सुनि नवल कियोरे, पल पल घटत चाँदनी रैनी ।

(जै श्री) हित हरिवंश चली अति आतुर राधाअनि सुरत सुखदैनी ।

रहसि रमस आलिंगन चुम्बन मदन कोटि कुल भई कुचैनी ।

इस प्रकार सहचरीगण प्रेक-प्रेम की सक्षात मूर्तियाँ हैं । भोक्ता-भोग्य की पारस्परिक रति इनके द्वारा स्फुरित होकर अपने उल्लसित रूप में चरितार्थ होती है । प्रेम के क्षेत्रमें वे हित-संधियाँ हैं । प्रेम के दो किराँ को जोड़ने वाली

1- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय - डा० भगवती प्रसाद सिंह पृ० 275 - 76

2- श्री हितहरिवंश - हितचौरासी पद सं० 16 पा० 9 वृन्दावन ।

सुमेरु हैं । अथवा दो शरीरों की एक परकाहीं है। जैसे दो नेत्रों में एक दृष्टि रहती है, अथवा दिन और रात्रि के बीच संध्या है वैसे ही। श्री श्यामश्याम के बीच सुभद्रायिनी सखी है ।

तत्सुखी भावना सखी के आत्म समर्पण की सबसे बड़ी कसौटी है । निकुंज रस की सखी का रस कव्य जगत के सामाजिक का सा है । एकत्म भाव से युगल का आनंद विभोर होकर दर्शन और यथावश्यकता उनकी क्रीड़ा रति में उन्हें संभावना प्रोत्साहित करना और व्यक्ति सेवा में पूर्ण तल्लीनता से संलग्न रहना उसकी सबसे बड़ी कृतकार्यता है । सभी सम्प्रदायों में अपने आचार्य को (सम्प्रदाय के प्रवर्तक) श्री राधा की प्रमुख यथेश्वरी माना है उनके साथ अन्य सात सखियों के नाम जोड़ दिये जाते हैं । महावाणीकार ने रंगदेवी (श्री निम्बाकचिर्ष) को प्रमुख यथेश्वरी माना है उनके साथ सुदेवी, ललिता, चित्रा, इन्दुलेखा, चंपकलता, तुंगविद्या सात अन्य यथेश्वरियाँ हैं । इनमें से प्रत्येक यथेश्वरी की आठ सहचरी हैं और फिर इनके यथ में अनेक असंख्य सहचरियों का वर्णन रस ग्रंथों में आया है ।<sup>2</sup> श्री स्वा० हरिदास जी के सम्प्रदाय में स्वामी जी को ललिता सखी का अवतार मानते हैं । वे राधा की प्रमुख यथेश्वरी मानी जाती हैं । इसी प्रकार उनकी श्री अन्य सखी - यथेश्वरियाँ हैं । उनकी नामावली नाम के अनुसार गुणों और सेवा का उल्लेख सर्वत्र प्राप्ति है ।

1- दुहुअनवीच सखी यह नहिं, दुहु तन की राकै परकाहीं ।

त्यों दुहु बीच सखी सुभद्राई, दुहु नैननि ज्यों दीठ रहाई ।

सखि सखि ज्यों निसिदिन माही ।

मोहन जी कृत - कैलि कल्लोल

2- रजकन, उडुगन, बूंदधन, आवत गिनती माहि ।

कहत जोइ थोरी सोई, सखियन संख्या नहि ।

ध्रुवदास, सभामण्डपलीली दोहा सं० 8। पृष्ठ 134

इस निबंध के सम्बन्ध योजना शीर्षक अध्याय में इस सम्बन्ध में पूर्व में यथेष्ट चर्चा हो चुकी है ।<sup>1</sup>

निकुंज लीला की अन्य सैद्धान्तिक प्रवृत्तियाँ  
=====

(1) प्रेम और काम — निकुंज लीला का प्रेम सर्वथा निष्काम, निस्वार्थ और अप्राकृत है, अतः वह सैसरिक काम से कोसों दूर है । लौकिक प्रेम में नायक अपना सुख चाहता है और नायिका अपनी वासना पूर्ति लक्ष्य होता है, अतः वह विशुद्ध प्रेम नहीं है । निकुंज लीला अप्राकृत पुरुष अप्राकृत प्रकृति (शक्ति, योग मया आदि) से संयोग है, अतः उसमें लौकिक वासना की संभावना नहीं । विशेषता यह है कि युगल बिहारी के अतिरिक्त उनके, अन्य सहायक तत्व (विधायक तत्व) श्री कृदावन सर्व सहचरी गण भी अप्राकृत सृष्टि है । श्री राधा को जो भाता है वही श्री कृष्ण करते हैं और जो श्री कृष्ण करते हैं वही राधा जी का मनोवर्कित है<sup>2</sup> अतः उनके प्रेम निर्वह में कहीं अटकाव नहीं है । श्री राधा अपने नैसर्गिक प्रेमावेश में जिस काम का चिंतन करती हैं वह पशुपति द्वारा दग्ध होने के अनन्तर नित्य नवीन रूप धारण करके पुनः प्रेमोत्पादन में सहायक होता है । अतः वह वासना अन्य काम न होकर प्रेम मार्ग में प्रेरक, प्रवल भाव है ।<sup>3</sup>

(2) प्रेम और नेम — 'नेम' में वस्तुओं में कारण कार्य सम्बन्ध होता है अर्थात् जो किया जाय वह फलित हो वही नेम है परन्तु निस्वार्थ निष्काम प्रेम सर्वथा स्वाभाविक है और अनन्यता लिए होता है इस कारण उसका प्रेरक या उत्पादक कोई नेम नहीं होता<sup>4</sup> कहावत प्रसिद्ध है 'जहाँ प्रेम है वहाँ नेम कहाँ' । अन्य प्रेम

1- इस निबंध की पृष्ठ संख्या १३ .

2- हित चौरासी पद सं० । - हितहरिवंश, वेणु प्रकाशन, कृदावन ।

3- राधा क्लृप्त सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ 162 - डा० विजयेन्द्र सातक

4- रहि गयो मण उरै नेम अरु प्रेम की परकृत्यो परा की परम परपथ

-हरिव्यास देव कृत महावर्ण पृष्ठ 176

होने पर निश्चय ही नियम नहीं रहते । परन्तु प्रेमोदय एवं प्रेम में तीव्रता लाने के कुछ नेम जैसे निर्निषेध चितवन, स्मित हास्य, मान, कोक के विलासदि, वातलाप आदि परम्परागत है २ नित्य एक रस रहने वाले प्रेम के साथ ये क्रियाएँ 'यौत्रित' रहती है । अतः 'यौत्रित नेम' गृहीत है, त्याज्य नहीं है । विहार परक प्रेम का यह एक अंग है ।

निकुंज लीला का आनन्दस्वादन प्रेम लक्षणा भक्ति के उदय के अनन्तर भगवद् कृपा साध्य है । यह मार्ग बड़ा विलक्षण और दुरूह है । नवधा भक्ति साधनत्मक नेम ही है जिसका इस स्थिति में लोप हो जाता है । अतः साध्य तक पहुँच जाने की दशा में इनका कोई महत्त्व नहीं रहता । वे अनावश्यक हो जाते हैं ।

विधि-निषेध लोक व्यवहार के बंधन हैं । वे जगत्तिक नेम के अंतर्गत है । इस कोटि का मयदावादी कर्म काण्ड परक नेम रस मार्ग में उपादेय नहीं है अतः त्याज्य है । वाह्याचारों की विशेषता से शुद्ध प्रेम की क्षति होती है । ३

विधि निषेध मयदा — कृदावन की निकुंज लीला उपासना में विधि निषेध मयदा का कोई महत्त्व नहीं है इसकारण महावाणीकार (श्री हरि व्यास देव जी) रस साधकों को निर्देश करते हैं :-

"विधि निषेध के जे जे धर्म, तिनको काढ़ि रहे निष्कर्म ।" ४

१- श्रीमान् देवजी गोवर्जी पूछे - १७६

२- दोउ जन मीजत अटके वातन

सधन कुंज के द्वारे ठाँ अम्बार लपटे गतिन

ललिता ललित स्य रस मीनी, बंद बचावत पातन ।

जे श्री हित हरिवंश परस्पर प्रीतम मिलवत रतिरस घातन ॥

--सेवक जी की स्फुटवाणी पद सं० २३

३- श्री हितहरिवंश गोस्वामी - सम्प्रदाय और साहित्य ले०

ललिता चरण गोस्वामी पृष्ठ १०३

४- हरिव्यास देवाचार्य कृत महावाणी पृष्ठ १८७

रसोपासना परक अन्य सम्प्रदायों के उपासकों का भी यही अभिमत है । प्रसिद्ध है कि महात्मा हरीराम व्यास जी ने श्री राधा क्लेश जी की प्रसादी पकौड़ी मेहतारानी की डलिया से उठा कर पा ली थी । रास - रास में विशोर होकर उन्होंने अपने जनेऊ के धागे से प्रिया जी के घुघरु को बांधा था और तीर्थ, व्रत, सकादशी आदि का उन्हें कोई आग्रह नहीं था । गो० हित हरिवंश की प्रशस्ति भी नामादास जी ने अपने भक्त माल में 'विधि निषेध 'मयदा' के उच्छेद कर्ता के रूप में ही की है जिस पर टिप्पणी करते हुए प्रियादास जी ने अपनी टीका में लिखा है :-

''विधि औ निषेध हेदि डारे प्रान प्यारे हिये ।

इससे संकेत मिलता है कि रसिक मार्ग की उपासना में कर्म काण्ड की कठोरता बाधक है उससे साधक की मनोवृत्ति कर्षा हो जाती है । श्री हित हरिवंश ने रसिक - स्वस्व का राधा सुधानिधि में वर्णन करते हुए लिखा है कि ''श्री गुरु के भजन स्त्री पराक्रम युक्त कोई महाबुद्धिमान पुरुष इस पृथ्वी पर बिरले ही हैं जो न तो अपने बाहुमूल में कभी शस्त्र चक्रादि वैष्णव चिन्ह धारण करते हैं और न कभी ललाट-पटल पर विचित्र हरि मंदिर (तिलक) ही रचते हैं और कंठ में सुहावनी तुलसी की माला ही धारण करते हैं'' 2 उससे आगे के श्लोक में उन्होंने वेदोक्त कर्म-काण्ड एवं माला चंदन आदि भोग विलास के उपकरणों का भी निषेध किया है 3

इस सबका तत्पर्य यह है कि वे वैदिक कर्म काण्ड - योजित पूजा उपासना के पक्ष में नहीं हैं । अन्य स्थानों पर विधि रूप में उन्होंने केवल एक ही तत्व पर बल दिया है कि रसिक स्वरूपिणी सहचरी को श्री राधा की प्रेम निमग्न निकुंज विहार मुद्रा का दर्शन अवश्य करना चाहिये । 'सहचरी रूप से जीवत्मा यदि जुगल किशोर की लीला

1- रूप कला वार्तिक तिलक - नामा जी कृत भक्त माल पृष्ठ 598 कण्ठ ।।।

2- राधा सुधानिधि श्लोक 8।

3- कर्माणि श्रुति बोधितानि निर्वरा कुर्वन्तु कुर्वन्तु मा ।

गुदाश्चर्य रसाः स्त्रगादि विषयान्गुह्यन्तु मुचतु वा

केवा भाव रहस्य पराग मतिः श्री राधिका प्रेयसः

किं चिन्निरनुयुज्यता वहिरही भ्रान्त्यादि भ्रायैरचि ।

-राधा सुधानिधि श्लोक 82

को देख सके तो यही उसके जीवन का फल है और उनकी निकुंज लीला के समय 'माहिली' बनने का प्रोग्राम मिले वही सब करना विधेय है । अन्य कुछ भी नहीं चाहिये । सारांश यह है कि निकुंज की उपासना में वैष्णव धर्म में प्रचलित वाह्याहम्बारों को त्याज्य माना है । सकादशी व्रत यात्रा और परिक्रमा सत्य-नारायण कथा , तुलसी पूजा सभी वैष्णवों के उपासन-अंग हैं परन्तु यहाँ उनकी भी अनिवार्यता नहीं है । स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय में कोपीन, करवा, कुवरी, वृन्दावनसक्ति और श्रीवनमें निवास, यमुना स्नान, दर्शन, रज धारण, सत्संग, प्रसाद ग्रहण, आचार्य निष्ठा, नाम-जप, वाणीपाठ की अनिवार्यता है । श्रीभगवतरसिक ने इनमें से भी अधिक आवश्यक सात बातों पर बल दिया है :-

प्रथम सुने भागीत, भक्त सुख भगवत वानी ।  
 द्वितीय अराधे भक्ति, व्यास नव भाति बखानी ॥  
 तृतीय करै गुरु समझि, दक्ष सर्वत्र रसीलौ ।  
 चौथे होइ विरक्त, वसै वनराज जसीलौ ॥  
 पचि भूले देह निज, छटै भावना रास की ।  
 सातें पावै रीति रास श्री स्वामी हरिदास की ॥

१ अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ - भगवत रसिक पृष्ठ 79 राम भक्ति ने रसिक सम्प्रदाय में विधि-निषेध की प्रायः कठोरता ग्रहण है । वहाँ रसिकों में पंच भावीपासक हैं । भगवान् श्री राम का रसिक रूप सर्वत्र अनुकरणीय है परन्तु एक सीमा तक उनके मर्यादावादी स्वस्व ने उसे अवश्य ही प्रभावित कर रखा है ।

निकुंजो पासना मार्ग के साधकों के लिए सभी वैष्णव सम्प्रदायों में रहनी, कथनी, चिंतन और नित्य चर्या सम्बन्धी मर्यादाओं के संकेत सिद्धान्त कथन के क्रम में दिए गए हैं । वे प्रायः समान ही हैं । झूठ क्रोध, निर्दादिक का त्याग, निष्काम भाव, भगवत प्रसाद ही भोजन का आधार, समस्त जीवों पर कल्याण, पालन वचन न बोलना, भगवान् की माधुर्यपूर्ण लीलाओं में अष्टकालीन रमण, भगवान् और गुरु की अभेद भावना ये द्वादश लक्षण महावाणी में इन साधकों के लिए बतलाए गए हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने साधनाक्रम में दस स्थितियाँ (पैड़ी) और मानी हैं जिनको क्रमानुसार



पार कर लेने पर निकुंज बिहारि विहारिन की सेवा में स्थान मिलना संभव होता है:-

जकि दश पैड़ी अति दृढ़ है, विन अधिकार कौन तहँ चढ़ि है ।  
 पहले रसिक जनन को सेवे, दजी दया हृदय धरि लेवे ॥  
 तीजी धर्म सुनिष्ठा रखे, चौथी कथा अनूपत ह्वे भाखे ॥  
 पंचमि पद पंकज अनुरागे, षष्ठी रस अधिकता पागे ।  
 सप्तमि प्रेम हिये विरधावे, अष्टमि रस ध्यान गुन भावे ।  
 नवमी दृढ़ता निश्चै गहिवै, दशमी रस की सरिता वहिवै ।  
 या अनुक्रम ते जे अनुसरहीं, शनै शनै जगते निखरहीं ।  
 परमधाम परिकर मधि कसहीं, श्री हरि प्रिया हितु संग लखाहीं ।

उदत्त स्वभाव, भगवान् की माधुर्य मयी लीलाओं का चिंतन, रास, भगवत् कथा श्रवण, प्रेम की अनन्यता और इष्ट में दृढ़ विश्वास इस साधनों के अनिवार्य अंग हैं ।

### निकुंज प्रेम और रस सौंदर्य -

उदत्त भूमि पर अखण्ड प्रेम निवह के लिए प्रेम की गम्भीरता का सर्वोपरि महत्व है । प्रेम की ऐसी आकक्षा जो प्रेमी को चैन न लेने दे । उसकी प्रेम तृष्णा नित्य निरंतर बढ़ती ही रहे - अधीरता में परिणित होने लगे तब कहीं इस आतुरता और बेकली को प्रेम आविग का मूर्तिमान रस कहना पड़ेगा । प्रेम तृष्णा का सिंचन रस-जल से होता है और रस सौंदर्य का पूर्ण विकास शृंगार-रस के लिए ही गोचर होता है । अतः श्री ध्रुवदास जी ने शृंगार केलि में 'अदन रस' या 'प्रपानक रस' बताया है । यह नित्यचर्या का आवश्यक अंग कहा जा सकता है । राधा और कृष्ण प्रेम के दो रस हैं । 'राधा' केलि प्रधान है, कृष्ण 'तृष्णा' प्रधान है । श्याम सुंदर में प्रेम की तृष्णा परिलक्षित हुई है और राधा में 'अनीग की केलि' । इस प्रकार प्रेम और रस - तृष्णा और केलि के नित्य संयोग से निकुंज में प्रेम की अखण्ड और एक रस लीला चलती रहती है ।

प्रेम रस की अन्य लीलाओं की भांति निरुज लीला का प्रारम्भ भी स्व दर्शन से होता है । कुंज बिहारी श्री कृष्ण यद्यपि अनन्त सौंदर्य निधि हैं परन्तु स्व सौंदर्य की सक्षात् प्रेममयी मूर्ति श्री राधा जी की स्व राशि कुछ विचित्र ही है । उनका नीलाम्बर मन मोहन का मन मोहित कर रहा है । विभिन्न अंगों की कान्ति समस्त शरीर पर आच्छादित है, सुहाग का कत्र शीश फूल श्यामसुंदर के मन में सुख का संचार कर रहा है और उनकी सुकुमारता और नवोद्गापन उनकी वैवसी और वैकली का कारण बना हुआ है ।<sup>1</sup>

स्व जल में तरंग उठत कटाञ्चलि के,  
 अंग अंग भौरनि की अति गहराई है ।  
 नैननि को प्रतिबिम्ब पर्यो है कपोलनि में,  
 तेई तेई भये मीन तहाँ ऐसी उर आई है ।  
 अस्न कमल मुसिकनि मानी पवि रही,  
 धिर कनि वैसरि के मोती की सुहाई है ।  
 भयो है मुदित सखी लाल को मराल मन,  
 जीवन जुगल ध्रुव एक ठाँव पाई है ।  
 अद्भुत कवि की माधुरि, चितै विवस हवै जाहिं ।  
 यहै सोच पिय प्रेम को, रहत प्रिया मन माहिं ॥<sup>2</sup>

राधा के अद्भुत स्व को देख कर वे विध्वजित हो जाते हैं । उनका मन प्रेम समुद्र में डुबकी लगाने लगता है । उन्हें अपने शरीर की सुधिबुधि नहीं रहती, प्रियाजी के मन में इस निमित्त चिंतशील हैं । परम प्रवीणा श्री राधा अनुकूल अवसर पाकर उन्हें अपनी कीमल बाहुलताओं में आबद्ध कर लेती हैं और उनको अधामृत पान कराकर बल पूर्वक प्रेम भँवर से निकाल लेती हैं । महामधु का पान कर श्री श्यामसुंदर को थोड़ा अवलम्ब मिलता है । वे सचेत और सचेष्ट बन जाते हैं । इधर कृन्दावन और नवनि कुंज का वातावरण उनका बहुत सहायक होता है—

1- ध्रुवदास - शृंगार सत लीला पृष्ठ 78 पद 6

2- ध्रुवदास की वयालीस लीला शृंगार सत लीला पद 22, 24

शरद मास राका निशि शीतल, मंद सुगन्ध समीर ।  
परिमल लुब्ध मधुव्रत विक्रित नदत कोकिला कीर ।  
बहु विधि रंग मृदुल किसलय दल निर्मित पिय सखि सेज,  
भाजन कनक विधि मधु पुरित धरे धरति परहेत ॥<sup>1</sup>

शरद ऋतु, पूर्णिमा की रात्रि, शीतल, मंद, सुगंध पवन का संचार, पारण के  
झीजी मधुप समूह की गुनगुनाहट, कोकिल की कुहक, अनेक रंगों के मन में उल्लास ब्रह्म  
बढ़ाने वाले किसलय समूह, सखियों द्वारा निर्मित कोमल तल्य और सोने के  
पात्रों में सावधानी से रखे हुए विविध मधु पेय सभी कुछ उन्मादकारी था ।

इस प्रकार दोनों और से समान स्म से सिंचन पाकर केलि बेलि उन्नत  
हुई । किशोर किशोरी का परस्पर हास परिहास फिर प्रियतम द्वारा प्रिया  
के उरज स्पर्श की चेष्टा प्रिया द्वारा उसका गोपन, 'प्रतिपद प्रतिकूल' प्रतिकूल  
कामिनी द्वारा कुटिल भ्रम और आतुर प्रियतम द्वारा उनका प्रगाढ़ आलिंगन,  
तदनन्तर नीबी मोचन और नगरी का 'कपट-हठ-कोप से' नैति<sup>2</sup>कथन प्रिया  
द्वारा प्रियतम का परिभ्रम और विपरीत रति वितरण मानों इन्द्रनील मणि  
से निर्मित तरु से कनक की बेलि उलझ गई हो इस प्रकार के प्रेम और स्म के  
ये हितव्यापार अनादि क्रीड़ा क्रम से नित्य नूतन प्रकारों से चल रहे हैं । सुरत  
के अनन्तर दोनों के ललाट पटल पर श्रम-सीकर की झलकन का ललितदिक अनुराग  
भरी सखियाँ अचल पवन से अपनोदन करती हैं ।<sup>2</sup> राधा-माधव की यह विपरीत  
रति-केलि सखी-सहचारी के लिए अत्यन्त प्रेममय पूर्ण-जलौकिक घटना है । इसके  
लिए न जाने कितने दिनों से उनके जी तोड़ प्रयास चल रहे थे । कितनी  
उत्सुकता, अकिंश और चौक पूर्ण प्रतीक्षा इसके साथ लगी थी । जब से उन्हें  
ज्ञात हुआ कि श्री राधा, अब स्वस्थ चित्त हैं उनके उल्लास का वारापार न था ।  
नित दिन प्रियाप्रियतम के समागम की वै मनोतियाँ कर रही थीं क्योंकि उनका  
मौज्य यही निकुंज लीला ही तो है ।

1- हित चौरासी हित हरिवंश पद सं० 30

2- वही वही वही ॥

अजु महा मंगल भयो माई ।

भई प्रसन्न सिरमनि राधे यह सुख क्यो न जाई ।<sup>1</sup>

वे चाहती हैं कि ऐसा मौसम सदैव बना रहे जिससे कि प्रियाप्रियतम की अनुरक्ति वृद्धि पाती रहे । पावस की कमनीय कटा उनके चीज और मनोज को बढ़ाती रहे :-

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहे वोलनि मोरनि ।

नीके बादर नीके धनुष चहुँदिसि नी की कृन्दावन आछी नीकी  
मेघन की घोरनि ।

आछी नीकी भूमि हरी हरी आब्दी नीकी बूढ़नि की रँगनि  
कम किरोरनि ।

श्री हरिदास के स्वामी स्याम के मिलि आवत रग मलार

जम्यो कसोर कसोरनि ॥<sup>2</sup>

इस प्रेम-विहार में नृत्य संगीत और शृंगार की कलाओं का क्षण क्षण में प्रकाश होता रहता है । युगल-नृत्य संगीत और अभिनय की परावधि है । उनमें रस और रसिकता की दोनों सीमों आकर मिल जाती है । रसिकता गुणों के विवर्धन का बीज है और गुणों से रसिकता उद्बोद्ध होती है । इस सुता के तट पर कल कल निनाद और महामोहन ध्वनि, इधर युगल किशोर के मुख से 'थेई-थेई' के स्वर जिन्हें कर्ण गोचर होते ही सभी जन को अपनी देह-दशा भूल जाती है । नृत्य की ताल गति के बीच बीच प्रियतम प्रियतमा कच, कुच, हार और कन्धों का स्पर्श करते हैं । इनके मृकुटि-विलास और मृदु-हास से चारों ओर प्रेम रस बरसता रहता है । युगल वर के रम्य-लावण्य की समता कौन कर सकता है ।<sup>3</sup> यहाँ तक युगल नृत्य की बात रही श्री श्यामाश्याम का रास-विलास सर्वथा प्रेम, सौन्दर्य, लावण्य, नृत्य, अभिनय, संगीत हाव भाव और विलास से सर्वथा परिपूर्ण होता है ।

1- स्वा० हरिदास समाज शृंगला गायन - सं० विश्वेश्वरराण कृन्दावन पद सं० 12

2- वही वही पद संख्या प्रथम दिवस ।

3- हित चौरासी - हितहरिवंश पद सं० 62, वैष्णु प्रकाशन, कृन्दावन ।

निकुंज-विहार में सखियों का बहुत बड़ा हथ रहता है । वे राधामाधव की खिच लेकर उनके प्रेम विनोद में सहयोग देती है । वृन्दावन में वहाँ ऋतुओं समय से आती है और युगल केलि में रसवर्धन करती है । वर्षा शरद और बसंत ऋतुओं विशेष अनन्द दायिनी है । वैसे युगल बिहारी के प्रेममन्द के लिए वृन्दावन में अष्टयाम में सभी ऋतुओं अपना अपना अवसर ले लेती है । सखियों के आकर्षण पूर्ण सेवा समर्पण में भी स्व सौंदर्य का बहुत बड़ा हथ है ।

राधा माधव की विवाह लीला स्व सौंदर्य की अभिव्यक्ति नित्य नवीन उल्लास की अभिवृद्धि और लोक मर्यादा संगति आदि दृष्टियों से निकुंज लीला की सबसे महत्व पूर्ण भूमिका है । वर दुलहिन की स्थिति में इसमें प्रिय-प्रियतम के मन विशेष तरंगयित होते हैं । उस समय की वैश भूषा, अलंकार धारण, सीलहों शृंगारों की पूर्णता उनमें नव उल्लास और नवीन आमोद प्रमोद का संचार करती है । उनका अद्भुत प्रेम-सौंदर्य प्रतिक्षण नूतन बनता रहता है । श्री राधा माधव नित्य नव वरवधु हैं । निम्बार्क, क्लृप्त राधा क्लृप्त, स्वामी हरिदास, ललित सम्प्रदाय सभी के आचार्यों ने विधिवत श्री श्यामश्याम के पाणिग्रहण का विधान किया है और उनके विवाहोत्सव का अत्यन्त उल्लास से वर्णन किया है । विवाह के अनन्तर ही वर-दुलहिन समगम के स्व में निकुंज लीला का समन्वयन है । श्री हितहरिवंश ने नूतन प्रेम रस के आस्वाद के लिए इसी स्व में उपासना की है और दूल्हा दुलहिन के रस विलास का वर्णन किया है । राम सम्प्रदाय की रसिक शास्त्रा में तो निकुंज-रस का प्रारम्भ श्री सीताराम के विवाह मंगल से ही होता है ।<sup>1</sup> सखियों के लिए विवाह का दिन सब दिनों से श्रेष्ठ है अतः वे युगल के कर्णों में प्रति दिन कंकण बन्धि रखती है । वे युगल की मञ्जोरी करती हुई हास विलास से पूर्ण होती है, उन्हें विवाह के खेल खिलती है परस्पर कवि - कवित श्यामश्याम नित्य सुहृण रात का उपयोग करते हैं ।<sup>3</sup> निकुंज लीला

1- रामभक्ति साहित्य में रसिक सम्प्रदाय - भुवनेश्वर मिश्र माधव - पृष्ठ 114

2- दूल्हा दुलहिन हथ डोरना, बन्धियो रखत सजनी ।

यह दिन इनको प्यारो लगै, याही रस की भजनी ।

खेल खिलवै मंगल गमवै, लुनै सुख सीर उपजनी

वृन्दावन हित स्व कवे कवि नित सुहृण के रजनी ।। - युगल सनेह-पत्रिका

का उस वास्तव में "एकमात्र प्रथम समागम एकान्त रस विलास - निज महल श्री वृन्दावन नव-निकुंज मंदिर में ही अनादि काल से सुशोभित रहे है ।" ।  
 रस विधान और सौंदर्य सुषमा की दृष्टि से प्रथम समागम सामान्य जीवन में भी सर्वोत्कृष्ट, पर्वधिक आकर्षणपूर्ण अवसर है ।

### निकुंज लीला और नित्य विहार

प्रस्तुत निबंध में निकुंज लीला विषयक विश्लेषण और तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के अनन्तर हम इस दिशा में निम्न निर्णयों पर पहुँचते हैं ।

- (1) निकुंज लीला अवतारी भगवान् की अपने विशिष्ट धाम में परिकर समेत प्रेमाभिषिक्त लीला है । सुरति केलि इसका प्रधान अंग है ।
- (2) लीला सम्पादन एकाकी संभव नहीं है अतः यह युगल दम्पति की क्रीड़ा है । युगल की संस्थापनार्थ उन सर्वशक्तिमान ने अपनी स्वस्व शक्ति की जोड़ीदार बनाया है । श्री सीताराम अथवा श्री राधा कृष्ण युगल लीला ही अब तक प्रचलन में है । इस प्रकार सर्वशक्तिमान पर ब्रह्म स्वस्व अवतारी श्री राम या श्री कृष्ण, श्री सीता अथवा श्री राधा, सकेत अथवा वृन्दावन धाम इसके विधायक तत्व हैं जो सभी नित्य हैं अप्राकृत हैं परन्तु नित्य नवीन हैं । धाम और परिकर (सहचरि) भी उनकी स्वस्व शक्ति के अंग हैं ।
- (3) ये लीलाएँ निम्न निकुंज में ही सम्पादित होती हैं । जहाँ का वातावरण नितान्त नीरव परन्तु अलौकिक सज्जन और शोभा साधना से परिपूर्ण, सुरम्य, आकर्षक है और उसे स्वयं दिव्य शक्तियों ने रचपच कर तैयार किया है ।

प्रकृति अपने उदत्त और उद्दाम परिवेश में यहाँ कंकनाकार सरयू अथवा  
 ६ हंस सुता की पुष्पमयी कलकल निनादिनी निर्मल धारा सुरम्य वन, उपवन,  
 पशुपक्षीगण और हरी मधुमल सी दृव से सम्पन्न क्रीड़ा स्थलों और कुंज निकुंजों  
 का अधिष्ठान करती है । जो लीला रस के उद्रेक और संचार में अनियंत्रित  
 भाव से सहायक हो सकें ।

(4) निकुंज लीला एक मयदित लीला है । यह श्री निकुंजेश्वर और निकुंजेश्वरी  
 के विधिवत् परिणयानंतर प्रथम समगम की रति क्रीड़ा है । यह नित्य है  
 परन्तु नित नवीन शृंगार शोभा, अलंकरण, उत्साह, विवाहोत्साह, समगम  
 की उत्सुकता, परिकर की सेवा और आशीर्वादात्मक मनोते सभी नये होते हैं  
 गीता में जिस शाश्वत धर्म और एकान्तिक सुख को ईश्वर रूप माना गया है  
 वह इस लीला में समाविष्ट है । इसमें प्रेमियों की प्रेम पिपासा कभी शांत  
 नहीं होती । उसकी तृप्ति का जैसे जैसे विधान किया जाता है वह वैसे ही  
 वैसे निरंतर बढ़ती जाती है । संयोग-वियोग सम्मिश्रण की एक विशेष स्थिति  
 में प्रियाप्रियतम चलते रहते हैं ।

(5) दार्शनिक दृष्टि से जीव सभी साधक सहचरी के आनंदस्वादन और कल्याण इस  
 लीला के मुख्य हेतु हैं। जैसे प्रियाप्रियतम और धाम सभी 'तत्सुखी भावना'  
 से लीला सहयोगी है ।

(6) निकुंज लीला गायन की परंपरा में निकुंजेश्वरी श्री राधा भोग्य है, अतः  
 उनका सबसे अधिक महत्व है श्री कृष्ण भोक्ता है, अतः परब्रह्म अवतारी  
 और सर्व शक्तिमान होते हुए भी प्रेम की इस दुनिया में उनकी दैन्यपूर्ण स्थिति  
 है परन्तु वे सौन्दर्य-माधुर्य की प्रतिमूर्ति हैं । कृदावन और सहचरी वर्ग  
 भोग्य और भोक्ता की रतिकेलि में सर्वथा दत्तचित्त होकर सहयोग प्रदान करते  
 हैं । लीला का प्रारम्भ श्री श्यामश्याम के भीर उत्थापन से ही हो जाता है  
 जहाँ शक्ति शरीरों से सखी - सहचरियाँ प्रिय-प्रियतम समगम के सूचक अंग

प्रत्यंगों क्त्राणुओं, मर्दित कुसम शैया, रति किहों आदि का दर्शन करके भूतिभाग होती है ।<sup>1</sup> तदनन्तर वे उनके क्त्र संभालती है, मुंह धुलाती है तदनन्तर धींग आरती, वन विहार, तदनन्तर विविध कुंजों में स्नान, शृंगार, रूप दर्शन, गीजन, विहार, चौपर क्रीड़ा, रास, विवाह आदि के दैनिक क्रम चलते हैं । निकुंज लीला उनका उपसंहार है । इस प्रकार अपने परम्परागत रूप में यह लीला अष्टयम क्रम और लोक मयदि के अन्तर्गत है । अपने राजसी रूप में यह अतिशय उदात्त प्रवृत्तियों की प्रेरक है ।

#### नित्य विहार :-

निकुंज लीला की व्यापक परिधि में नित्य विहार उसकी एक विशेष लीला है । डा० विजयेन्द्र सातक के अनुसार नित्य विहार "एक गूढ़ रसलीन व्यंजना का दृष्टोत्पन्न द्योतन कराने वाला है । उसे अनिर्वचनीय रसदशा कहा जाता है ।" नित्य विहार की गूढ़ व्यंजना को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है "एक शीतल, सधन, सुरम्य निमृत्त निकुंज में प्रिय-प्रियतम (राधा मधव) अविच्छिन्न भाव से — शाश्वत रतिक्रीड़ा में संलग्न रहते हैं । उनकी यह केलि-क्रीड़ा बिना किसी बाह्य या अन्तरिक अंतराम के अनवरत चलती रहती है । अपनी इस केलि-क्रीड़ा से वे दर्शक-सहचरी रूप जीवत्मा को - दर्शनमात्र से अमित आनन्द प्रदान करते हैं । सहचरी इसकेलि की

- 
- 1- आजु तो जुवति तेरो बदन आनन्द भग्यौ  
 प्रिय के संगम के सुचत सुख चैन ।  
 आलस वलित बोल, सुरंग रंग कपोल,  
 व्यक्तित अस्म उनीदे दोऊ नैन ॥  
 संचर तिलक लेश फिरत कुसम केश,  
 सिर सीमंत भूषित मानौ ते न ॥  
 कल्याण उदार राखत कळ न सार  
 दसन वसन लागत जव दैन ॥

—हित चौरासी — श्री हितहरिवंश पद सं० 4



निकुंज रन्ध्री से देखा कर ही अपनी कृतार्थता मानती है । इस निकुंजलीला में न तो निकुंजान्तरा गमन सम्भव है और न किसी तरह का स्थूल मान या स्थूल विरह ही ...<sup>1</sup> उपरोक्त कथन से नित्य विहार के संदर्भ में निम्न तथ्य सामने आते हैं :-

- 1- नित्य विहार श्री राधा माधव की विशिष्ट निकुंज लीला है ।
- 2- यह अनादिकाल से बिना किसी वाह्य अथवा आन्तरिक विक्षेप के चल रही है ।
- 3- इस लीला का मुख्य प्रयोजन जीव स्म्य सहचरी का आनन्दानुराजन है ।
- 4- इस लीला में उनका सेवा सानिध्य नहीं है केवल निकुंज रन्ध्री से दर्शन का अधिकार है ।
- 5- नित्य विहार का एक ही निकुंज है, एक ही भाव है, मान और विरह के द्वारा प्रीति विक्षेप और तदनन्तर गाढ़ स्नेह इसमें न तो आवश्यक है और न उसके लिए अवकाश ही है । यहाँ तो परस्पर बोलने की भी गुंजायश नहीं है ।<sup>2</sup>

- 
- 1- विच्छेदाम्भस माना दहह निमिषतो गात्रं किञ्च सनादौ,  
चंचत्कल्याग्नि कोटि ज्वलितमितं भवेद्वाह्यमभ्यन्तरं च ।  
गाढ़ स्नेहाबन्धप्रथितं मिव तयोरदभुतं प्रेममूर्त्योः ।  
श्री राधा माधवस्य परमिह मधुरं तदद्वयं धाम जाने ।

—राधा सुधानिधि श्लोक 173 राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य  
पृष्ठ 240 पर उद्धृत ।

- 2- मेह नीर नैननि की सैननि में रहे भीजि,  
कौन रंग वाढ्यो जहाँ बोलिबोऊ भारी ।  
अति ही आसक्त सखी रही मोहि जोहि तहि,  
'हित ध्रुव' भ्रानन को यही है अहारि ॥

—आनन्द दसा विनोद लीला पृ० 229, ध्रुवदास की वयालीस लीला ।

पाद टिप्पणी में उद्धृत राधा सुधानिधि के श्लोक सं० 173 के आधार पर डा० स्नातक राधा क्लृप्त सम्प्रदाय के प्रवर्तक गो० हितहरिवंश जी की नित्य विहार का आद्यचर्च मानते हैं ।<sup>1</sup> उधर "कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव" शीर्षक शोध प्रबंध में डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने स्वा० हरिदास जी द्वारा प्रवर्तित नित्य विहार विशुद्ध माना है और स्वामी जी की निकुंज रस पद्धति की सखी भाव के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा संगत कहा है । उनका कथन है कि निम्बार्क, मध्व, क्लृप्त, राधाक्लृप्त सभी सम्प्रदायों से पूर्व विशुद्ध नित्य विहार प्रणाली का प्रवर्तन स्वा० हरिदास जी के द्वारा हुआ ।<sup>2</sup>

डा० राजेन्द्र प्रसाद गौतम ने अपने श्री हरिव्यास देवाचार्य और श्री महावाणी शोध प्रबंध में महावाणी में प्रतिपादित नित्य विहार तत्व के विश्लेषण में उपर्युक्त दोनों विद्वानों की नित्य विहार भावना को स्पष्ट करने का प्रयास किया है<sup>3</sup> :-

#### (1) डा० शरण बिहारी के नित्य विहार का स्वल्प -

"सखी भाव की भूमिका एक है, वह है संयोग, नित्य संयोग । पल भर का वियोग भी यहाँ असम्भव है । यहाँ श्री नित्य विहारी को न तो असुरों का वध करने जाना है, न उनके कुछ कर्तव्य कर्म हैं । यहाँ वै क्षण भर के लिये भी श्री राधा अथवा सखियों से दूर नहीं हो सकते । स्थूल विरह तो यहाँ होता ही नहीं। मान भी नैन की कोर दूर टूट जाता है । यहाँ प्रेम के प्रगाढ़ आलिंगित - स्वल्प की लीला ही चारों ओर विस्तारित है । यहाँ स्थूल लीलाओं के लिए किंचित्मात्र भी अवकाश नहीं उसी सीमा के अन्दर प्रेमवैचित्र्य का परिपाक सखी भाव की उपसना तथा साहित्य की विशिष्टता है ।"<sup>4</sup>

1- राधाक्लृप्त सम्प्रदाय गैर साहित्य पृष्ठ 240 डा० विजयेन्द्र स्नातक ।

2- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव डा० शरण बिहारी गोस्वामी पृ० 205

3- हरिव्यास देवाचार्य और महावाणी - डा० राजेन्द्र प्रसाद गौतम पृ० 177 - 179

4- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव - डा० शरण बिहारी गोस्वामी पृ० 194

डा० गौतम ने नित्य विहार के उक्त स्पष्टीकरण पर तर्क करते हुए लिखा है :-

“क्या नित्य संयोग, अछण्ड-रति ही नित्य विहार है ? क्या श्री राधाकृष्ण के इसके अतिरिक्त और कोई कर्तव्य है ही नहीं ? क्या असुरों का वध करने उन्हें सचमुच नहीं जाना है ? क्या 'यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' — के समय 'परित्राणाय साधूनाम विनशाय च दुष्कृताय' वाले घोषणायें किसी दूसरे कृष्ण की थीं । फिर नित्य विहारी का भगवत् तत्त्व क्या रहेगा ? इन प्रश्नों के उत्तर के अभाव में डा० गौतमी के स्वल्प वर्णन को हम अपूर्ण मानते हैं ।”

हमारा अभिमत है कि नित्य विहार श्री श्यामश्याम की निमृत्त निकुंज में अनवरत शश्वत सुरति क्रीड़ा भर नहीं है । उसका एक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक पक्ष भी है । अपने मनोवैज्ञानिक रूप में यह राग से राग की ओर से वितृष्णा उत्पन्न करने का साधन है और दार्शनिकता की दृष्टि से सृष्टि के आदि से प्रवर्तित उसके सृजन की प्रेरणा और मनोरमता का आधार 'काम' है जिसे भगवत्-चर्या के विशुद्ध प्रेमावरण के ताने बाने में सर्वथा हृदय संपर्शी और सवैद्य बनाने का प्रयास नित्य विहार की उपासना के माध्यम से हुआ है । इस तथ्य को अपने नित्यविहार के स्वल्प की प्रतिष्ठा के पक्ष में डा० विजयेन्द्र स्नातक ने प्रस्तुत किया है :-

“नित्य विहार दशा के वर्णन में यही सर्वश्रेष्ठ स्थिति है कि नित्य किशोर राधाभाव सब कुछ भूलकर तल्लीनता की चरम सीमा पर प्रेम नियोजित बने रहें”  
x x x नित्य विहार के उपर्युक्त वर्णन के आधार पर दो प्रकार के विचार मन में उठना स्वाभाविक है । पहला विचार तो यह है कि यह नित्य विहार शृंगार पारक कामकेलि का वर्णन होने पर भी अवश्य किसी गूढ़ अर्थ के आधार पर सम्प्रदाय में गृहीत हुआ है । यह केवल काम केलि का वर्णन न होकर उस दिव्य उपासना तत्त्व का ही रूप है जो भक्ति सम्प्रदाय में अपनी अपनी मान्यता के आधार पर सृष्टि का आदि तत्त्व कहा गया है । दूसरा विचार यह भी मन में आता है कि लौकिक शृंगार भावनाओं को सब कुछ भूल कर उन्हें ही जीवन का आराध्य भाव मान लिया गया है । निश्चय ही कोई विचारक दूसरे मत के साथ नहीं होगा ।”

“परम तत्त्व ब्रह्म, जीव और जड़ प्रकृति का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करने के लिए, इस नित्य विहार वर्णन की सम्प्रदाय में कोई स्थान प्राप्त नहीं। कहीं इसके आध्यात्मिक आरोप या स्मक का सकेत भी देखनेमें नहीं आया। किन्तु इस क्रीड़ा का रहस्य अवश्य प्रतीक शैली से आध्यात्मिक होना चाहिये अन्यथा इसकी व्यापकता सिद्ध नहीं होगी। हमारी दृष्टि में राधा और माधव की नित्य क्रीड़ा का विहार उनके परस्पर क्तु के आनन्द स्वरूप के उद्घाटन की क्रिया है। नित्य विहार को साधक के लिए जिस उच्च मनोभूमि पर अवस्थित करके उपास्य कहा गया है, वह निश्चय ही रति-क्रीड़ा भाव न होकर किसी दिव्य आनन्द के उद्घाटन का स्मक है। उसे हृदयगम करके उदात्त भावना का विषय बनाया जा सकता है।”

हा10 स्नातक के इस स्पष्टीकरण में दो तथ्य सामने आते हैं। -

- 1- उसमें उस भगवत् तत्त्व की सकेत है जिसके कारण भक्त भगवान की उपासना करता है। वह रति क्रीड़ा मात्र न होकर दिव्य आनन्द का स्मक है।
- 2- (लौकिक) श्रृंगार भावना सृष्टि का आदि तत्त्व है नित्य विहार उसकी दिव्य अभिव्यक्ति है।

इनमें से दूसरा आधार हा10 स्नातक ने स्वयं निरास्त कर दिया है।

हमारी समिति में नित्य विहार की परिकल्पना जीवन की एक सूक्ष्म-संकुचित भावना पर आधारित होने के कारण लोक मंगल और समाज शोधन की उदात्त सर्व जनमानस पर प्रभावी वृत्तियों के नियंत्रण की दिशा में विशेष महत्व पूर्ण भूमिका नहीं है। नित्य विहार एक विशेष मनोदशा है जिसका केवल उच्च स्तरीय चिन्तन ही संभव है। वर्तमान में नित्य विहार उपासना की भावुकता के क्रम में ब्रह्म, माया आदि तत्त्व जैसी दार्शनिक मान्यताओं का कोई महत्व नहीं रह गया है इस कारण स्नातक जी का तर्क भी तर्कमात्र के लिए प्रस्तुत किया गया सा प्रतीत होता है। इन सब दृष्टियों से तो निकुंज लीला की भावना, समाज, संस्कार, भावुकता, और उपासना सभी दृष्टियों से नित्य विहार की शाश्वत अनवरतता के सहृदय भक्तों के अधिक निकट है।

जहाँ तक नित्यविहार के प्रवर्तक आचार्य की स्थिति का प्रश्न है श्री हरिव्यास देवाचार्य का समय गो० हितहरिवंश और स्वा० हरिदास जी से पूर्व डा० गौतम ने युक्ति युक्त तर्कों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया है। यह भी प्रतिपादित किया है कि राधावल्लभ सर्व हरिदासी सम्प्रदाय के वे ग्रंथ जो नित्य विहार भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं उसके विशुद्ध स्वाम्य का प्रतिपादन नहीं करते सभी में ब्रज भाव का सम्मिश्रण है। ऐसी दशा में यह श्रेय श्री हरिव्यास देव जी को देना समीचीन होगा। वैसे किसी रसिक को छोटा बड़ा सिद्ध करने का प्रयास अथवा किसी रस-वस्तु को जो उनके स्वतंत्र चिन्तन का प्रतिफल है उपेक्षा वृत्ति से देखना स्तापनीय नहीं है। साहित्य में इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना एक अनिवार्य कर्तव्य है।

/x/x/x/x/

-----

1- श्री हरिव्यास देवाचार्य और फावाणी पृष्ठ 4।

-ले० राजेन्द्र प्रसाद गौतम ।

सप्तम अध्याय

=====

निर्गुण लीला साहित्य

(धार्मिक, राजनैतिक सामाजिक पृष्ठ भूमि)

भारतीय साहित्य में मध्ययुगीन प्रेम-साधना की अवतारणा एक विलक्षण और महत्वपूर्ण घटना है। उसे निर्गुण और सगुण दो रूप हैं। सगुण में राग की विशेषता रहती है अतः जिस दिन निर्गुण निराकार को सगुण साकार रूप मिला मध्यकालीन हिन्दी साहित्य सर्वांग सन्त हो गया। सन्त कवियों ने योग परक साधना को सहज बनाया था, भक्त कवि ने उसे रागात्मक रूप दिया। फलतः साधना और काव्य में अभेदत्व की स्थापना हो गई। काव्य की अनुभूतियों में रागात्मक गहराइयों और आध्यात्मिक उंचाइयों ने एक पूर्ण अभिव्यक्ति को जन्म दिया।<sup>1</sup>

सगुण भक्ति का मूल ग्रीत अथ वैष्णव धर्म है। इसे पाँच रात्र, नारायण वासुदेव, भागवत, सात्वत आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। इस धर्म के इष्टदेव विष्णु हैं। वैदिक साहित्य में अवतारों के मूल स्रोत विष्णु हैं परन्तु उनका स्थान महत्वपूर्ण नहीं है।<sup>2</sup> परन्तु उनकी श्रेष्ठता की स्थापना करने वाली अनेक ऋचाएँ वेदों में हैं।<sup>3</sup> विष्णु के प्रति सानिध्य भावना और मानवीय गुणों की अधिकता वैदिक साहित्य में मिलती है परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में उनकी श्रेष्ठता का भरपूर प्रतिपादन हुआ है।<sup>4</sup> अधिकंश पुराणों में विष्णु की प्रशस्ति वर्णित है और उनके अवतारों की कथाएँ दी गई हैं।

अवतारवाद का मूल वैदिक रूपकों की विष्णुपरक नराकार या जीवाकार व्याख्या में है। इन कथाओं के अभिप्राय मानव-सद्भुति से घटित किये गए हैं। वेद के 'इदं विष्णुर्विचक्रये त्रैधानिदधे पदे' के आधार पर वामनावतार की प्रसिद्धि है।

1- हिन्दी सगुण भक्ति काव्य की भूमिका पृष्ठ 218 डा० चन्द्रमान रावत

2- मैकानिल - वैदिक रीढ़, विष्णु का दर्शन

3- ऋग्वेद 1 - 154-1-6

4- हिन्दुत्व - रामदास गौड़ पृष्ठ 195

विष्णु और यज्ञ का तादात्म्य यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में हुआ तथा विष्णु की कल्पना यज्ञ पुरुष के रूप में चल पड़ी ।<sup>1</sup> वैखानस आगम के ग्रंथों में यज्ञ-वाराह का उल्लेख और विष्णु परक त्रिविक्रम की 'त्रैधानिदधे पदम्' व्याख्या में उन्हें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पाताल की नापने वाला कह कर उनकी 'वामन' संज्ञा घोषित कर दी गई है । इसी प्रकार 'गोपा' (=रक्षक) 'यत्र भावी भूरि शृंगा अयासः' तथा 'अत्राह तदुन्मायस्यकृष्णः' में कृष्णावतार का प्रतिपादन हो सकता है । विष्णु यत्रमान तथा देवगणों के लिए ब्रज प्राप्त कराने वाला भी है ।<sup>2</sup> ब्रजनन्दन समावतया इससे सम्बद्ध है । गीता में अवतार का मूल कारण धर्म संस्थापना और दुष्टों का विनाश - लोक रक्षण - बताया है । महाभारत के 'नारायणीयोपनिषद्' में वाराह, नृसिंह, वामन, पारशुराम, दशरथ राम और वासुदेव कृष्ण केवल 6 अवतारों का वर्णन है । अगे चल कर चार अवतार हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि इनमें और सम्मिलित हो गए । भागवतकार ने उन्हें 24 कर दिया । इसमें विभिन्न मूर्तियों के प्रवर्तक भी आगए । महाभारत के नारायणीय प्रकरण में स्कान्तिकों का जो मत है उसका परिष्कृत रूप भागवत में मिलता है । पांचरात्र मत में भी स्कान्तिक भक्ति की ही प्रधानता है । इससे नवधाभक्ति का संयोग और कर दिया गया । अवतारों में राम और कृष्ण ही प्रमुख माने गए । उनके मत सम्प्रदायों का अगे विकास हुआ ।

इस प्रकार वैष्णव धर्म की सतत धारा वैदिक काल, ब्राह्मण काल, बुद्ध काल, मौर्य काल और गुप्त कालों में मंथरगति से बढ़ती रही । धर्म ग्रंथों का प्रणयन, मठ मन्दिरों का निर्माण और कला संस्कृति का विकास निरंतर होता रहा । समय समय पर किरात, पुलिन्द, आभीर, शक, हूण, यवन, खस आदि जातियाँ बाहर से आती रही और यहाँ के मूल निवासियों के आचार विचार और कला

1- विष्णु पुराण 17/5/15 महाभारत शान्तिपर्व 339/9-10

2- ब्रजं च विष्णुः सखिनां अपोणुति ऋक् 1/156/4

संस्कृति को ग्रहण करती रही। उन सभी विदेशी जातियों का यहाँ आत्मसात होता रहा। वैदिक युग की ज्ञान, कर्म और उपासना मिश्रित धारा में ब्राह्मण वर्ग की निरंकुशता से जब कर्मकाण्ड का प्राधान्य हुआ और दिसक प्रवृत्तियाँ बढ़ी तो उनके प्रतिकार स्वरूप बौद्ध धर्म और जैन का आविर्भाव हुआ किन्तु वे दोष कालान्तर में जब इन धर्मों में भी आ गए तो आचार्य शंकर ने पुनः भद्वैत वेदन्ति और ब्रह्मवाद के सिद्धान्त की लेकर धर्माचार्य के रूप में प्रस्तुत हुए। कुमारित भट्ट ने भी इसमें सहयोग दिया। उत्तर से दक्षिण पूर्व से पश्चिम तक आचार्य मठ और गद्दिदियों की स्थापना हुई। उधर अवतारवाद के आधार पर भागवत धर्म की शाखा प्रशाखाओं के रूप में शैव, शाक्त, कापालिक आदि मतों का प्रसार हुआ इसी समय दक्षिण में आलवार भक्तों के द्वारा वैष्णव भक्ति के विकास और उत्थान का प्रयास चल रहा था।<sup>1</sup>

उत्तर भारत में इस समय धार्मिक अनिश्चितता और अशान्ति थी। शैव, शाक्त, नाथपंथी, योगी, तान्त्रिक आदि का बाहुल्य था। बौद्ध धर्म अपने अवसान के क्षण <sup>गिर</sup> ~~मिन~~ रहा था। भिक्षु भिक्षुणियों के द्वारा उसमें अनाचार प्रवेश कर गया था। इतर मत मतान्तरों में भी मांस, मदिरा और स्त्री संयोग की कूट से उनका विशेष विकास हुआ। मकार की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। ऐसी दशा में धर्माचार्यों का उत्तरदायित्व बढ़ गया था।<sup>2</sup> उन्हें एक ओर शंकर के मायावाद से बूझना, मतमतान्तरों के द्वारा प्रवर्तित कुत्सित मनोवृत्ति से जनसाधारण के मन को हटाना और तीसरी ओर मुसलमानी आक्रमणों की ~~अ~~ व्यावह स्थिति का सामना करने के लिए जन जन का मनोवत्त ऊँचा करने के लिए विशेष प्रयास करना पड़ता था। इन आक्रमणों से समाज सड़खड़ा रहा था।

विभिन्न मत और सम्प्रदायों में नारी के प्रवेश से समाज का नैतिक स्तर बहुत गिर गया था। डा० सातक ने सहजिया सम्प्रदाय की कामुक वृत्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है 'सहजिया सम्प्रदाय लौकिक काम की भूमि पर अलौकिक काम

1- हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 89

2- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय - पृष्ठ 136



की कल्पना करके आगे बढ़ता है अतः उसकी आरम्भिक सभी साधन क्रियाएँ बाह्य श्रृंगार या काम शीला पर स्थिर है । उनमें अश्लील श्रृंगार की प्रधानता देख कर विकृत भावना उत्पन्न होना सहज ही है । वैष्णव सहजदान से यौगिक क्रियाएँ ग्रहण करने के कारण इनमें भोग काम की प्रधानता हुई ।" <sup>1</sup> शक्त मत के सम्बन्ध में भी उनकी यही धारणा है, 'शक्त-मत में वामा पूजा का प्राधान्य है । नरतत्व (शिव) का ग्रहण साधन रूपमें किया जाता है त्रिपुर सुन्दरी की कल्पना में स्त्रीतत्व की मुख्य स्थान देने का भी यही अभिप्राय है' <sup>2</sup>

आचार्य पराशुराम चतुर्वेदी ने उत्तर भारत की संत परंपरा में वज्रयानियों की महामुद्रा साधना के द्वारा मध्ययुग में कामुकता के प्रसार का उल्लेख करते हुए लिखा है 'इसके अनुसार एक महामुद्रा के संपर्क में रहना परमावश्यक समझा जाने लगा था । वज्रयान का अनुयायी साधक सर्वप्रथम किसी छोटी जाति की स्त्री को अपने लिए चुन लिया करता था और अपने गुरु के निकट जाकर उसके आदेशानुसार उसे अपनी महामुद्रा बना लेता था । अनेक तीव्र एवं कठिन नियमों के पालन से जितनी शीघ्रता से सिद्धि नहीं होती उससे कहीं शीघ्र वह सभी प्रकार के कामोप-योगों से ही जाया करती थी ।' <sup>3</sup>

श्री राम और श्री कृष्ण के भक्ति सम्प्रदायों के उपास्य रूप में प्रतिष्ठित हो जाने पर इस कामुक वृत्ति का प्रभाव उन सम्प्रदायों पर भी पड़ा । 'सुर और उनका साहित्य' अपने शोध प्रबंध में इस कसुक्षित वासना को इंगित करते हुए डा० हार्वंश लाल शर्मा ने लिखा है, 'युगल उपासना पर सहज मत का पूरा पूरा प्रभाव पड़ा है । इसका ज्ञान हमें जंगल के सहजिया सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से हो सकता है जिसके अनुसार चौरासी कोस का ब्रजमण्डल स्त्री के चौरासी अंगुल

1- राधावल्लभ सम्प्रदाय और साहित्य - डा० विजयेन्द्र सातक पृष्ठ 176

2- वही वही पृष्ठ 177

3- उत्तरी भारत की संत परंपरा पृष्ठ 33

के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और ब्रज की पंच कोशी नारी के पंचांगुल परिमिति-अंग विशेष है"। डा० विजयेन्द्र सातक ने सहजिया साधकों की इस परकीया साधना के दुष्प्रभावों के साधना और साहित्य क्षेत्रों में प्रवेश की कुसंस्कार माना है। उन्होंने कहा है कि "प्रत्येक गोस्वामी के पास एक एक मंजरी थी जिससे वे प्रेम के संस्कार प्राप्त करते थे। रूप गोस्वामी मीरा से, रघुनाथ भट्ट करन बई से, सनातन लाल हीरा से, लोकनाथ चाण्डाल की एक लड़की से, कृष्णदास कविराज एक ग्वालिन से और जीव गोस्वामी एक नई की स्त्री से प्रेम करते थे।" 2 यह श्रृंखला यहीं समाप्त नहीं होती। गोपाल भट्ट, राम रामनंद, चंडीदास, विद्यापति और जयदेव का भी क्रमशः गौरी प्रिया, देवदासी, लखिमा देवी\* और पद्मावती से परकीया संबंध था।

#### धार्मिक परिस्थितियाँ :-

बल्लभ सम्प्रदाय भी इस प्रवृत्ति से अछूता न था। सं० 1587 में श्री बल्लभाचार्य जी के तिरोधान के अनंतर कृष्णदास अधिकारी ने श्रीनाथ जी के मंदिर (जतीपुरा, गोवर्द्धन) की वैभव समृद्धि में चारचांद लगा दिये। इसका समस्त वातावरण, श्रेष्ठ रंगीनी और साज सज्जा से इस प्रकार अनुरंजित हो गया कि बड़े बड़े धनपतियों की कोठियों का रागरंग भी फीका प्रतीत होने लगा। एक ओर ठाकुर जी के निमित्त आगरे की रूपवती वैश्या को आमंत्रित किया गया दूसरी ओर रासबिहारी जी को काम कला और कोक कला का सम्यक ज्ञान कराने के लिए नायिका भेद व शृंगार रस सम्बन्धी 'साहित्य लहरी', 'रस मंजरी' और 'शृंगार रस मण्डल' जैसे ग्रंथों की रचना के लिए प्रेरणा दी गई। एक ओर तो कृष्ण दास जी जैसी ने अपने आपको श्री कृष्ण का प्रतिनिधि घोषित किया तो दूसरी ओर शक्त पुरुष और महिलाओं को गोप गोपेयों का अभिनय करने की शिक्षा दी गई। फलतः दिन में गोचारण और रात्रि में रास लीलाओं का कार्यक्रम प्रतिदिन होने लगा। जब बल्लभाचार्य जी के उत्तराधिकारी गो० विदुल्लनाथ जी ने रास-विहार के कुछ पात्र-पात्रों के गुप्त संबंध की शंका की दृष्टि से देखा तो उन्हें भी

1- डा० हरवंशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य पृष्ठ 269

2- राधाबल्लभ सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ 18

\*विद्यापति के आश्रयदाता राजा शिवसिंह की रानी।

निष्कासित कर दिया गया'' इस प्रकार भक्ति का पुनीत दीपक उस समय चारों ओर विशासिता का कज्जल उगल रहा था । उससे भक्ति तत्व विकृत हो गया था ।

इस बीच राधा कृष्ण के माधुर्य भाव परक तीन चित्र उड़ीसा के महा कवि जयदेव के गीत गोविंद में, वंगला के चंडीदास भजनोंमें और मैथिल के विद्यापति की पदावली में चित्रित हुए जिनमें भक्ति भावना के उद्देक के स्थान पर काम कौतुक, कैलि ब्रीड़ा, दूती अभिसार एवं प्रकृत नायक नायिकाओं की वैकली और तड़पन का ही प्राधान्य देखने में आया । पुर की राधा की स्त्री शास्त्रीनता<sup>1</sup> की उनमें कही जाया भी न थी । उक्त तीनों कवियों की राधाओं की तुलना करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं 'चण्डीदास की राधा का प्रेम अनुपम है, स्वर्गीय है, इस राधा में जयदेव की प्रगल्भा विशासवती राधा की जाया भी नहीं है, विद्यापति की रूप मधुरा किशोरी का निशान भी नहीं है, यह विशुद्ध प्रेम की मूर्ति है । चण्डीदास कहते हैं हमने ऐसी प्रीति न कहीं देखी न सुनी है। दोनों के प्राण प्राणों से बंधे हैं, विच्छेद की भावना से दोनों ही रो रहे हैं, क्षण भर न देखने से मरण हो जाता है ।'' इस प्रकार भक्ति घोर श्रृंगार में लिप्त होकर वासना के पंक्तिष पूर्ण गर्त में गिरती पड़ती रही ।

राजनैतिक परिस्थितियाँ :- आलोच्यकाल के (सन 1100 ई० से 1500 ई० तक) लगभग चार सौ वर्षों में उत्तर भारत पर प्रायः क्रूर और नृशंस सुसत्तान राज्य करते रहे । जिनके शासन काल में घोर रक्त पात, हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार, राजनैतिक, अस्थिरता, जज़िया, दमन और अथि दिन क्रूरता पूर्ण घटनाएँ होती रहीं । बलवन, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक योग्य शासक थे परन्तु धार्मिक नृशंसता, राजनैतिक

1- वलि जऊँ मैया दुहि दीजे ।

बूंद परत रंग बक बहे फोकौ, पुरंग बूनरी भीजे ।

मीठा दूध गाइ धूमरि कौ कहु दीजे कहु पीजे ।

पुर स्याम दरसन के कारन अधिक निहोरो कीजे -पुर सगर पद 1349

-ना०प्र०सभा कशी ।

अस्थिरता और विकृत शासकीय ढाँचे की ऋणग्रस्तकारी प्रवृत्ति और उत्प्रेरक के फेरफार में वे प्रायः हतप्रभ से ही रहे। इस्लामी जोश में मंदिरों को तोड़ना, झूटपाट, जजिया सामूहिक धर्मपरिवर्तन आये दिन की घटनाएँ थीं जिससे शासकों को जनता का विश्वास प्राप्त न हो सका। उनमें से अधिकांश विज्ञान प्रिय अयोग्य और निकम्मे थे। महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी के नृशंस, आक्रमण झूटपाट और अलाउद्दीन तथा सिकंदर लोदी के धार्मिक अत्याचार उस अंधकार पूर्ण युग के काले इतिहास की मर्मन्तिक अनुभूति कराते रहेंगे।<sup>1</sup> इसी की शोधन प्रतिक्रिया में सुदूर दक्षिण से भक्त आचार्यों का आगमन और भक्ति के विशुद्ध, संपत और कोमल संवेदनशील रूप की शीघ्र प्रतिष्ठा परमावश्यक थी।

सामाजिक दशा :- हिन्दुओं के राजनैतिक पराभव के परिणाम स्वरूप आलोच्ययुग में सामाजिक परिस्थितियाँ पतनोन्मुख थीं। उन्हें राजकाज, संधिविग्रह, वाणिज्य व्यवसाय में किसी प्रकार की मान्यता न थी। सर्वत्र विदेशी मुसलमानों को उच्चपद दिये जाते थे। उत्पादन का 50 प्रतिशत जीवित रहने का कर (जजिया) देना पड़ता था। शासकों का व्यवहार कठोरतापूर्ण था इस कारण पाँच शताब्दियों तक हिन्दुओं ने अपने को मुसलमानों से पृथक् रखा और धर्म और संस्कृति विषयक समस्याओं के निपटारे में आत्म वसिदान किया। उनका पुंसत्व, गौरव और सम्मान पूर्ववत् था।<sup>2</sup> आचार और जातिपांति संस्कृति के प्रतीक हैं। मुसलमानी संस्कृति हिन्दुओं से भिन्न और विरोधात्मक थी इस कारण आचार और जाति प्रथा के बंधन कठोर होते गए। सामाजिक संगठन में नारी की स्थिति और उसके कार्य पराधीनता के द्योतक थे। पुरूष स्त्रियों के पातिवृत्य के प्रशंसक थे परन्तु स्वयं उसका पालन नहीं करते थे। वैश्या प्रथा का प्रचार था। सुलतानों के जशनों में उनका नाच गान होता था और कादम्ब और कामिनी के दौर रात्रि के तीसरे पहर तक चलते थे जिसमें हिन्दू सरदार, जागीदार भी सम्मिलित होते थे। परदा प्रथा थी और सती और जौहर का भी प्रचलन था। दासियाँ रखी जाती थीं

1- हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन - डा० हिरण्यम् पृ० 226

2- ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति डा० रूपनारायण पृ० 76

और उनके क्रय विक्रय का भी अधिकार होता था । विज्ञान समाज का सर्वोपनिर्माण था । मुसलमान और हिन्दू राज अपना अधिकांश समय भोग विज्ञान में वितति थे ।<sup>1</sup> विभिन्न प्रान्तों से सुंदरियां चुन कर लाने के लिए अलग विभाग था । संगीत और वैश्या वृत्ति का संयोग था और पुरापात एवं द्यूत ब्रीड़ा उच्च समाज के शास्त्राचार का अंग माने जाते थे । कला केवल विज्ञान का साधन थी जिसका प्रभाव कविता पर भी पड़ा ।<sup>2</sup>

जर्मन विचारक गिडिंग के अनुसार प्रत्येक धर्म और समाज परिवर्तनशील है वह कभी आचार और नियंत्रण की एक स्थिति में नहीं रह सकता । परिस्थितियाँ प्राकृत रूप से उत्कर्ष या अपकर्ष के एक कोर से दूसरे की ओर स्वयं प्रत्यावर्तित होती हैं । अतः मध्यकालीन भक्ति और आचार की भी अपने पापपूर्ण पराभव से लौटकर अशा और संयम के स्फूर्तिमान युग में पदार्पण करना था । पूर्व प्रतिष्ठित श्री श्री कृष्ण और श्री राम दोनों उपास्य - क्षेत्रों में इस प्रकार का प्रत्यावर्तन हुआ । महाप्रभु श्री चैतन्य आचार्य कल्लभ श्री भट्ट, हरिव्यास देव, स्वामी हरिदास गो० हितहरिकंश और स्वामी अग्रदास ने इस दिशा में भारी प्रयास किया । युगल काल के स्वर्णिम दिन सामने थे । समाज का स्वरु फिरा । परिस्थितियाँ ने भी साथ दिया ।

#### निकुंज-भक्ति (रस) की प्रतिष्ठा और उसका स्वरु :-

हमने देखा है कि अबसे पूर्व की धर्मावना और समाज में अश्लीलता की पहुँची हुई कोटि की शृंगारिकता व्याप्त थी । कुछ धर्म मतों में शृंगारिक ग्रहण साधनाओं का भी विधान था । इसका सम्बन्ध तंत्रों से था । वैदिक कर्मकाण्ड में भी अश्लीलता की झलक मिल जाती है पर सिद्ध या वज्राचार्यों के 'गुह्य समाज तंत्र' में साधनात्मक अश्लीलता का विकसित रूप मिलता है । भक्ति भावना में शिव-शक्ति सीताराम और राधा कृष्ण तीन युगल प्रतिष्ठापित थे । सौंदर्य, विज्ञान और विषय भोग के अनेक आकर्षण समाज में रुढ़ ग्रस्त हो चुके थे कला और संगीत इनके पृष्ठाधार थे । इन समस्ततत्त्वों से निकुंज भक्ति का तानाबाना तैयार किया गया ।

1- History of Muslim Rule - Dr. Ishwari Pd. Page 227

2- भारत का वृहद इतिहास भाग 6 पृष्ठ 13

आलम्बन रूपना :— भक्ति साहित्य में आलम्बन ही उपास्य है । शृंगारिक भक्ति में उपास्य का माधुर्य रूप ही ग्राह्य है अतः उक्त तीन युगल को उपास्य रूप में ग्रहण करना संभव था । 'शिव' रौद्ररस के आलम्बन हो सकते थे, शृंगार के नहीं । अनुश्रुति के अनुसार कालिदास शिव पार्वती का रतिवर्णन करने के कारण अभिशप्त हो चुके थे ।<sup>1</sup> अतः माधुर्य भक्ति के मुख्य आलम्बन श्री सीताराम और राधाकृष्ण स्वीकार किये गए ।

इनके चरित्रों के भी लोक रक्षक और लोक रंजक दो दो रूप थे । श्री राम का मर्यादा पुस्तोत्तम रूप लोक की अशा और उन्मेष का प्रेरक था । श्री कृष्ण का भी यह स्वस्य धर्म ग्रंथों में पूर्व प्रतिष्ठापित था परन्तु उनकी सौंदर्य-माधुर्य सविशेषता ने उनके पिछले रूप को अधिक आकर्षण प्रदान किया । उनकी दास्य सख्य और वात्सल्य की लीलाओं से माधुर्य लीलाओं में हृदय की कोमल वृत्तियों के अधिष्ठान की उर्वर भूमि थी । शृंगार का रास राजत्व प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने एक विशेषता पर सबसे अधिक बल दिया है, वह यह कि शृंगार में समर्पण का भाव सबसे अधिक है । कान्ता भाव की उपासना इसी कारण विशेष मनोरम है । उसमें भी स्वकीया भाव सर्वोपरि है क्योंकि लोक मर्यादा के दृष्टिकोण और प्रेम की एकप्रता इसमें सविशेष रूप से रहती है । भगवान् श्री कृष्ण के अभ्युदय के अंतिम क्षणों में निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्क का आविर्भाव हुआ था ।<sup>2</sup> उन्होंने कान्ताभाव की उपासना के अंतर्गत सखी-सहचरी भाव से भगवान् की उपासना का प्रतिष्ठान किया । उनकी 'दशश्लोकी' में भगवान् सहस्रों सखी-सहचरियों से सेवित कहे गये हैं ।<sup>3</sup> ~~और इन्हें श्री सुमनसंसे संभूत कहा है~~ श्री कृष्ण प्रेम की अनन्यता पर भी उन्होंने जोर दिया है ।<sup>4</sup> ~~और इन्हें श्री युगल से संभूत कहा है~~ ।<sup>5</sup> इसी

1- दृष्टि और दिशा - डा० चन्द्रभान रावत पृष्ठ 229

2- भक्त मालांक श्री सर्वेश्वर ब्रजबल्लभ शरण वेदान्तआचार्य पृष्ठ 236

3- 'सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा,' वेदान्त दशश्लोकी 5/

4- 'नान्या गति, कृष्ण पदारविन्दातं, संदृश्यते ब्रह्म शिवादि वन्दितम्

—निम्बार्क वेदान्त-दश श्लोकी 8

5- आत्मा रामस्य कृष्णस्य ध्रुवात्मास्तिराधिका ।

तस्या स्वर्श विस्ताराः सर्वा श्री कृष्ण नायिका ।

स्कंदपुराण, भागवत महात्म्य ।

भावना की इन आचार्यों ने पूर्ण प्रश्रय दिया और सभी सम्प्रदायों में सखी भावना से गुह्य-साधना, भक्ति का आदर्श माना गया और उसके तत्सुख सुखी भाव से सगुणभक्ति इस रूप में अपने पूर्णतय विकास को पहुँच गई ।

आलम्बन में ऐश्वर्य सौंदर्य और माधुर्य का समिश्रण—

भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण की बाललीलाओं में जैसे विराट रूप अहिल्या उद्धार, उल्लसबंधन आदि में उनके ऐश्वर्यमय रूप की प्रतिष्ठा है उनके सकित, प्रमोद वन जनक भवन अथवा वृन्दावन विहार में इनकी माधुर्य मूर्ति का दर्शन है । नित्य वृन्दावन नित्य सहचरी, नित्य किशोर किशोरी अनन्त सौंदर्य-माधुर्य से प्रेमोल्लास में भी, निरवधि निकुंज-मंदिर में विहार करते हैं इस अलौकिक आनन्द प्रदायिनी भावना को सभी सम्प्रदायों ने उपासना के रूप में ग्रहण किया और तदनुसार अपने अपने सम्प्रदायों की सेवा पूजा, उत्सव, लीला, ऋतु विहार रास केलिद्वीड़ाओं का क्रम निर्धारित किया । श्रीमद् भागवत ने इस समस्त क्रय आधार ग्रंथ का कार्य किया ।

केशोराद्रत माधुरी माधुरीणांगच्छति राधिकां

प्रेमोल्लास भराधिका निरवधिध्यायन्ति ते ताक्षेय ।

रासिक शिरोमणि जोरी बू, नव नित्य किशोर किशोरी बू ।

सदा सनातन एकरस सदा बसंत सब काल

श्री राधा रानी जहां, राजा मोहन लाल ।<sup>2</sup>

श्री प्रभुदास, प्रेम सखी आदि ने श्रीराम के रूप की प्रतिष्ठा भी लगभग इसी रूप में की है ।

उनकी इस रूप में स्थापना में एक विशेषता यह है कि परमात्मा और परब्रह्म को युगल रूप का अंश घोषित किया है । इस प्रकार निर्गुण सगुण के भेद के लिए भी पूर्ण अवकाश है । श्री सीताराम और राधाकृष्ण के युगल रूप

और उनके परिकर एवं धर्मों में अप्राकृत तत्त्व मान कर उनकी काम-कैलि भी अप्राकृत है इस भावना ने साधकों और उपासकों की मानसिक स्थिति को उच्च रखने में बड़ा बल प्रदान किया । उसे लौकिक काम से सर्वथा भिन्न माना ।

काव्यशास्त्रीय आधार — कबीर, दादू आदि की निर्गुण भक्ति में अप्रस्तुत रूप से शृंगार का समविश था परन्तु काव्यशास्त्रीय धरातल पर उज्ज्वल रस की प्रतिष्ठा उसमें संभव न थी । सगुण भक्ति में यह पुगम था । शांखिल्य भक्ति सूत्र, नारद-भक्ति सूत्र, गीता और श्रीमद् भागवत के आधार पर उपासक भक्ति का लक्ष्य माना गया और सामान्य उत्पन्न करने वाली मधुर भक्ति को पराभक्ति स्वरूप मानी गई । श्री मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी ने भक्ति में ब्रह्मानन्द स्वरूप कहा । मधुसूदन सरस्वती के अनुसार भक्ति ही पूर्ण रस है । अन्य रस शुद्ध हैं । भक्ति दसवाँ रस है । रूप गोस्वामी ने परा को श्रेष्ठ भक्ति माना और वह अपने आप में साध्य बन गई । अणि इस भक्ति रस की निष्पत्ति में विभावादि का स्वस्म भी निश्चित हो गया ।

इस प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म का 'स्पर्श गुण जति जुगति शून्य निरावलम्ब' स्वरूप जिसे सहजयान और ब्रजाचार्यों ने पाप-पंकज से वीभत्सता प्रदान कर दी थी वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों के हाथ में आकर अलौकिक प्रेमरस का आराध्य बना सभी सहेली भावना से उनके निकुंज क्रीड़ा कौतुक में सेवा समर्पण करता हुआ उनके नित्य विहार के प्रातः दर्शन कर कृतकृत्य हो गया ।

प्रातः स्मरामि युगकैलिरसभित्त्यं,

वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम् ॥

सौरी प्रवाहकृतमात्यगुण प्रकाशं,

युष्मांश्चिरेणुक्लि काचित सर्वसत्त्वम् ॥<sup>2</sup>

1- भगवद् भक्ति रसायन 2/77-78

2- प्रातः स्मरणस्तोत्र — श्री निम्बार्काचार्य श्लोक सं० ।

“भगवान् श्री राधाकृष्ण के दिव्य विहार रस से अभिभूत तथा श्री यमुनाजी के प्रवाह से समन्वित अपने अनिवर्चनीय गुणों के प्रकाशक प्रियाप्रियतम के चरणारविन्द के रजोरेणु के कणों से जहाँ के समस्त प्राणि परम पावनता को प्राप्त कर चुके हैं । मैं उन श्री वृन्दावन का प्रातः काल स्मरण करता हूँ ।”



## निम्बार्क सम्प्रदाय

### आचार्य निम्बार्क निकुंज लीला के प्रतिष्ठापक

निकुंज-लीला प्रवर्तक के रूप में श्री निम्बार्क सबसे प्राचीन हैं । डा० नारायणदत्त शर्मा ने विविध प्रमाणों के आधार पर उनका समय विक्रम की 8वीं शताब्दी सिद्ध किया है ।<sup>1</sup> डा० भट्टारकर उनका आविर्भाव काल 12वीं शताब्दी मानते हैं ।<sup>2</sup> यदि इसे ही इनके उदय का समय माने तो भी वे अन्य सभी वैष्णव आचार्यों से प्राचीन ठहरते हैं । निम्बार्क से पूर्व भी कृष्ण भक्ति का प्रचलन था परन्तु उसे साम्प्रदायिक आवरण पहनाने का श्रेय निम्बार्क को ही है । उन्होंने अपनी दश श्लोकी में बड़े मार्मिक ढंग से उपास्य, उपासक आदि का स्वल्प स्पष्ट करते हुए कहा है :-

अणि तु वामे वृषभानुजा मुदा, विराजमाना मनुष्य सोमाम् ।

सखी सहस्रे परिसेविता सदा, स्मरेम देवी सकटीष्ट कामदाम् ।<sup>3</sup>

सहस्रों सखियों से सेवित, वामणि में श्री राधा जी से युक्त जो शील, गुण, स्यादि में उनके समान ही हैं, श्री कृष्ण की आराधना करना हमारा परम इष्ट है और सब प्रकार की सिद्धियों का दाता है । इस श्लोक में निकुंज लीला के सत्र अक्षय विद्यमान हैं । राधा कृष्ण को संयुक्त रूप में उपास्य मान कर कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने पहली बार राधा की प्रतिष्ठा की है । इससे पूर्व भागवत में कृष्ण और गोपियों की माधुर्य पूर्ण लीलाओं का उल्लेख भागवत में मिलता है परन्तु राधा का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता ।<sup>4</sup> इसके अतिरिक्त 'सखी सहस्रे परिसेविता सदा' इस रूप में श्री राधा कृष्ण की सेवा का संकेत एक महत्वपूर्ण

1- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि - डा० नारायणदत्त शर्मा पृ-15

2- वैष्णविक्य शैक्विय एन्ड अदर माइनर सिस्टमस - डा० भट्टारकर पृष्ठ 88

3- दशश्लोकी : श्लोक संख्या 5

4- ब्रजभाषा के कृष्ण कव्य में माधुर्य भक्ति पृष्ठ 227 डा० रमनारायण ।

स्थापना है । यही सखी भाव का उदय था । इस संकेत के आधार पर निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्यों और अन्य आचार्यों ने निकुंज भावनों का उपास्य, उपासक और उपासना का रूप निर्धारण किया ।

सिद्धान्त :-

निकुंज बिहारी श्री राधा कृष्ण इस सम्प्रदाय के उपास्य हैं वे सदैव एक दूसरे के प्रेम में एक रस से मत्त रहते हैं । उसमें विषमता अथवा व्यवधान की कोई गुंजायश नहीं है । उनकी शिष्य परंपरा में आगे चल कर अपने युगल-शतक में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है :-

संतो सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारे कृन्दा विपिन विलासी ।

नंदनंदन वृषभानुनदिने चरण अनन्य उपासी

मत्त प्रणयवस सदा एक रस विविध निकुंज विलासी ।

जै श्री यह युगल वंशीवट मूरति सोहति अति सुखरासी ।<sup>1</sup>

कृन्दावस्थ श्री राधाकृष्ण जो निकुंजों में आनन्द से एक रस प्रणय के अतिशय आनन्द में निमग्न होकर विचारते हैं और वंशीवट जिनकी लीलास्थली है, जिनका दर्शन अलौकिक स्मन्तावस्थ मय है हम उनके उपासक हैं । इन राधाकृष्ण को निकुंज लीला विहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुहाता । उनका लीला विहार शक्तों के (उपासकों) के लिए होता है :-

और कहु न स लखे इन्हें, इनको नित्त यही आहार हो ।

रसिकन हितकारने श्री हरिप्रिया विशद विहार हो ।<sup>2</sup>

निम्बार्क सम्प्रदाय श्री राधा कृष्ण के स्वकीया भाव का उपासक है । उनका यह सम्बन्ध नित्य दिव्य और अलौकिक है, वर्णनातीत है :-

1- आदिवाणी श्री युगल शतक - श्री मददेवाचार्य पृष्ठ 2 पद संख्या 5

2- महावाणी - श्री हरिव्यास देव - पृष्ठ 161

नित्यमेव हि दाम्पत्यं श्री राधा कृष्णयोर्मतः ।  
 पाणिग्रहण सम्बन्धो वर्ण्यते न वर्ण्यते ॥  
 रसत्वं रसिकत्वं च श्री युगे सुप्रतिष्ठितम् ।  
 दाम्पत्यं च तपोर्नित्यं तमात्वे कारणं यतः ।

—युगम तत्त्व समीक्षा, ले० भगीरथ झा मैथिल 10 मयूख पृ० 252

स्वकीयात्त्व की स्थापनार्थ इस सम्प्रदाय के सभी कवियों ने श्री राधाकृष्ण की विवाह लीला का वर्णन बड़े उत्साह से किया है ।

सुखवेदी सौरभा संवारी, विविध भाँति रक्ता रचि भारी ।  
 वनावनी दीउ बने बनारि, सुखद सहेली जू पधारये ।  
 नित नव नैह नवीनी जोरी, श्री हरि प्रिया कियो कियोरी ।<sup>1</sup>

इस जोड़ी का परस्पर प्रेम अनन्य अद्भुत अलौकिक और नित्य है ।  
 उसके कारण श्री कृष्ण निरंतर 'राधा' राधा रटते रहते हैं :-

प्रीतिरीति रसवस भये, यदपि मनोहर नैन ।  
 तदपि रहै निज सुख सदा श्री राधे राधे वैन ॥<sup>2</sup>

और उनका निकुंज विहार सर्वथा सुखद, उत्साह पूर्ण एवं नित्य है :-

सब निशि वीली खेल में तउ उर अधिक उर्मग ।  
 ऐसे नवल किशोर वर, हियरे वसो अमी ॥<sup>3</sup>

हरिव्यास देव जी ने 'सिद्धान्त रत्नावलि' में शान्त, दास्य, सख्य वत्सल्य और मधुर पंच रसों का उल्लेख किया है पर उनका विशेष क्ल मधुर रस पर ही है और श्री राधाकृष्ण की विहार-मरक लीलाओं की साधना और तल्लीनता को

1- महावणी - श्री हरिव्यास देव - पृष्ठ 117

2- युगलशतक, सहज सुख पृष्ठ 28

3- महावणी सेवा सुख, हरिव्यास देव पृष्ठ 24

उपासक सर्वथा वरेष्य मानता है । आराध्य की यह सुरति कैलि सर्वथा अलौकिक है । उसमें तत्सुखी भाव की प्रधानता है । राधा, कृष्ण, सहचरी वृन्द वृन्दावन सभी दूसरों के अनन्दास्वादन में अपना परम साध्य मानते हैं । सहचरी वृन्द अपने प्राणप्रिय की सुरति कैलि में यथावसर सक्रिय सहयोग देती है । उनका यही मीज्य है ।

विवस भये नगर नवल, निरखि निरखि निज नैन ।  
मुदित मदन मद म्यंत मिलि, नहिं जानत दिन रैन ॥  
ऐतै पर अचवत रहत, अधर-सुधा रस पान ।  
अति स्वादी अद्भुत दोऊ, नहिन कोउ समान ॥  
पुनि पुनि पाहन तर पारै, करि करि बहु मनुहारि ।  
बगर बगर मैं दिपि रही, जगर मगर दुति ऐन ।  
रसिक निज जनन कै, नैन चकोरनि बैन ।

ज्यों ज्यों श्री श्यामश्याम विहार में तल्लीन होते हैं उनके प्रेम रस पान की लालसा बढ़ती जाती है ।

इस रसिक साधना में विधि निषेध की कोई मर्यादा प्रेम मार्ग में किसी नियम (नेम) का बंधन नहीं । इस साधना क्रम में दश पैड़ियों और व्दादश लक्ष्णों का विधान श्री हरिकृष्ण देव जी की महावणी में किया गया है जिनकी चर्चा निरुंज लीला के सिद्धान्त विवेचन के साथ की जा चुके है ।<sup>2</sup> श्री राधा की आठ सखियाँ (युक्तीवरियाँ) हैं जिनमें श्री रंग देवी सर्व प्रधान हैं शेषा विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, सुदेवी, तुंग विद्या और इन्दुलेखा हैं । इनके यथ है जिनमें असंख्य सखियाँ हैं । तारों और रजकण की भाँति उनकी गणना नहीं हो सकती । ये सखियाँ श्री राधा-माधव की शैया, चमर अलंकार, ताम्बूल, व्यजन, मालोपहार, स्नान, आरती, शृंगार, भोजन सभी परिचर्याओं में प्रस्तुत रहती हैं । इस सेवा का प्रातः से ही ध्यान करने का सिद्धान्त ग्रंथों में निर्देश दिया गया है :-

१- रसिक देव कृत लीला विशति, सुहग सुख पृष्ठ 54 - वृन्दावन ।

2- जाके दश पैड़ी अति दृढ़ है, विन अधिकार कौन तहँ चढ़ि है ।

--इस निर्बंध की पृष्ठ संख्या ।

प्रतिकाल ही उठि कै, धारि सखी को भाव ।  
जस मिलै निज सख सौ या को यहै वनाव ।<sup>1</sup>

श्री सख नारायण ने संक्षेप में निम्बार्क सम्प्रदाय की उपासना का सिद्धान्त निम्न शब्दों में वर्णन किया है :-

इस सम्प्रदाय के उपास्य युंगल नन्दनन्दन तथा वृषभानु नन्दिनी हैं जिन्हें प्रिया प्रियतम अथवा श्यामश्याम भी कहा गया है । इनका पारस्परिक सम्बन्ध स्वकीया भाव का है । ये भक्तों के हित के लिए विविध प्रेम लीलाओं की रचना करते हैं और सदा उनमें ही तल्लीन रहते हैं । इन प्रेम-लीलाओं में शान्त, दस्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पाँच रसों की लीलाओं का समावेश है । किन्तु इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने मधुर रस की लीलाओं को सर्वोत्कृष्ट माना है । अतः इस सम्प्रदाय के भक्त मधुर लीलाओं का गान, ध्यान तथा चिन्तन अपनी उपासना समझते हैं । लीलाओं में प्रवेश पाने के लिए इस सम्प्रदाय में सखी भाव से प्रिया प्रियतम की सेवा करना आवश्यक है ।<sup>2</sup>

इस सम्प्रदाय के रस-ग्रंथों में लीलाओं का वर्णन सुखों के रूप में किया गया है जिनमें निकुंज लीलाओं की प्रधानता है । महावणी में पाँच सुख हैं जिनमें सेवा सुख में अष्टकालीन लीलाओं और सुरति सुख में निकुंज लीला का विशद वर्णन है । सिद्धान्त सुख में सम्प्रदाय के उपास्य, उपासक, उपासना सिद्धान्तों का विस्तृत विश्लेषण है और उत्साह सुख में नैमित्तिक लीलाओं का वर्णन हुआ है । होरी बसंत रास विहार और हिंडोला - इनमें सर्व प्रमुख हैं ।

श्री भट्ट देवाचार्य - निम्बार्क सम्प्रदाय के मध्य काल में केशव कश्मीरी जैसा प्रतापी और सिद्ध महत्मा कोई नहीं हुआ । इनके सम्बन्ध में 'यस्यदेश्च' कारादेवा मन्त्रराज प्रसादतः 'गोपाल मंत्र के प्रभाव से जिनके देव ४४ गण

1- ब्रज भाषा के काव्य में माधुर्य भक्ति - सखनारायण पृष्ठ 237-238

2- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि - डा० नारायण दत्त शर्मा

आज्ञाकारी थे किम्बदन्ती अब तक चली आती है। डा० नारायण दत्त शर्मा ने इनका अविर्भाव काल 1350 से 1450 वि० माना है।<sup>1</sup> श्री भट्ट जी इन्हीं के शिष्य थे। केशव काश्मीरी जी की उपासना ऐश्वर्य प्रधान थी परन्तु श्री भट्ट जी भागवान् के माधुर्य भाव के उपासक थे। ये मथुरा के नारद टीले पर निवास करते थे जहाँ पर उनकी, उनके गुरु केशव काश्मीरी जी की सर्व हरिव्यास देव जी की समाधियाँ अद्यावधि विद्यमान हैं। श्री भट्ट जी का उपस्थितिकाल विवाद ग्रस्त है। उनकी सर्वप्रमुख रचना 'युगल शतक' है जिसकी पुष्पिका में जो दीहा दिया हुआ है<sup>2</sup> उसका पाठ अब भी विवाद पूर्ण है। प्रस्तुत दीहे से यह संवत् 1352 होता है परन्तु 'राम' के स्थान पर 'रण' पाठ नगरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में बतया जाता है और उस आधार पर यह संवत् 1652 हो जाता है। डा० नारायण दत्त शर्मा ने युगल शतक का रचना कव्य विक्रम सं० 1520 माना है और श्री भट्ट जी का उपस्थिति काल 1600 से पूर्व<sup>3</sup> डा० राम कुमार वर्मा उसका रचना काल सं० 1622<sup>4</sup> वियोगीहरि 1625<sup>5</sup> डा० किशोरीलाल गुप्त 1600<sup>6</sup> सर्व सं० रामचंद्र शुक्ल ने 1625 माना है<sup>7</sup>। सूर पूर्व ब्रजभाषा के लेखक डा० शिवप्रसाद सिंह ने इसकी उचित नहीं माना है<sup>8</sup> और इसकी विरोध किया है और डा० सत्येन्द्र ने उसका समर्थन किया है<sup>9</sup> अभी कुछ दिनों पूर्व प्रकाशित श्री हरिव्यासदेवाचार्य और उनकी महावणी शीर्षक शोध प्रबंध में उनका जन्म संवत् 1335

- 
- 1- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि - डा० नारायण दत्त शर्मा पृ 34
  - 2- नैन बान पुनि राम शशि अनौ अंक गति वाम ।  
युगल शतक पुरन भयो, संवत् अति अभिराम ।  
—युगल शतक - सं० ब्रजवल्लभ शरण वेदान्ताचार्य पृ 44
  - 3- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि डा० नारायणदत्त शर्मा  
पृष्ठ 233 अप्रकाशित भा० 2
  - 4- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार वर्मा पृ० 706
  - 5- वियोगीहरि - ब्रजमाधुरी सार पृ० 108
  - 6- सूरज सर्वज्ञ - डा० किशोरी लाल गुप्त पृ० 86
  - 7- हिन्दी साहित्य का इतिहास - श्री रामचंद्र शुक्ल पृ० 227
  - 8- सूर पूर्व ब्रजभाषा - डा० शिव प्रसाद सिंह पृष्ठ 204
  - 9- ब्रज साहित्य का इतिहास - डा० सत्येन्द्र पृ० 54 - 55

सर्व अवसान काल 1410 के लगभग सिद्ध किया गया है ऐसी दशा में निकुंज लीला के प्रवर्तन का श्रेय सभी दृष्टियों से श्री भट्ट जी एवं उनके शिष्य श्री हरिव्यास देव जी को ही जाता है ।<sup>1</sup> उनका जन्म स्थान और अयवृत्त अभी तक अनिश्चित है ।  
 हाँ श्री नानादास जी ने अपने भक्त माल में उनकी प्रशस्ति में कहा है :-

श्री भट्ट सुभट प्रगटे अघट रस रसिकन मन मोद घन ।

मधुर भाव संवलित ललित लीला सुवलित कवि ।

हरषत निरखत प्रेम हृदय आनंद कलित कवि<sup>2</sup>

जिससे उनके रसोपासना के प्रवर्तक होने की पुष्टि होती है ।

ग्रंथ रचना - श्री भट्ट जी की प्रमुख रचना 'युगल शतक' है उनकी श्री कृष्ण शारणापत्ति-स्तोत्र नाम एक स्तोत्र की रचना और दृष्टि में आई है जिसमें श्री कृष्ण चंद्र के निकुंज विहारी रूप की ही प्रतिष्ठा हुई है ।<sup>3</sup>

युगल शतक में ब्रजलीला और निकुंज लीला दोनों का ही वर्णन है परन्तु प्रमुखता निकुंज लीला की है । इस ग्रंथ में सिद्धान्त ब्रजलीला, सेवा, सहज, सुरत और उत्सव के सुखों का समवेश है जो माधुर्य भक्ति पूर्ण है । सेवा, सहज और सुरत सुखों में श्यामश्याम की विभिन्न कुंजों में सम्मन लीलाओं का वर्णन है पुरति सुख केवल निकुंज लीला परक है ।

1- हरिव्यासदेव और महावर्ण - डा० राजेन्द्र प्रसाद गौतम पृष्ठ 48

2- नानादास जी कृत भक्त माल, कृष्ण सं० 76

3- श्रीनाद समाकृष्टा ब्रजसीमितिनीव्रतः राधिका प्रेम विवशः श्री कृष्णः ।

पुलकाचित सवर्णः समालिगन्मुहुर्मुहुः, स्वलीला निधि राधा श्रीकृष्ण निम्बार्क

श्री कृष्ण शारणापत्ति स्तोत्र - श्री भट्ट देववर्ध,
   
माधुरी में पृष्ठ 22 पर उद्धृत ।

कनक कटोरे डारि नग, पगे प्रेम रस जाल ।  
कै पीवत कै छेलहीं, द्यूत छेल दोउ लाल ॥ <sup>1</sup>

इस प्रकार युगल शतक ब्रज भाषा साहित्य की निकुंज लीला विषयक सर्व प्रथम रचना है । 'युगल तत्व समीक्षा' के विद्वान लेखक श्री भगीरथ झा का अभिमत है, बस साम्प्रदायिक परम्परागत रसिकता पूर्ण शास्त्रीय भावों को ही हृदय में रख कर आचार्य श्री भट्ट जी ने अष्टयाम सेवीपयोगी रहस्य भावों को ब्रजभाषा के सुंदर सुललित पदों द्वारा इस शतक में वर्णन किया है । श्री युगल शतक में ब्रज लीला (आवरण लीला) और निकुंज लीला के चिंतन का प्रकार दिखलाया है <sup>1</sup> इनके प्रमुख शिष्य हरिव्यास देवाचार्य ने महावाणी में निकुंज लीला (कर्णिका लीला) के अनुसार ही अष्टयाम सेवा प्रकार का वर्णन किया है । ये दोनों ग्रंथ ब्रजवाणी के शृंगार हैं । <sup>2</sup>

हरिव्यास देवाचार्य -- अपने गुरु श्रीभट्ट देव जी की सेवामें ध्रुव टीला - नाराद टीला क्षेत्र में मथुरा में निवास करते थे । निकुंज रस की सैध्दान्तिक व्याख्या और उसके स्वस्व के स्पष्टीकरण का जैसी सफल और ठोस विवृत्ति इनकी महावाणी में देख पड़ती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है । सम्प्रदाय के प्रचार की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है इन्हें इस सम्प्रदाय का 'चतुरानन' कहा जाता है । निम्न समाज में मांस मदिरा निषेध के लिए इन्होंने भगीरथ प्रयास किया और अपने दादा गुरु केशव काशीरि की भाँति वैष्णव भक्ति के प्रसारार्थ जन जन अन्दोलन किया । इनके अन्य परिक्रम सूत्र विवादपूर्ण हैं ।<sup>3</sup> निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि में इनका जन्म 1520 वि०के आस पास माना गया है ।<sup>3</sup> 'हरिव्यासदेव और उनकी महावाणी' शोध प्रबंध में विशेष ऊहापोह के अनन्तर उनका उपस्थिति काल स० 1410 से 1520 तक स्थिर किया गया है ।<sup>4</sup> इस प्रकार वे गौ० हितहरिको, स्वामी हरिदास, हस्तिना

8 छंद 2।

1- युगल शतक - सहज सुख पृ० 21-22 श्री भट्ट देवाचार्य

2- युगल शतक की भूमिका भगीरथ झा मैथिल पृ० 2

3- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि - डा० नारायण दत्त शर्मा पृ० 252

4- श्री हरि व्यासदेव और श्री महावाणी -- डा० राजेन्द्र गौतम पृष्ठ 95



कनक कटोरे डारि नग, पगे प्रेम रस जाल ।

कै पीवत कै खेलहीं, द्यूत खेल दोउ लाल ॥ <sup>1</sup>

इस प्रकार युगल शतक ब्रज भाषा साहित्य की निकुंज लीला विषयक सर्व प्रथम रचना है । 'युगल तत्व समीक्षा' के विद्वान लेखक श्री भगीरथ झा का अभिमत है, बस साम्प्रदायिक परम्परागत रसिकता पूर्ण शास्त्रीय भावों को ही हृदय में रख कर आचार्य श्री भट्ट जी ने अष्टयाम सेवोपयोगी रहस्य भावों को ब्रजभाषा के सुंदर सुललित पदों द्वारा इस शतक में वर्णन किया है । श्री युगल शतक में ब्रज लीला (आवरण लीला) और निकुंज लीला के चिंतन का प्रकार दिखलाया है <sup>1</sup> । इनके प्रमुख शिष्य हरिव्यास देवाचार्य ने महावाणी में निकुंज लीला (कर्णिका लीला) के अनुसार ही अष्टयाम सेवा प्रकार का वर्णन किया है । ये दोनों ग्रंथ ब्रजवाणी के शृंगार हैं । <sup>2</sup>

हरिव्यास देवाचार्य -- अपने गुरु श्रीभट्ट देव जी की सेवामें भूव टीला - नाराद टीला क्षेत्र में मथुरा में निवास करते थे । निकुंज रस की सैध्दान्तिक व्याख्या और उसके स्वस्व के स्पष्टीकरण का जैसी सफल और ठोस विवृत्ति इनकी महावाणी में देख पड़ती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है । सम्प्रदाय के प्रचार की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है इन्हें इस सम्प्रदाय का 'चतुरानन' कहा जाता है । निम्न समाज में मांस मदिरा निषेध के लिए इन्होंने भगीरथ प्रयास किया और अपने दादा गुरु केशव काशीरि की भाँति वैष्णव भक्ति के प्रसारार्थ जन जन अन्दोलन किया । इनके अन्य परिचय सूत्र विवादपूर्ण हैं । 'निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि में इनका जन्म' 1520 वि०के आस पास माना गया है । <sup>3</sup> 'हरिव्यासदेव और उनकी महावाणी' शोध प्रबंध में विशेष उद्घाटन के अनन्तर उनका उपस्थिति काल स० 1410 से 1520 तक स्थिर किया गया है । <sup>4</sup> इस प्रकार वे गो० हितहरिको, स्वामी हरिदास, हस्तिना

1- युगल शतक - सहज सुख पृ० 8 बंद 2। श्री भट्ट देवाचार्य

2- युगल शतक की भूमिका भगीरथ झा मैथिल पृ० 2

3- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि - डा० नारायण दत्त शर्मा पृ० 252

4- श्री हरि व्यासदेव और श्री महावाणी -- डा० राजेन्द्र गौतम पृष्ठ 95

हरिराम व्यास सूरदास और नामादास के पूर्ववर्ती ठहरते हैं । नामादास जी ने इनके संत सत्य की महान प्रशंसा करते हुए इनके द्वारा देवी की वैष्णवी दीक्षा देने की बात कही है ।

श्री भट चरन रज परस ते सकल सृष्टि जकीं नई ।

हरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी की दीक्षा दई ।<sup>1</sup>

हरिव्यास जी ने सिद्धान्त रत्नावलि, श्री गोपाल पद्धति, भावना प्रकाश, गुरु भक्ति प्रकाशिका और महावाणी ग्रंथों की रचना की है । इनमें सिद्धान्त रत्नावलि श्री निम्बार्कचार्य की 'दशश्लोकी' पर निकुंज भावना परक टीका है । इसमें श्री हरिव्यास देव जी ने 'अग्रे तु वामे कृष्णभानुजा मुदा विराजमाना मनुष्य सौभाग्यम्' की व्याख्या में कृष्णभानु नंदिनी का तात्पर्य स्पष्ट सत्य से 'श्री कृष्ण प्रिया श्री राधा' से लिया गया है । जिससे इस सम्बन्ध में चली आ रही अस्पष्टता का निवारण होकर रसीपासना का उपास्य सर्वथा उज्ज्वल और प्रकाशमय हो गया ।

'गोपालपद्धति' नित्य कर्म पद्धति विषयक रचना है, 'भावना प्रकाश' में अष्टाङ्ग सेवा और सखी भाव एवं गोपी भाव का विवेचन है एवं गुरु भक्ति प्रकाशिका में श्री निम्बार्कचार्य कृत लघुस्तवराज (निम्बार्क प्रशस्ति श्री ग्रंथ) पर संस्कृत टीका है ।

महावाणी — महावाणी की रचना ब्रजभाषा में हुई है । यह रचनाकार के यशस्वी कवि कर्म, आचर्यत्व, सिद्धान्त प्रतिपादन और उच्चकोटि के रसिक होने का साक्षात् प्रमाण है । निकुंज लीला विषयक यह एक महान् उपलब्धि है । ग्रंथ का ने इसमें विषय वस्तु को क्रमशः सेवासुख, उत्साह सुख, सुरत सुख, सहज सुख और सिद्धान्त सुख, पाँच सुखों में विभाजित किया है । प्रारम्भ में संस्कृत के 36 श्लोकों का 'सखी तया आचर्य-नाम रत्नावली स्तव' है जिसमें सम्प्रदाय के, आचार्यों की सखी सत्य में वंदना की गई है । अग्रे दोहे और पदों में निकुंज लीला विषयक सभी विषयों का गंभीर और प्रभावी वर्णन है । दोहे में जिस भाव का सक्षिप्त सत्य से संकेत दिया गया है पद में उसी का पूर्ण विस्तार देखा पड़ता है ।<sup>2</sup>

1- नामाजी का भक्तमाल सं० ब्रजवल्लभ शरण वेदान्ताचार्य पृ० 520

2- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय - प्रभुदयल मोतल पृष्ठ 348

लाल और ललना का स्मर सौंदर्य, उनकी लोलसँ और क्रीड़ाँ, रथ-यात्रा विहार, रास और होली बसंत के उल्लासपर्व, झूला और फूलडोल आदि निकुंज विषयक नित्य और नैमित्तिक उपादानों के विशद और अत्यन्त साकार चित्र महाकवि ने प्रस्तुत किये हैं। उनके वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रातःकालीन उत्थापन-वेला से विहार, स्नान, शृंगार, आरती, बाल भोग, राजभोग, वन क्रीड़ा, झूला खेती और नव-निकुंज में यह शालुक भक्त सहचरी वेशधारण किए सर्वत्र उनकी सेवा में रहा है। उन्हें श्री राधामाधव की पूर्ण कृपा का वरदान प्राप्त है। अतः श्रुति ने 'रसोवैसः' कहकर जिस सच्चिदानन्द आनन्दकंद का प्रतिपादन किया है उसके विशुद्ध रस-स्म के वे सक्षात् दृष्टा रहे हैं और उन्होंने निकुंजेश्वर एवं निकुंजेश्वरी के जिन क्रीड़ा-कलापों और पुरति केलि आदि का वर्णन किया है वे नितान्त दिव्य है। सौंदर्य के चित्रों का महावाणी अनंत सागर है, उसकी सहचरी सेवा और समर्पण भावना की अगाध गहराई की थाह नहीं है और दिव्य वृन्दावन में दिव्य दम्पति की माधुर्यपूर्ण लोलसँ के अनन्त अपार आनन्द का दिव्यस्त्रोत वहाँ से प्रवाहित हुआ है।

निगम निगम अणिम अगम, लहि न सके गुन ग्रंथ  
नेम-प्रेम ते पर क्यौ परम पराने पंथ ।<sup>1</sup>

हरिव्यास देव में सजीव और विशद चित्र सतारने की अभूतपूर्व शक्ति है। प्रत्येक घटना व्यापार के सौन्दर्यमय उपादानों पर उनकी सूक्ष्मदृष्टि पड़ती है और फिर उनकी विशदता और गहनता में पैठ करके वे उसकी भाव भूमि में विचित्र ढंग से प्राण प्रतिष्ठा करने में सफल हो जाती हैं। एक एक घटनावली के एक एक सूक्ष्म व्यापार में उनकी दृष्टि गहनता से नोट कर लेती है। यह उनकी काव्य प्रतिभा और रसव्यंजना की विशेषता है। उनके सभी वर्णन सुख से ओत प्रीत हैं।

विहारत सुमन सेज पर दोऊ ?  
अलवैले आनंद की मुरति और तहाँ नहिँ कोऊ ।

1- महावाणी सेवा-सुख पृष्ठ 49

2- वही वही पृष्ठ 36-37

थारी के वदनारविन्द की लेत वलैया ललित ।  
 पुनि पुनि परम प्रससित प्रीतम प्रिया प्रेम प्रतिपाल ॥  
 भरी अँकवारि कुँवरि कुवरवार कात विहार विनोद ।  
 मदन केलि रस मत्त मगन भये मन न समावत मोद ।  
 'नैति नैति' वचनामृत सुनि सुनि पिय स्थि बढत मनोज ।  
 त्यो त्यो अति रनधीर मिलावत जसनि असन सरोज ।  
 नूपुर मुभर किंकिनी को अति होत सनुक झुनुराव ।  
 अमित अनंगन के अंगन में उपजत अगनित भाव ।  
 सुभ सरसावत रस वरसावत रुचि तरंग नहिं पार ।  
 श्री हरि प्रिया निज दासी निरखति लता ओट निरधार ॥

श्री कल्देव उपाध्याय ने महा कवि की इस अमर कृति के सम्बन्ध में लिखा है ।<sup>1</sup>

"महावली में राधा कृष्ण की नित्य विहार लीला का बड़ा ही मार्मिक, तलस्पर्शी हृदय ग्राही वर्णन किया गया है । पदों की भाषा कोमल ब्रज भाषा है । पढ़ने से प्रतीत होता है कि हरिव्यास देव जी इन अलौकिक लीलाओं का स्वतः सझाकार का ही ही इसे लिख रहे हों । यह पदावली लिखी हुई है दिव्य मनसिक दशा में, भावावेश में, जिसमें कवि विषय के साथ तादृश्य स्थापन का उसमें नितान्त लीन हो जाता है । यह माधुर्य की छानि है तथा राधा और सर्वेश्वर की दिव्य लीलाओं की माधुरी की पूर्ण प्रकाशिका है । x x x निम्बार्क कवियों में हरि व्यास देव को वही स्थान प्राप्त है जो क्लृप्त सम्प्रदाय में सुरदास को प्राप्त है । \* 2

रस्य रसिक देव —

रस्य रसिक देव का जीवन वृत्त अभी तक अस्पष्ट और सीद्ध्य है ।

1- भागवत सम्प्रदाय कल्देव उपाध्याय पृष्ठ 326

2- वही वही वही पृष्ठ 329

सम्प्रदाय में ये हरिव्यास देव जी के परीक्ष-शिष्य माने जाते हैं ।<sup>1</sup> युगल शतक और महावली निकुंज लीला के स्वस्य बोधक ग्रंथ हैं उनमें सिद्धान्त सम्बन्धी कर्णों का भी एक सीमा तक समावेश है परन्तु सिद्धान्तों का निवृत्ति मूलक प्रयत्न उनमें नहीं देखा पड़ता । श्री स्व रसिक देव ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया । इसके परिणाम स्वस्य वै स्व रसिक से "स्व रसिकवर" प्रसिद्ध हुए ।

स्व रसिक से स्व रसिक वर

दिव्य महावली रस सनी, प्रकट करन प्रकट अवनी पर

अति रहस्य रस की परिपाटी, लखिबै इनकी कौन न सरिवर ।<sup>2</sup>

स्व रसिक देव जी ने "हरिव्यास यशामृत सगर", नित्य विहार पदावली और "वृहदुत्सव मणिमाल" तीन ग्रंथ प्रकाश में आए हैं । "हरिव्यास यशामृत सगर" में उनके यशस्वी गुह्यदेव श्री हरिव्यास देव जी की प्रशस्ति है जिसमें उनके नाम के अलौकिक प्रभाव और उनके चमत्कार शाली व्यक्तित्व का प्रभाव पूर्ण कर्ण है :-

हम तो श्री हरिव्यास उपासी ।

सदा उदासी त्रिगुन गवन सों, कुंज भवन के वासी ।।

गावें पराष्टिम रसरसी महावली अविनासी ।

चाहत नहीं युक्ति आदिक सुख गंगा रवा कासी ।।

अर्धनग्न हरिव्यास उचारत हृष्य नास अधरासी ।

स्व रसिक भक्तेश भूप विनु विचरे सदा झुलासी<sup>3</sup>

प्रस्तुत पद से गुरु के प्रति उनकी अनन्यता के अतिरिक्त सम्प्रदाय की रस रीति पर भी थोड़ा प्रकाश पड़ता है । लीला किराँति और नित्य विहार पदावली कृदावन रस से सम्बन्धित कृतियाँ हैं । लीला किराँति में 19 लीलाएँ पद्यों में हैं और सिद्धान्त माधुरी गद्य में इस प्रकार 20 लीलाओं का कर्ण है । हँसों में

1- निम्बार्क माधुरी, ब्रह्मचारी विहारी शरण पृष्ठ 97

2- किराँती शरण प्रति कृदावन। ब्रज भाषा के कृष्ण कव्य में माधुर्य भक्ति शोध-प्रबंध से उद्धृत पृष्ठ 247

3- रसिक मंजरी दोहा 9, स्व रसिक देव पृष्ठ 7

प्रायः दोहों का प्रयोग है अन्य ढंदों का प्रयोग कम ही है । शीर्षकों के अनुस्यू विध्य का प्रतिपादन मार्मिक ढंग से हुआ है । सिद्धान्त माधुरी ब्रजभाषा गद्य में लिखी गई है जिसकी भाषा पुष्ट और प्रज्जल है । लीला विरति में उत्कृष्ट कल्पना और भावों के उत्कर्ष पूर्णविवरण प्रस्तुत किए गए हैं ।

मधुर मधुर मुदु हसनि में लसनि दसनि रंग भोजि ।

बहु बदन-विधु में मनो सोदामिनि के बीज ।<sup>1</sup>

"मोहन मंदिर के अग्रभाग अंगन में मोहन मंडल ताके ऊपर अनपिम अष्ट कोन को एक सुख सिंहासन तहां युगल जू विराजत है । कोन कोन ? प्रत्येक एक प्रिय सखी निज निज गननियुत अनेक भावनि सों सेवा करत हैं । तिनके नाम श्री रंगदेवी जू, सुदेवी जू, ललिता जू, विशाखा जू, चंपक लता जू, सुचित्रा जू, तुंगविद्या जू, इन्द्र लैला जू, इनको प्रिय सखी जानिहैं । काहू काहू मतान्तर विधे इसके और हू नाम सुनियतु हैं, सो यामें कहू सदेह न ब गनिहैं ।" 2

नित्य विहार पदावली में निकुंज लीला विध्यक पद रचना है जिससे लीला का स्वयं स्पष्ट होता है :-

काके नैन हैं अति लोने ।

कुंज महल प्यारी प्यारी दोउ वदत पासपा गोनैं ।

दर्पन लयें हथ मुख जोरें तीकन चमल दुहोनैं ।

आवत त्व मापत अंगुलि सों अलन वारन लचि कोनैं ।

तोहू आत न रहत प्रिया हरि सहचरि वालि दिछोनैं ।

'स्व रसिक' कहैं स्वामिनी सरसी अजन तैं दिवि दोनैं ।<sup>3</sup>

और वृहदुत्सव मण्डिमाल में नैमित्तिक लीलाओं का प्रभावशाली वर्णन है । इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय की सिद्धान्त और स्वयं विवृत्ति के क्षेत्र में स्व रसिक देव जी का

1- रसिक मंजरीदोहा 9 स्मरसिक देव पृ० 7

2- स्मरसिक देव कृत लीला विरति - सिद्धान्त माधुरी पृष्ठ 39

3- " " " - नित्य विहार पदावली पद संख्या 30

बहुत ऊँचा स्थान है। 'महावगी' इस सम्प्रदाय का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है उसी के आधार पर विवृति निपुणता के कारण उनकी महावगी का उद्घाटन कर्ता अथवा उद्धारक कहा गया है। श्री किशोरी शरण, अविल के मत की यही सार्थकता है।

पराशुराम देव — श्री हरिव्यास देव जी के प्रधान वारह शिष्यों में पराशुराम देवाचार्य सबसे प्रभावशाली हुए इनका उपस्थिति काल विक्रम की १६वीं शताब्दी से पीछे की है। सं० १६५० के आस पास<sup>१</sup> इनके पिता जी का नाम वासुदेव था पारान्तु वस्तुवस्था में ही ये माता पिता से विहीन होकर गुप्तेव की शरण में आगए थे। उनकी कृपा से इन्होंने राजस्थान के असंस्कृत लोगों की सम्प्रदाय प्रचार और साहित्य रचना में प्रवृत्त किया। इसी रूप में नामादास जी ने इनका प्रशस्ति गान किया है :-

ज्यों चंदन को पवन, निम्ब पुनि चंदन काई ।

बहुत काल तम-निबिड़, उदय दीपक ज्यों हाई ।

श्रीभट पुनि हरिव्यास सन्त मारग अनुसरई ।

कथा, कीरतन, नेम, रसन हरि गुन उच्चारई ।

गोविन्द-भक्ति मद रोग गति स्निग्ध तिलक दाम सद वैद हृद

जंगली देस के लोग सब पराशुराम किय पारभद ।<sup>२</sup>

पराशुराम देवजी की 'पराशुराम सगर' एक विशाल कव्य रचना है उसके अतिरिक्त १२ अन्य ग्रंथों का पता लगा है पारान्तु वे प्रकाश में नहीं आए<sup>३</sup>। पराशुराम सगर में प्रमुखतया सगुण भक्ति सम्बन्धी विवेचन लीलाओं के रूप में है पारान्तु उसके साथ ही उन्होंने कवीर की भाँति निर्गुण ब्रह्म पर भी कवितारंग की है। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रचारक की अपेक्षा उनका व्यक्तित्व समझ उन्नयन कर्ता के रूप में अधिक उभरा है:-

लीचन लीचत है ल्यो लस ।

हरिदर्शन कारन अति आतुर उलटिन फिरत फिरास ।

पलमरि पलकन पलटत चितवत समझत नहिं समझास ।

१- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि पृष्ठ ३११ अप्रकाशित

डा० नारायण दत्त शर्मा

२- भक्तमाल- श्री नामादास पद संख्या पृष्ठ

३- भागवत सम्प्रदाय- श्री बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३३०

उज्जि उज्जि क्लत युगल जग परि हरि हरि सम्मुख सुखपाए ।

उमगि मिलनि कारन निसिवासर रहत सजल जल बाए ।

‘परसुराम’ निर्मय तब मानत पीव के प्रेम समाए ॥<sup>1</sup>

निकुंज लीला के स्वल्प और सिद्धान्त प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से श्री बाबा माधवदास जलिमाधुरी का भी बहुत ऊँचा स्थान है । उनका ‘निकुंज प्रेम माधुरी’ इस रस की अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है ।<sup>2</sup> श्री वृन्दावन देव, नाभरीदास, सुंदर कुंवारी भी श्रेष्ठ रचनाकार हैं ।

मध्य गौड़ीय सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय के आवर्तक श्री मध्वाचार्य का जन्म संवत् 1256 में तैलंग प्रदेश के वैलि ग्राम में मध्यम्य भट्ट के घर हुआ था । इनकी माता का नाम वेदवती था । इस सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त ‘दैवतवाद’ है और ये शंकर के ‘अदैवतवाद’ के पूर्ण विरोधी हैं । उनके अनुसार ‘परमात्मा’ एक सगुण और सविशेष है दूसरा जीवत्मा, ये दोनों ही नित्य हैं, अनादि हैं और इनमें स्वाभाविक भेद है । इस सम्प्रदाय की परंपरा के विस्तृत हो जाने पर महाप्रभु चैतन्य और इनके परिकार के सहयोग से इसका पुनर्गठन हुआ और चैतन्य के गौड़वर्गीय वर्ग ने अपने प्रकाष्ठ पांडित्यपूर्ण भक्ति सिद्धान्तों और ग्रंथ रचना के द्वारा मध्य सम्प्रदाय को अपने में अंगीकृत कर लिया । मध्य मत का सिद्धान्त दैवतवाद है चैतन्य का ‘अक्षय दैवाददैवत’ या अक्षय भेदाभेद । या मध्वाचार्य ने अपने मत सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए प्रस्थानत्रयी पर भाष्य रचना की थी परन्तु चैतन्य महाप्रभु ने कोई भाष्य-ग्रंथ नहीं लिखा । श्री कन्देव विद्याभूषण ने पीछे ‘गोविंद भाष्य’ लिखा जिससे सम्प्रदाय को शास्त्रीय रूप मिला । दोनों के सम्मिलित अस्तित्व में अब यह मध्य गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के नाम से अभिहित होता है ।<sup>3</sup>

1- परसुराम सागर से निम्बार्क माधुरी में उद्धृत पृष्ठ सं० 90

2- सखी मोहि और स्याम हवि भावै ।

गलबहियां दिये भी उमगनि मन्त्र मन्द मुसिकावै ।

— निकुंज प्रेम माधुरी - श्री माधवदास पृ० सं० 62

3- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय भा 2 श्री प्रमुदयल मीतल पृष्ठ 157



एकत्वं च पृथक्त्वं च तथाशिव्य मुताशिता ।

तस्मिन्नेकत्र नामुकम् अचिन्त्यानन्त शक्तितः । ।

इस सम्प्रदाय में ब्रज के अधिपति नंद के पुत्र भगवान् श्री कृष्ण ही परमाराध्य हैं । उनका धाम वृन्दावन है और ब्रज की गोपिकाओं के भाव से की गई पावन उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रमाणिक उपासना है । श्रीमद्भगवत् ही उनके लिए सर्वमान्य प्रमाण शास्त्र हैं और प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुण्यार्थ है<sup>2</sup> दार्शनिकों द्वारा निर्णीत धर्म, अर्थ, काम मोक्षा चार में से किसी को महत्त्व न देकर ये भक्ति को पंचम पुण्यार्थ मानते हैं । स्व गोस्वामी ने भक्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है 'श्री कृष्ण की अनुकूलता से अनुशीलन जिसमें ज्ञान, कर्म आदि का लेश न हो और अन्य अभिलाषाओं को सत्ता न हो वही भक्ति है :-

अन्याभिलाषितान्यं ज्ञान कर्मद्वयनावृतम् ।

आनुक्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिसत्तया ॥

-भक्ति रसामृत सिंधु १/१४॥

श्रीमद् भगवत् में इसी भक्ति को श्रेष्ठता पर स्थान स्थान पर बल दिया गया है । भगवान् ने स्वयं ही अहेतु की अव्यवहिता भक्ति की प्रशंसा की है ।<sup>3</sup>

भगवान् की वशीभूत करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय भक्ति ही है । भक्ति के दो प्रकार हैं 1- विधि भक्ति 2- सूचि भक्ति या रणात्मिका भक्ति । विधि भक्ति, साधन भक्ति है उसमें शास्त्रानुमोदित यम नियमों का अनुसरण करना परमावश्यक है

1- भगवत् सम्प्रदाय, श्री बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 518

2- आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावन ।

रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णि या कल्पिता ॥

शास्त्रभगवत् प्रमाण ममलं, प्रेमा पुयर्थी महान् ।

श्री चैतन्य महाप्रभुमतिमिदं तत्रादरो श्रद्ध नः पर

-भगवत् सम्प्रदाय, श्री बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 519 पर उद्धृत

3- दीया यानं न ग्रह्यन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ - श्री मद्भगवत् ।

भागवत का इस सम्बन्ध में निर्देश करते हैं :-

रणात्मिका भक्ति की सम्प्राप्ति में भक्त का मन इस प्रकार कटपटाता है जैसे कि बिना पंखों के पक्षी का अपनी माता के लिए, मूँह से व्याकुल बकड़ों का गर्थ के लिए और पत्नी का परदेश गए हुए पति के लिए। इसे माधुर्य भक्ति कहा गया है।

महाप्रभु के अनुयायियों में भट गोस्वामियों (सनातन, रघु, रघुनथदास, रघुनथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जेव गोस्वामी) ने माधुर्य भक्ति को शास्त्रीय जामा पहनाया। रघु गोस्वामी द्वारा रचित 'हरि भक्ति रसमृत सिंधु' और 'उज्ज्वलनील मणि', जेव गोस्वामी कृत 'भट्ट संदर्भ' या 'भागवत संदर्भ' इस दिशा में विशेष प्रमाण है। कृष्णदास कविराज का 'कैतन्यचरितमृत' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें महाप्रभु की जीवनी के साथ भक्ति सिद्धान्तों का सुंदर प्रतिपादन है। इनके प्रसिद्ध अतिरिक्त जीवनी, नाटक, कव्य, चम्पू बड़ी संख्या में बंगला भाषा में लिखे गए हैं जिनसे सम्प्रदाय के स्वल्प का बोध होता है।

गोडोय सम्प्रदाय में शान्त, दस्य, सख्य, वत्सल्य और माधुर्य पंच रस की मान्यता है जिनमें शान्त रस की रति निम्न कोटि की होती है और माधुर्य में उसका चरमोत्कर्ष रहता है। माधुर्य भाव की रति को साधारण, समज्जसा और समर्था तीन भागों में बांटा है। इनमें साधारण रति के उपासक को मथुरा धाम, समज्जसा के को द्वारका धाम और समर्था के उपासकों को 'गोपी भाव' की प्राप्ति होती है क्योंकि वे भगवान् के अर्पण के लिए ही सेवा उपासना करते हैं। इस कारण इसमें विधि निषेध का विचार नहीं रहता। 'गोपिकभाव' ही अपने उत्कर्ष में 'राधा भाव' या 'महाभाव' का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में रसोपासना की प्रधानता है।<sup>2</sup> श्री राधा का 'पारकीय भाव' यहाँ ग्राह्य है। परन्तु पारकीया भाव की स्थिति यहाँ केवल ब्रज वधुओं में स्वीकार की गई है:-

1- अज्ञात पक्षा इव यातरं रवभाः

स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधातः ।

प्रियं प्रियेव व्युधितं विषण्णा

मनीषारविन्दक्ष, दिङ्मतेत्वाम् ॥ - श्री मदभागवत -

2- भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 527

पाकया भावि अति रसैह उल्लास ।

ब्रज बिना ईहा अन्यत्र नहि वास ॥<sup>1</sup>

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस 'पाकया भाव' में प्रेम की तोषता की प्रधान कारण मानते हैं ।<sup>2</sup>

राधाकृष्ण की लोलछाँ — गोड़िय आचार्यों के मत से राधाकृष्ण की लोलछाँ नित्य है । ये प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की हैं । इनमें से प्रकट लोलछाँ का अधिक महत्व है क्योंकि उसमें बालपन से लेकर अन्तर्धान पर्यंत सभी लोलछाँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं और उनमें वास्तव्य, सख्य आदि के साथ पूर्वराग मान विरह आदि की भी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है ।<sup>3</sup> श्री स्व गोस्वामी के विदग्ध माधव और ललित माधव नाटक, जो व गोस्वामी के गोपाल चम्पू, राम रामानंद कृत जगन्नाथ बल्लभ आदि लीला ग्रंथों में प्रकट लोलछाँ का प्रतिपादन है । इनमें रास, जलकेलि, वंशी चोरो, होलो झूलन, द्यूत क्रीड़ा, वस्त्रापहरण आदि संयोग पक्ष और पूर्वराग, मान, प्रवास आदि सम्बन्धी लोलछाँ वियोग पक्ष की दृष्टि से उत्तम हैं । स्व गोस्वामी के सारण मंगल स्तोत्र के आधार पर अष्टकालीन लोलछाँ का कर्ण हम लोलछाँ के विश्लेषण के प्रसंग में कर चुके हैं ।<sup>4</sup> अष्टकालीन लोलछाँ में सभी ह रसों का समावेश रहता है ।

गोड़िय सम्प्रदाय में सभी उन गोपियों को माना है जो राधाकृष्ण की मधुर लोलछाँ की सम्पन्न कराने में सब प्रकार का सहयोग देती हैं । वे श्री कृष्ण के ह्लादिनी शक्ति राधा की अंश स्था हैं । वे लोला विस्तार का माध्यम हैं ।

सभी हेते ह्य रई लोला विस्तार ।

सभी-विनु रई लोला पुष्ट ना ह्य ॥<sup>5</sup>

1- चैतन्य चरितामृत

2- सारसहित्य- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 26-27

3- भागवतमृत काविका विश्वनाथ चक्रवर्ती पृष्ठ 43

4- इस निबन्ध की पृष्ठ संख्या १४१ .

5- चैतन्य चरितामृत - मध्यलोला, अष्टम परिच्छेद

गोड़ोय सम्प्रदाय के कवि - भगवान् श्री कृष्ण और राधा की भक्ति का प्रसारक होने के कारण इस सम्प्रदाय का ब्रज प्रदेश से विशेष सम्बन्ध रहा है परन्तु ग्रंथ रचना में बंगला और देवनागरी संस्कृत का ही विशेष प्रयोग रचनाकारों ने किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के ग्रंथों में इस सम्प्रदाय के प्रायः 8-10 कवियों का ही उल्लेख है।<sup>1</sup> फिर भी इनका सर्वोत्तम भाग माधुर्य भक्ति की सरस पदावलियों में समाहित है। श्री रामराय, सुरदास मदन मोहन, गंदाधर भट्ट, क्लृप्त रसिक, श्री माधुरी जी इस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कवि हैं। श्री क्लृप्त रसिक और श्री रामराय के शिष्य प्रशिष्यों ने भी ब्रजभाषा के मन्दार को मरा है।

श्री गदाधर भट्ट - अन्य अनेक भक्तकवियों की भांति गदाधर भट्ट जी का जीवन कृत विवादास्पद है। आचार्य राम चंद्र शुक्ल<sup>2</sup>, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी<sup>3</sup> और श्री वियोगी हरि ने<sup>4</sup> इनका समय सं० 1542 वि० से 1590 तक मना है और उन्हें चैतन्य महाप्रभु का समकालीन बतलाते हुए लिखा है कि वे उन्हें श्रीमद्भागवत की कथा सुनाना करते थे। श्री प्रमुदयल मोतल ने इसका खंडन करते हुए लिखा है कि गदाधर भट्ट जी को चैतन्य महाप्रभु से सक्षात्कार करने का कभी अवसर नहीं मिला हाँ वे भागवत की बहुत अच्छी कथा कहते थे और वृन्दावन की भक्त मंडली को उसका रसस्वादन कराया करते थे।<sup>5</sup> वुडेल वैभव में उनका जन्मकाल सं० 1620 और कविता काल 1660 दिया है<sup>6</sup> तथा मिश्र बंधु विनोद में 1720 दिया है जो ठीक नहीं है<sup>7</sup> श्री मोतल ने उनका जन्मकाल सं० 1680 वि० स्वीकार किया है। गदाधर भट्ट विवाहित गृहस्थ थे और क्लृप्त रसिक उनके पुत्र थे। प्रियादास जी ने उस भक्तमाल की टीका में उनके श्री कृष्णानुष्ठा, वृन्दावन निष्ठा और प्रेमान्माद का कित्ता से वर्णन किया है।<sup>8</sup>

- 
- 1- चैतन्य मत और ब्रजसाहित्य - प्रमुदयल मोतल पृष्ठ 130
  - 2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 182
  - 3- हिन्दी साहित्य - हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 200
  - 4- ब्रजमाधुरी स्तर- वियोगी हरि पृष्ठ 75
  - 5- चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृष्ठ 156
  - 6- वुडेल वैभव भा० पृष्ठ 211
  - 7- मिश्र बंधु विनोद, द्वितीय भाग पृ० 519

श्री गदाधर भट्ट ने प्रायः पदों में रचना की है। कुछ संस्कृत छंद भी लिखे हैं। इनकी भाषा ब्रज है जिस पर इनका पूर्ण अधिकार है। इनके काव्य में भगवान् श्री कृष्ण के निकुंज बिहारी स्वयम् को भलीभाँति प्रतिष्ठा हुई है। वृन्दावन निष्ठा, सखी भाव से अत्म समर्पण, अनुराग और भक्ति इनके पदों से प्रसारित होती प्रतीत होती है। इनके पदों का संग्रह 'मोहिनी वानो गदाधर भट्ट' की शीर्षक से उपलब्ध है।<sup>1</sup> भक्ति शृंगार रास विलास, विवाह मान आदि पर इन्होंने पद रचे हैं हिन्डोल, वसन्त, होली, राधाकृष्ण विवाह निकुंज-पारक विधियों का इनकी वाणी में प्राचुर्य है।

नंद कुलचंद, वृषभानुकूल कोमुदी,  
उदित वृन्दाविपिन किमल आकासे ।  
निकट वैशित सखी वृन्दवर तारिका  
लोचन-चकोर तिन रूप - रस - प्यासे ।  
रासिक जन अनुराग - उदधि तजो मराजाद,  
भाव अगनित कुमुदिनी गन विकासे ।  
कहिं 'गदाधर' सकल विस्व तमधन, किना  
मानु भव-ताप-अज्ञान न बिनासे ।<sup>2</sup>

प्रस्तुत पद में श्री राधा कृष्ण की प्रातः उत्थापन वेला की झंकी का हृदय-ग्राही कर्म है। ऐसे ही अन्य अनेक चित्र उन्होंने खींचे हैं - जो निकुंज-लीला के स्वल्प-दिग्दर्शन में पूर्ण समर्थ है :-

निर्तत राधानंद किसोर ।  
ताल मृदंग सहचरी वजावत विच विच मोहन मुरली कलघोर ।  
उरप तिरप पग धरत धरनि पर मंडल फिरत भुजन भुज जोर ।  
शोभा अमित विलोकि 'गदाधर' रोझि रोझि डारत तून तोर ।<sup>3</sup>

गौड़ीय सम्प्रदाय में निकुंज-लीला के स्वल्प की प्रतिष्ठा अन्य रसोपासक

1- हिन्दी काव्य में कृष्ण-चरित का भावात्मक स्वयम् विकास - डा० तपेश्वरानन्द पृ० 298

2- ब्रज माधुरी सार पृष्ठ 80

3- गदाधर भट्ट की वाणी पृष्ठ 53

सम्प्रदायों से थीं ही भिन्न है । पहले बात तो यह है कि इस सम्प्रदाय में माधुर्य भक्ति के साथ दस्यु, सख्य, वत्सल्य रसों के घेलमेल पर कोई प्रतिबंध नहीं है वरन् श्रीकृष्ण के निकुंज बिहारी स्वाम्य के साथ अन्य रस-स्वस्वों को झंझी भी चलती रहती है । दूसरी बात यह है कि यहाँ श्री राधा का परकीया भाव गृहीत है जो निकुंज लीला के परिवेश में स्वीकृत की भाँति मयदापूर्ण और उन्मेषकारी नहीं है यही कारण है कि इस सम्प्रदाय को निकुंज भावना को वैष्णव साधना क्रम में निम्बार्क राधाकलम स्वामी हरिदास के सम्प्रदायों को भाँति विशुद्ध रस में ग्रहण नहीं किया गया । हाँ सिद्धान्त-विवेचन की शास्त्रीय परंपरा का विकास इस सम्प्रदाय में सर्वोत्कृष्टता से हुआ है ।

सूरदास मदन मोहन :— गदाधर भट्ट की भाँति सूरदास मदन मोहन का जीवनकृत भी अभी तक विवाद का विषय है । प्रिया दास जो की टोका में इन्हें अकवरी शासन में सँढोले का अमोन बताया गया है और कहा गया है कि इन्होंने सरकारी मालगुजारी के 13 लख रुपये सधु सेवा में लगा दिये और कृन्दावन को चले गए । अकबर की जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने इनकी भावुकता की सराहना करते हुए इन्हें कैसे ही दरबार में बुलाना चाहा परन्तु ये गए नहीं ।<sup>1</sup>

सूरदास जाति के सूरध्वज ब्रह्मण थे । डा० सारयूप्रसाद अग्रवाल ने इन्हें कथस्थ माना है<sup>2</sup> । श्री प्रमुदयाल मोतल ने इन्हें ब्राह्मण बतलाया है और जन्म सं० 1570 वि० माना है<sup>3</sup> । श्री कियोगी हरि ने इनका रचनाकाल सं० 1590 दिया है<sup>4</sup> । निष्कर्ष रूप में इनका आविर्भाव काल विक्रम की 16वीं शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है ।

1- तेरह लख सँढीले उपजे, सब सधुन मिलि भटके ।

सूरदास मदन मोहन, कृन्दावन को सटके

प्रियादास भक्ति रस बोधिनी टोका कवित्त सं० 5498-500

2- अकवरी दरवार के हिन्दी कवि पृ० 46, डा० सारयूप्रसाद अग्रवाल

3- सूरदास मदन मोहन - श्री प्रमुदयाल मोतल पृष्ठ 8

4- कृष्ण माधुरी सार पृष्ठ 100 - कियोगी हरि.

ये अनन्य भगवद्भक्त, और भावुक हृदय थे । ब्रज भाषा पर उनका अच्छा अधिकार था । उन्होंने गोड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान और प्रचारक श्री सनातन गोस्वामी से दोक्षा ग्रहण की थी । इन समस्त परिस्थितियों के कारण उनको रचन में बड़ी सरस हृदयग्राही और भक्ति तत्त्वों से ओत प्रोत है । गोड़ीय सम्प्रदाय की भक्ति में सच्च, वस्तुसत्य, माधुर्य सभी भावों की प्रतिष्ठा और प्रतिपादन के कारण इनकी रचनाओं में भी ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति हुई है और भाव साध्य के कारण इनके कुछ पद अष्ट हाथी सूरदास की रचनाओं में मिल गए हैं जिन्हें उनसे पृथक् करना दुस्तर कार्य है । कृष्ण की बाल लोल, मधुन चोरो, वीरनाद, गोपियों की नीक झंझ राधा कृष्ण केलिक्रोड़ा विषयों पर इन्होंने पद रचना की है । युगल कवि के विष्व प्रतिविम्ब भाव के इनके पद विशेष अकर्षक है । प्रातः उत्थापन वेलमें निकुंज से निर्गत होते हुए श्री राधामाधव की सुन्दर शक्ति निम्न पद में उन्होंने प्रस्तुत की है :-

बाह जोगि निकसे कुंज तैं प्रात, रोझि करी हंसि बात ।

कुण्डल झलमलति झलकत विविधात,

चकचौध सों लगात, मेरी नैना लटपटात ॥

पल नहिं ठहरात, रोझि करी हंसि बात, राध्म मोहन,

बर धन-चपला तन चमकि चमकि मेरी पतरी में समात ।

“सूरदास मदन मोहन” देखे मोहि रहे,

चलि न सकति अब मीध भूली पचि अह्म सात<sup>2</sup>

सखी सहचरियों ने चौपड़ को विदात कर दी है । उनके द्वारा रीखा रचपच का पहले ही तैयार कर दी थी जिस पर प्रिया-प्रियतम आधने सामने बैठे हुए हाव भाव से परस्पर एक दूसरे का अवलोकन करते हुए कटाक्ष पात संलग्न है , दोनोंही चतुर और खेल में दक्ष हैं अपने अपने दांव की टोह में हैं, प्रियाजी और मदन मोहन नये नये ढंग से वाजी लगाते हैं फिर भी उनके परस्पर रोति इतनी घनिष्ट और आतुरता मयी है कि दोनों के तन-मन पहले ही विवश हैं जीत और

1- सूरदास मदन मोहन- प्रमुदयाल मीतल पृष्ठ 7

2- वही वही वही पद संख्या 59 पृष्ठ 53

हार का प्रश्न कौनों दूर है । इसके लिए अवकाश कहाँ ? बड़ी विलक्षणता से इस भाव का निर्वाह उनके कव्य में देख पड़ता है :-

चौप चौपारि तलप रचि पचि, सुमग पुलिन विसात सवारि ।  
कटाखन की गिनति नहों, बैठे सनमुख दीऊ,  
छेतल स्यामस्यम दृग पसि टारि ।।  
दीऊ चतुर प्रवेन, जुग प्रीति न बूटै,  
हाव भाव तरंग तेई रंग रंगसारि ।  
“सुरदास मदन मोहन” प्रिया नव खेल रचति,  
लख्यो तन मन दीऊ जीत न हारि ।<sup>1</sup>

निकुंज के खेल खेल के लिए होते हैं हार जीत के लिए नहीं ।

राधा कृष्ण की इन लीलाओं का उत्कर्ष सुरति आदि के कर्ण में होता है । कवि ने मक्त भावना के अनुसार इस प्रकार के सुंदर चित्र अंकित किये हैं । कुछ चिन्हों और छडिता नायिकाओं का कर्ण भी इसी प्रेम लीला की पुष्टि के लिए है । इन लीलाओं के अतिरिक्त वसंत पूजन, रास, हीली, झूलन दान लीला के रोचक कर्ण इनकी पदावली में उपलब्ध हैं । निकुंज लीला गान की दृष्टि से इनका उच्च स्थान है ।

श्री (माधुरीदास) माधुरी — माधुरीदास जी का जीवन कृत अभी तक अंधकार में है । उनके केलि माधुरी की पुष्पिका में उसका रचना काल वि०सं० 1687 दिया हुआ है जिससे अनुमान होता है कि विक्रम की 17वीं शताब्दी के मध्य से लेकर अंत तक वे पदरचना करते रहे होंगे ।<sup>2</sup>

माधुरीदास जी के पदों का संग्रह माधुरीवणी शीर्षक से बाबा कृष्णदास

1- सुरदास मदन

2- संवत् सोरह सौ असौ, सात अधिक शिव धार ।

केलि माधुरी कवि लिखी, आका वदि बुधवार

श्री माधुरीवणी, श्री माधुरी, सं० बाबा कृष्णदास पृ० 59 दीर्घ सं० 129



ने प्रकाशित काया था । इसमें उत्कण्ठा माधुरी, वीरवट माधुरी, केलि माधुरी, वृन्दावन माधुरी, दान माधुरी, मान माधुरी, होरी माधुरी सात निकुंज पाक विषयों पर ब्रज भाषा में दोहा, चौपाई, सीरण कव्य, पद और धनक्षरी (कवित्त) बन्दों में सुन्दर मस्ति भावनापूर्ण रचनें हुई हैं । उत्कण्ठा माधुरी में प्रिया का प्रियतम और सहचरी की दम्पति के प्रति अतीव प्रेम उत्कण्ठा का कर्ण है, केलि माधुरी में सुरति झोड़ा का इसी प्रकार अन्य विषयों पर भी रचनें हैं ।

निकुंज केलि के अनन्तर प्रिय प्रियतम के शिथिल गीत और विकृत क्त्रालंकार को कवि दृष्ट्य है :-

दो० - अदल बदल तन हैवै रहे, उलटि पुलटि शृंगार ।

अजहं लौ गथ गधि की, नैकु न होत संधार (117)

कव्य- उनयो नवास मेह नैह निसि वास पासपर ।

चुरो मेहु सबचुरो आहु कई दुरी म्हावर ॥

अम कन सलिल अपार पलक झूठ प्रेम पसोजे ।

सकत न पंछ पसारि जुगल झंजन रस पीके ।

उड़ि सकत न सिथिल सुभाव ते सुचपल चपलता मिटि गई

(हृदै) भो प्रमेवर सहचरी सुनहु विलस वासा नई ।<sup>1</sup> (118)

क्लम रसिक - गौड़ीय सम्प्रदाय के निकुंज लोला गायकों में क्लम रसिक का शीर्षस्थ स्थान है । इन्होंने अपनी वाणी में उन सभी विषयों का समावेश किया है जो इस साधना के आवश्यक अंग हैं और उसके स्वयं निर्धारण के लिए अनिवार्य है । ग्रंथ का प्रारम्भ हिंडोला कर्ण से होता है जो बड़ी हृदय ग्राही है, फिर पवित्र, संधि दशहरा, दिवली, होली, बसंत, फूलडोल, चंदनयात्रा, रथयात्रा, रास की संधि, गुलाव कुंज की संधि, जलक्रीड़ा, महल की संधि, सुरतोल्लास प्रभृति सभी विषयों का कर्ण है । ब्रजभाषा में इनके कर्ण पद्यति अनुठी है । रास के कर्ण भी उत्कर्षपूर्ण है । विवाह लोला का कर्ण इन्होंने नहीं किया क्योंकि इस सम्प्रदाय में परकीया भाव को विशेषता है । सुरतोल्लास से निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं :-

श्याम हरी कुंज पस्यो, लस्यो कंचुकी जानि ।

पठ्यो पिय काढ़न धार्यो, गस्यो पसनि में पानि (13)

रोम रोम पुलकित चकित थकित नैन सुझ भार ।

निराझि निराझि ललन वदन, कात हिये की हार (14)

रतिस केलि दुहुं मिलिवाढ़ी, रस चसकनि में रसकनि गाढ़ी ।

ललच ललकि वसी पिय माहों, रोझि रोझि क्यों हूं न अघाहों ।

मन मन हुलसनि सुलसनि सोहे, विहसनि चौप चौगुनो मोहे ।

उनमद जोवन मद मतवारी, हंसि हंसि हंसत हंसि नहीं हारी ॥

लटकि लटकि लपटति अंकनि में, मचकति लचकति दुहुं लंकनि में । (20)

रहे रहनि को राखि के, आनंद की सहचोर ।

विवस विवसता बहे गई, लई सुझनि की पौर (21) ।

कल्लभ रसिक गदाधर भट्ट के द्वितीय पुत्र थे । उनके बड़े भाई का नाम रसिकोत्तम था । इनका कविता काल 1650 के आस पास होना चाहिये ।<sup>2</sup>

कल्लभ सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय को रूद्र अथवा विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के नाम से भी अभिहित किया जाता है । इसके मूल प्रवर्तक श्री विष्णु स्वामी माने जाते हैं । जिनके देश काल और कार्यकलापों के सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं है । प्रसिद्धि है कि कल्लभाचार्य जी के आकस्मिक - काल तक विष्णु स्वामी मत के 700 आचार्य हो चुके थे ऐसे दशा में वे इतने प्राचीन ठहरेंगे जो किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते ।<sup>3</sup> नामादास जो ने विष्णु स्वामी को अपने भक्तमाल में प्रशस्ति लिखते हुए उन्हें दाक्षिणात्य आचार्य माना है और नमदेव, त्रिलोचन पंत, जानदेव प्रभृति महाराष्ट्र सन्तों को उनकी शिष्य श्रृंखला परंपरा में दीक्षित कहा है । ये सभी सन्त निर्गुणोपासक हैं विष्णु स्वामी सगुणोपासक ऐसे दशा में ये उनके सम्प्रदाय में नहीं हो सकते । नामादासजी के इस उल्लेख से विष्णुस्वामी के अस्तित्व काल पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता ।<sup>4</sup>

1- कल्लभ रसिक जी की वाणी - वावा कृष्णदास, पृ० 56, बंद संख्या 13-21

2- ब्रज भाषा के कृष्ण कव्य में माधुर्य भक्ति - पृष्ठ 306

3- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय भाग 2 पृष्ठ 151

4- नाम त्रिलोचन शिष्य सूर ससि सहस्र उजगर । गिराणी उनहार, कव्य रचना प्रेमकार ॥

— नामाजी का भक्त माल कव्य सं० 48

फार्ग्युहार ने विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के दो मतों की चर्चा की है सूर काकिरौली में दूसरा कामवन में<sup>1</sup> मण्डारकर इसका संकलन करते हैं<sup>2</sup> । आचार्य कल्लभ ने विक्रम की 16वीं शताब्दी में इस मत का पुनर्गठन किया ।

कल्लभाचार्य जी का जन्म सं० 1535 में रायपुर जिले के चम्पारनगाँव में हुआ था । इनके पिता लक्ष्मण भट्ट थे और माता का नाम सल्लमणाल था । वे तैलंग ब्राह्मण थे । उनका काशी में सं० 1587 में देहावसान हुआ ।

शंकराचार्यजी के 'अद्वैत वाद' के संकलन में कल्लभाचार्य ने अपने 'शुद्धाद्वैत' मत की प्रतिष्ठा की । शंकर के अद्वैतवाद में ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ मया है अतः वहाँ मया की भी मान्यता है । रामानुजाचार्य का 'विशिष्टाद्वैत' सिद्धान्त अद्वैत है परन्तु विशिष्ट इस कारण कि चिन्मय मया और जड़ प्रकृति से विशिष्ट है । श्री कल्लभाचार्य के अनुसार श्री कृष्ण पर ब्रह्म हैं और समस्त धर्मों के आश्रय हैं । जीव ब्रह्म की चित् अंश होने से उसका उनसे अंश अंशों संबंध है जैसे अग्नि और चिंगारी का । जीव की शक्ति सोमित ब्रह्म की अनन्त है । जगत की कल्लभ परब्रह्म का शैतिक स्वस्व मानते हैं और मया की उनकी स्वस्व शक्ति जो सदैव उनका अनुगमन करती रहती है<sup>3</sup> उनका ब्रह्म मया से अलिप्त या शुद्ध है ।

कल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रकाशन में संस्कृत में कई ग्रंथों की रचना की जिनमें ब्रह्म सूत्र पर अस्तु-भाष्य, श्री मदभागवत की सुवोधिनी टीका, तत्त्वदोष निबन्ध और धोहरा ग्रंथ मुख्य हैं — उनके योग्य पुत्र गो० विठ्ठलनाथजी

---

1- An out line of the religious literature of India, J.N. Farquhar.

2- शैक्व्य वैष्णविक्य श्री मण्डारकर पृष्ठ 27-28

3- भागवत सम्प्रदाय - बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 372

ने श्रीगार-रस-मंडन, भक्ति निधि, निबंध प्रकारा टीका, सुबोधिनो टिप्पणी आदि ग्रंथ लिखे जिनसे सम्प्रदाय का स्वस्म ही विशेष स्पष्ट नहीं हुआ वरन् उसमें रामानुगा-भक्ति और प्रज के माधुर्य भाव का भी समावेश हुआ । डा० दीनदयाल गुप्त, डा० मुरारी-राम शर्मा, डा० सत्येन्द्र प्रभृति विद्वान् माधुर्य भाव को भक्ति के प्रवेश की गोड़ोय, राधा-कल्लम और स्वा० हरिदास जी की निकुंज-भावनापरक भक्ति का प्रभाव मानते हैं जिसका सूत्रपात गो० विठ्ठलनथ गोकुलनथ के समय में उनकी रसिकतमयी वृत्ति के परिणाम स्वस्म हुआ । फिर श्री आचार्य कल्लमा की विचारधारा में उस भक्ति के पूर्व संकेत अवश्य मिल जाते हैं । इस दिशा में उनके 'परिवृष्टक' एवं 'मधुराष्टक' विशेष उल्लेखनीय हैं । जिनमें मधुरोपासना का स्पष्ट संकेत है :-

कलिदोदभृतथास्तरामनुचरंती पशुपति ।  
 रहस्येका दृष्ट्वा नव सुभगवत्कीर्तिमुक्त्वा ।  
 दृढं नीवी ग्रीथं स्तपमति मृगक्षमा हठतरं ।  
 रति प्रादुर्भावी भवतु सततं श्री परिवृष्टे ॥<sup>2</sup>

और -

अधरं मधुरं वदनं मधुरं <sup>नयनं</sup> ब्रजश्री मधुरं हसितं मधुरं ।  
 हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलमधुरम्<sup>3</sup>

डा० दीनदयाल गुप्त 'वृहदस्तोत्रसंग्रह' जिनमें उक्त अष्टक संग्रहीत है-  
 की प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं है । अतः ये अभिमत संदिग्ध हो जाता है ।

कल्लमाचार्य जी ने केवल गोपियों की मधुर भाव को अधिकारिणी माना है । उन्होंने उनके 'अन्य पूर्वा' और 'अनन्यपूर्वा' दो वर्ग बतलाए हैं । 'अन्य पूर्वा' गोपियों का दूसरे गोपी से विवाह हो चुका है फिर भी वे श्री कृष्ण के स्म, गुण, माधुर्य पर अत्यंत हीकर लोकमयदा की तिलजिलि दे उनसे रमना की इच्छा है । 'अनन्यपूर्वा'

1- ~~ब्रजभाषा~~ ब्रजभाषा के कृष्ण कव्य में माधुर्य भक्ति पृष्ठ 399

2- वृहदस्तोत्र सारसंग्रह (परिवृष्टक) पृष्ठ 60

3- वही वही (मधुराष्टक) पृष्ठ 62

गीपियां विवाहित नहीं, कुमारिकाएँ हैं और पूर्वागवशात् श्री कृष्ण की प्राप्ति के लिए व्रत अनुष्ठानों में निरत हैं। इस प्रकार सम्प्रदाय में परकीया और स्वकीया दोनों प्रकार की माधुर्य भक्ति ग्राह्य है। श्रीमद्भागवत के रास प्रसंग की व्याख्या करते हुए आचार्य क्लृप्त ने कान्ता भाव से भक्ति की महत्ता स्वीकार की है उनका मत है भगवान् के साथ संलग्न, उनका दर्शन सम्मिलन आलिंगन, स्पर्श, अधामृत पान, रमण करने और उनके पास रहने की भावना यही सब मानव जीवन का प्राप्य है और इसके अतिरिक्त मोक्ष कुछ नहीं है 'यह सब उनकी माधुर्य भाव पीडन की प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। डा० दीनदयाल गुप्ता का कथन है कि 'आचार्य जो ने पहले माहात्म्य ज्ञान पूर्वक वास्तव्य भक्ति का ही प्रचार किया था। बाद की उन्होंने अपने उत्तर जीवन काल में तथा उनके उत्तराधिकारी गो० विठ्ठलनथ जो ने किशोर कृष्ण की युगल लीलाओं का तथा युगल स्वस्व की उपासना विधि का भी समावेश अपनी भक्ति पद्धति में कर लिया'। - अगे चल कर गो० विठ्ठलनथ ने इस सम्प्रदाय में माधुर्य भक्ति के प्रवर्तन और प्रसार में अच्छा योगदान किया। उन्होंने श्रीर रस मण्डन, निकुंज विलास, राधा प्रार्थना चतुश्लोकी, स्वामिनी अष्टक, 'स्वामिनी-स्तोत्र' प्रभृति ग्रंथों की रचना की जिनमें प्रायः श्री राधाकृष्ण की प्रेमपूर्ण लीलाओं का वर्णन हुआ है। सुरदास, नंददास परमानंददास आदि प्रायः सभी अष्टकपी कवियों को इस भावना ने प्रभावित किया और उन्होंने निकुंज भावना पूर्ण सुंदर पद रचे। इस कारण यह कहना कि क्लृप्त सम्प्रदाय में केवल शान्त, दस्य, सख्य और वास्तव्य रति को साधना है उचित नहीं है।

क्लृप्त सम्प्रदाय में निमृत् निकुंज विलासी वृन्दावन को कान्तिमान बनाने वाले नील और पीत वस्त्रों से सुशोभित श्री राधा कृष्ण की उपासना को ज्ञाती है।<sup>2</sup> और उनका नित्य नवल किशोर लीला परायण स्म ही स्मरण की वस्तु है। प्रेमलीलाओं के विस्तार के लिए ही उन्होंने भिन्न शरीर धारण किए हैं अन्यथा वे वास्तव में अभिन्न हैं।

1- अष्टकपी और क्लृप्त सम्प्रदाय डा० दीनदयाल गुप्त पृ० 527

2- गोस्वामी विठ्ठलनथ कृत निकुंज विलास- द्रुतकनक और सिन्धु में

प्रान इक दूवै देह कोन्है, भक्ति प्रीति प्रकास ।  
सुर स्वामी स्वामिनी मिलि करत रंग विलास ।<sup>1</sup>

श्री कृष्ण पुरुष हैं राधा प्रकृति हैं अतः दोनों अभिन्न हैं क्योंकि प्रकृति और पुरुष में अमेद भाव है -

ब्रजहिं वसै आपुहि विसरायो ।  
प्रकृति पुरुष सकहि करि आनहु वातनि भेद करायो ।<sup>2</sup>

सिद्धान्ततः राधा श्री कृष्ण की आनन्ददात्मिका शक्ति हैं परन्तु लीला परिकेस में वे अनन्यपूर्वा स्वकीया नायिका हैं । कहीं कहीं उनका विवाह होने के कान भी हैं । इस सम्बन्ध में सुर की निम्न पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं ।

जको स्याम वरनत हैं रास ।  
हे गंधर्व विवाह, कित दे सुनो विविधविलास ।<sup>3</sup>

नंद दास ने स्याम सगर्भ लिखी है उससे भी राधा का स्वकीयत्व सिद्ध होता है ।

देखि दीउ को प्रेम जु, कीरति मन मुसिकार्ह ।  
जोरी जुग जुग जियो, विधाता मली बनार्ह ॥<sup>4</sup>

सुरदास प्रभृति कवियों की रचनओं में राधा सर्वांग सुन्दरी, श्री कृष्ण की परम भक्त, अनन्त सौंदर्य और प्रमीद उपादानों से संयुक्ता चित्रित की गई है । यही कारण है कि श्री कृष्ण बहुनायक होते हुए भी श्री राधा के अनुगामी हैं ।

राधा नंद नंदन अनुरागी  
भय चिंता हिरदै नहिं सको स्याम रंग रस पागी ।

----- ह -----

- 1- सुरदास पृष्ठ 635 सं० श्री नंददुलारे वाजपेयी
- 2- वही पृष्ठ 84। वही
- 3- सुरदास पृष्ठ 877 - नंद दुलारे वाजपेयी ।
- 4- नंददास ग्रंथावली - सं० ब्रजानंददास ।

हृदय चून-रंग पय पानी ज्यों दुविधा दुहुँ को भागो ।  
तन मन प्रान समर्थन केन्हों, अंग अंग रति लगी ।<sup>1</sup>

गोपियाँ आदि रस शक्ति रक्षा की स्वस्वभूता हैं । सिद्ध शक्ति रक्षा और कृष्ण का सम्बन्ध चदिनी और चन्द्रमा का है । गोपियाँ उस चदिनी को प्रसार देने वाली किरणों हैं ।<sup>2</sup> क्लृप्त सम्प्रदाय में श्री रक्षा के दो रूप हैं (1) ईश्वर की आनन्द कारिणी शक्ति स्वस्या (2) कान्ताभाव से भगवान् की अन्य भक्ति करने वाली । उनको स्वस्व माता गोपियाँ प्रेम की धुजा हैं जिन्होंने जग के उपहास की तनिक भी चिन्ता न करके सर्वस्व भगवान् के अर्पण कर दिया है । नंद दास कहते हैं -

प्रेमधुजा रस खपिनी उपजावनि सुख पुंज ।  
सुंदर स्याम विलासिनी, नव कृदावन कुंज ।<sup>3</sup>

गोपियों के रूप में सम्प्रदाय के उपसक्त का रूप स्पष्ट होता है ।

श्री मदभागवत के रस प्रकरण की व्याख्या करते हुए श्री क्लृप्ताचार्यजी ने व्यक्त किया है कि भगवान् की उपसना विविध भावों से संभव है परन्तु उपसक्त को वही भाव ग्रहण करना चाहिये जिसमें उसका देहाभ्यास हो सके अर्थात् जिसमें अपनी देह की सुधबुध मल सके ।<sup>4</sup> काम का भाव ऐसा है जिसमें देह-ज्ञान नहीं रहता इस कारण गोपी भाव से भगवान् की आराधना करना उनको शराणति प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है । महाकवि सुरदास ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है-

भजै जिहि भाव जो, मिलै हरि ताहि त्यों, भेदभेदा नहिं पुस्त्य नारि ।  
सुर प्रभु स्याम ब्रजवध, आतुर काम, मिलीं वन-धाम गिरिराजधारो ।<sup>5</sup>

श्री नंददास ने इसी भाव के समर्थन में उज्ज्वल रस के वकिपन की ओर ध्यान-कर्षण किया है । यह अन्य सभी रसों से अधिक आनंददक्षी है ।

1- सुरसगर नन्ददुलारि वाजपेयी पृष्ठ 911

2- 'भवशिरामणि महाकवि सुरदास', नलिनी मोहन सन्याल

3- नंददास ग्रंथावली, भ्रमरगीत पद । पृष्ठ 42

4- तादृशीं भावनां कुर्यात् काम क्रोधादि निर्भया, पूर्वप्रपंच विलयी, यथा ज्ञाने यथा यतः ।  
—भावावत 10-29-15 सुवीधनी टीका ।

5- सुरसगर पृष्ठ 609

उज्ज्वल रस को यह सुभाव बँकी ऋवि ढावे ।  
 बँक चहनि पुनि कहन बँक अति रसहिं बढ़ावे ।<sup>1</sup>

यह मधुर भाव की उपासना की हो और संकेत है ।

अन्य सम्प्रदायों की भाँति बल्लभ सम्प्रदाय में भी प्रेम की विशुद्धता पर बल है । श्री कृष्ण विध्यक काम यहाँ लौकिक काम से कोसी दूर माना गया है । उसके आलम्बन श्री कृष्ण होने से सर्वथा ग्राह्य है । प्रेम में अत्मसमर्पण है इस कारण उपासक को लोकलज्ज की तनिक भी चिंता नहीं रहती । प्रेम लीलछों का दर्शन श्रवण और कर्ण इस सम्प्रदाय की मुख्य उपासना है । प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का विशद वर्णन कवियों ने किया है । नंददास ने विरह को प्रेम का 'कलकाव' कहा है ।<sup>2</sup> जिसमें देहाध्यास ही जाता है और प्राणी लौकिक दुःख सुख को भूल जाता है ।

बल्लभ सम्प्रदाय में निम्बार्क, राधाकल्लभ, स्वा० हरिदास आदि सम्प्रदायों की गोपी भाव की साधना पर बल दिया गया है । यहाँ गोपी भाव सखी भाव का ही प्रतीक है । इस भाव में भक्त की सिद्धावस्था होती है अतः भगवान् की मधुर लीलछों के सङ्गात् दर्शन होते हैं और वह उन लीलछोंमें सेवा समर्पण के रूप में योगदान करता है । इस भाव की प्राप्ति में कृन्दावन वास और उसी रस की उपासना सबसे अधिक उपयोगी है - इस प्रकार बल्लभ सम्प्रदाय पर अन्य सम्प्रदायों की रसोपासना का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है ।

लगे जो कृन्दावन को रंग ।

देह अभिमान सबै मिटि जैहे अस विषयन को संग ।

सखी भाव सहज होय सजनी पुन्य भाव होय मंग ।

श्री राधावर सेवित सुमिरत उपजत लहर तरंग ।

मन को मेल सबै हुटि जैहे, मनसा होय अपंग ।

परमानंद स्वामी, गुज गावत मिटि गए कोटि अनी ।<sup>3</sup>

नंददास निरुंज लाला के परम उपासक हैं वे कहते हैं :-

1-नंददास ग्रंथावली, रास पंचाध्यायी प्रथम अध्याय ।

2- कृष्ण विरह नहीं विरह प्रेम उज्ज्वलन कहावे ।

निपट परम सुख-रूप इतर सब दुःख विसरावे ।

—नंददास ग्रंथावली, प्रजातन्त्र-सिद्धान्त पंचाध्यायी 70

3- परमानंद सागर स० डा० गोवर्धन नथ शुक्ल पृ० 94



जगन्नाथक जगदीस पियारी, जगतजननि जगरानी  
नित विहार गोपाल लाल सग, वृन्दावन रजधानी ।<sup>1</sup>

### क्लृप्त सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कवि -

सूरदास - महाकवि सूरदास श्री क्लृप्तभाचार्य जी के शिष्य थे । उनका जीवन कृत विवादग्रस्त है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से सन् 1523 ई० के आस पास वै क्लृप्तभाचार्य जी के शरणगत हुए और तभी से विनय और निराश्रयता के स्थान पर उन्होंने लोलगान प्रारम्भ किया । अष्ट काप में उनका स्थान मूर्ध्ना पर है और सम्प्रदाय के उपास्य, उपासक और उपासना तत्त्वों की उनकी रचनाओं में सुंदर अभिव्यक्ति हुई है । सूरसगर, सूरसारावली, साहित्यलहरी उनके तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनमें सूरसगर सर्वप्रमुख रचना है ।<sup>2</sup> साहित्य लहरी को डा० द्विवेदी किसी अन्य भाट कवि की रचना मानते हैं । उसमें प्रक्षिप्त पदों का भी समावेश हुआ है । सूरसारावली सूरसगर की अनुक्रमिका जैसा ग्रंथ है परन्तु उसमें अनेक बाहरी विषयों का समावेश है अतः उसे सूरसगर की सूची नहीं कह सकते । सूरदासजी के ब्रजभाषा काव्य में विपुल रचना करके साहित्यिक परंपराओं का श्री गणेश करने वाले प्रथम कवि हैं । उनकी भाव्यजना अनूठी है, भाषा पर उनका अपूर्व अधिकार है, भाव चित्र खींचने की उनमें अनुपम शक्ति है और लीला गान में तो वे अद्वितीय हैं । उन्होंने विशेषतया भगवान् कृष्ण की वत्सल्य और सख्य रस मयी लीलाओं का गान किया है । शांत और दास्य के भी सम्यक अभिव्यक्ति हुई है परन्तु निकुंज की उपासना की क्लृप्त सम्प्रदाय में पोके से (गो० विट्ठलनथ जी के समय से) मान्यता बढ़ने के कारण माधुर्य भाव की उतनी विशेषता नहीं है । वत्सल्य रस की प्रतिष्ठा में वे संसार के प्रमुख कवियों में से हैं । सूर ने राधा के स्म में भक्त हृदय का जो चित्र खींचा है वह अपूर्व है । सूरसारावली सूरदास की लोलगान विषयक रचना है । इसमें भगवान् की निर्गुण सगुण सभी लीलाओं का समावेश है वृन्दावन की दिव्य कुंजी में निकुंज विहार करते हुए प्रियाप्रियतम की सुरति का रहस्य इस प्रकार स्पष्ट किया है—

1- नंददास ग्रंथावली, स्म मंजरी, पद 153

2- हिन्दी साहित्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १६-१७

सुरति समुद्र मगन दंपति, रस झूलत अति सुख कैल ।  
निरवधि रमन, अपरिमित अच्युत, मनुज मयि बहु खेल (981)

x                      x                      x                      x

कृन्दावन हरि यह विधि क्लेशत, सदा राधि का संग ।  
मीरन निसा कवहुं जानत हे, सदा रहत इक रंग (1096)  
सदा एक रस एक अलङ्कित, आदि अनादि अनूप ।  
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, विहरत जुगल सख्य (1099)  
सकल तत्व ब्रह्मण्ड देव, पुन मया सब विधि काल ।  
प्रकृति-पुष्पा श्री-पतिनारायन, सबहिं अस गोपाल ॥

यह निश्चित है कि सुर को भक्त भावना का उपसंहार शक्ति (विनय पद गायन) से प्रारम्भ होकर सखी भाव की एक रस अविरल माधुरी में हुआ ।

नंददास -- भाषा माधुरी, उन्नित चातुर्य और सुकोमल पदावली की दृष्टि से नंददास का स्थान अष्ट ढापी कवियों में मूर्ध्नि पर है । डा० दीन दयाल गुप्त ने वार्ता साहित्य, भक्तमाल, गोसाईचरित आदि के आधार पर इनकी जीवनी प्रस्तुत की है उसके अनुसार ये रामपुर के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे । दो सौ वाक्य वैष्णवों की वार्ता में उन्हें गो० तुलसीदास का भाई कहा गया है । इन्होंने गो० विट्ठलनथ जो से क्लृप्त सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी । नंददास की रचनाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे गम्भीर विद्वान और श्रेष्ठ कवि थे ।<sup>1</sup> श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध का भाषावतरण उनके प्रकाश पांडित्य का प्रमाण है । डा० गुप्त ने इनका जन्म संवत् 1590 वि० एवं मृत्यु संवत् 1643 के लगभग माना है । डा० रत्नकुमारी ने उनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 26 वतलाई है ।<sup>3</sup> इनमें मुख्य रचनाएँ रासपंचादश्या, सिद्धान्तपंचादश्या, अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, स्ममंजरी, रसमंजरी, विरह मंजरी, भवरा गीत, गोवर्धन लीला, श्याम सगई, स्मिणी मंगल, सुदामा चरित और भाषा दशम स्कंध हैं ।

1- अष्टहाप और क्लृप्त सम्प्रदाय - पृष्ठ 256

2- वही वही - पृष्ठ 324

3- हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, डा० रत्न कुमारी पृष्ठ 105

‘‘रास पंचाध्यायी’’ का आधार श्री मदभगवत का रास प्रकरण है, सिद्धान्त पंचाध्यायी में भक्ति सिद्धान्तों का कर्नि है ‘‘स्वमंजरी’’ में भक्ति प्रधान प्रेमकथा की अभिव्यक्ति है और ‘‘विरह मंजरी’’ तथा ‘‘भंवर गीत’’ में गोपियों के विरह वेदना का तोत्र अनुमति पूर्ण कर्नि है । ‘‘श्याम सगाई’’ और ‘‘पदयावली’’ में श्री राधाकृष्ण के प्रेम खेड़ों का बहुत सुंदर कर्नि उपलब्ध है । प्रेम के विविध रूपों और लोलजों की अभिव्यंजना उनका प्रमुख वर्णित विषय है । जो प्रभु निगम से अमम है और ‘‘नेति नेति’’ कह कर किसी वारापार नहीं है वे प्रेम से सर्वा निकट हैं । उनके आराध्य कृष्ण सुन्दर, अनंदधन सर्व रसिक हैं प्रेमा भक्ति के आलम्बन हैं । नंददास जो ने उन रसिक शारंगी के राधा के दूलाह, गोपियों के प्रियतम, निकुंज लोला के नयक और रास विहंग, फग, शूलन, दानलोला आदि की केलि खेड़ा विषयक अनेक सुंदर चित्र उपस्थित किये हैं ।

केलि करि प्यारी पिय पोछे वास चदिनी में,  
नेह सौ निपट गए जीवन के जोस में,  
अगिया दारकि गई मानीं प्रात देखिते को,  
चौच काढ़ि चक्रवाक काम-तार रोस में ।  
आरस सौ मोर बहि दोऊ कुच गहे पिय,  
रति के झिलोना मानी टापि दिस ओस में ।  
रस के सरोवर में ‘नंददास’ देखे आलो,  
चकई के होना बंधकचन के कोसमें ।<sup>1</sup>

रास कर्नि में नंददास विशेष कुशल हैं । यहाँ कृष्ण, राधा और गोपियों के रस कवि बहुत हो सरे रस में निकल कर आई है ।

मृदुल मधुर टंकार तल झंकार मिली धुनि ।  
मधुर गंज को तार भंवर गुजार रले पुनि ।  
तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कारतारन की ।  
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की ।

सविरी पिय के संग लसत यो ब्रज की बाला ।

जनु यन मंडल मंजुल विलसित दामिनि माला

कवि सौ निरतन लटकनि मटकनि मंडल गेलनि ।

कोटि अमृत सम मुसकनि मंजुल तथेई बोलनि ।<sup>1</sup>

उक्त पद में शब्दानुप्रास को संकेत से कवि ने ऐसे वातावरण की सृष्टि का प्रयास किया है कि पाठक अभिभूत हो जाता है शब्द ध्वनि और अर्थ गम्भीर्य में मानी होड़ से लगे है । नंददास की भाषा प्रौढ़ और मार्जित है उनको तर्क शैली और उक्ति प्रणाली अनुपम है यही कारण है कि उनका काव्य सीधे हृदय को स्पर्श करता है । कवि शक्ति में तो और कवि गढ़िया नंददास जड़िया वाली प्रसिद्ध परंपरागत है । पुष्टिमार्ग में सिद्धान्त और विचार पद्धति का उन्होंने काव्य में सुन्दरता से समन्वय किया है । प्रेमलक्षणाभक्ति के साधकोंमें उनका उच्च स्थान है ।

परमानंददास — क्लृप्त सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार परमानंद दास का अष्ट सखाओं में बहुत उच्च स्थान है। सूरदास जो की भाँति इनकी भी पुष्टि मार्ग का सगर कहा गया है ।<sup>2</sup> 'अष्टकाप पदावली' के सम्पादक डा० सोमनथ ने इनके काव्य और भावना पर टिप्पणी करते हुए कहा है :-

“अभी तक तो सेहरा सूर के सर पर है । संभव है परमानंददास जी का काव्य संग्रह प्राप्त हो जाने पर विद्वानों को निर्णय करने में कुछ कठिनता हो<sup>3</sup>

डा० गोवर्धन नथ शुक्ल ने अपने शोध-प्रबंध 'परमानंददास और क्लृप्त सम्प्रदाय' में उनको कन्नौज निवासी का कन्यकुब्ज ब्राह्मण माना है । उनके अनुसार उनका जन्म संवत् 1550 वि० है और उपस्थिति काल संवत् 1607 तक है ।<sup>4</sup>

1- नंद दास शुक्ल पृष्ठ 176

2- चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ० 837 सं० ब्यारिका दास पारिभा

3- अष्ट पदावली की भूमिका, डा० सोमनथ पृष्ठ 3

4- परमानंददास और क्लृप्त सम्प्रदाय- डा० गोवर्धननथ शुक्ल पृ० 56-57

वै बहुविद, बहुश्रुत सर्व विद्या सम्पन्न थे । कव्य रचना नैपुण्य उनका वैशिष्ट्य था । इनके पदों के सौष्ठव, अभिव्यंजना शैली और शब्दावली और भावतन्मयता की दृष्टि से वे उच्च कोटि के साधक, मनस्वी भक्त और साहित्यकार सिद्ध होते हैं ।

परमानंद की भक्ति भावना में गोपी भाव की प्रधानता है जिसके दो प्रमुख तत्व स्वस्मा सक्ति और लीलासक्ति हैं । गोपियों को उन्होंने 'प्रेम की भुजा' कहा है । स्वस्मा सक्ति उनके काव्य में पद पद पर मिलती है । 'भुवन मोहन भगवान के दिव्य स्वस्म, उनकी बंकी झंकी और निराली अदा में कवि शिक्षान्त निमज्जित हो गया है । उसने उनकी लोकोत्तर दिव्य सुधमा का अन्तराल में प्रत्यक्ष अनुभव किया है।'<sup>1</sup>

परमानंद दास जो ने अपने सगर में श्रीमद्भागवत की निरोधा फल स्य लीलाओं का कर्ण नहीं किया । अतः अपनी अभिव्यक्ति और उक्ति कथन में वे पूर्ण स्वतंत्र रहे हैं और उनकी <sup>अति</sup> बहुत रमो है । उन्होंने जिन लीलाओं की सर्वाध्या प्रेम पूर्ण और लोक मंगलकारिणी समझा है उनका ही विरोध कर्ण किया है शेष को स्पर्श करके ढीढ़ दिया है । बल लीला, दधिलीला मञ्जन लीला इसी प्रकार की है । इनमें उन्होंने महाप्रभु के वचनों का सर्वाध्या अनुसरण किया है । राधा, गोपी, यमुना, <sup>सुरली</sup> मुञ्जी, रास गोकुल, कृदावन सम्बन्धी उनकी मान्यताएँ वही है जो महाप्रभु की थीं । परमानंदसगर की बल लीला विवृत्ति की विरोध प्रसिद्धि है । संयोग प्रेम के लीला कर्ण में परमानंददास बड़े सिद्ध हस्त हैं । निकुंज-लीला विषयक उन्होंने यथेष्ट पद लिखे हैं ।

शोभित नव कुंजनि की कवि भारी ।  
अद्भुत स्य तमसि सौ लपटो कनक वैलि सुकुमारी ।  
वदन सरीज उहलहे लोचन निरखि कवी सुझकारी ।  
परमानंद प्रभु भक्त मधुप हैं श्री वृषभानु दुलारी ।<sup>2</sup>

1- सुन्दर मुझ को वलिवलि जऊँ ।

लखन निधि, गुननिधि सोभा निधि देखि देखि जीवत सब मारुँ ।

परमानंद दास और कलम सम्प्रदाय पृष्ठ 164

2- परमानंददास पद संग्रह अष्टकाप और कलम सम्प्रदाय पृष्ठ 712 पर उद्धृत ।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कलम सम्प्रदाय में निकुंज रस की प्रतिष्ठा विट्ठलनथ जी के समय से हुई थी अतः उनके सभी शिष्य अष्ट सभाओं ने इस रस में निमज्जन करते हुए काव्य रचना की है । उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

चतुर्भुजदास- पौढ़े प्यारो राधिका के संग ।  
नव किशोर और नव किशोरी गौर श्यामल अंग ।  
स्वच्छ सैज सुगन्ध सीतल रतन जटित पर्यंक ।  
दरान झहित वदन वीरी भरी रति रस रंग ।  
उपजी चतुर्भुज दास दुहुं दिशि प्रेम सिन्धु तरंग ।  
रसिकनो अरु रसिक गिरधर मुदित जीत अनंग ।<sup>1</sup>

कीतस्वामी- सुभग स्याम के अंगे राधा विराजे ।  
नैन आलस भरी सकल निसि सुझकरी भुजधरी स्याम लाजे ।  
मनक कंचन तनी पीक दृग सौं सनी अति हो रस में भ्राजे ।<sup>2</sup>  
कीतस्वामी गिरिवरु के मन वसी मन ही मन हंसी सुझ दियो अनै ।

गंगाबाई- झूलो तो सुरत हिंदोरे झुलाऊं ।  
मरुवे मयार करौं हित के चित तन मन झीम बनऊं ।।  
x                      x                      x                      x  
श्री विट्ठल गिरिधरन झुलाऊं जो इकले करि पाऊं<sup>3</sup>

राधाकलम सम्प्रदाय -- राधाकलम सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी हितहरिकृष्ण काव्यकित्त्व अन्य सम्प्रदायों के संस्थापकों से थोड़ा भिन्न है । अन्य सभी सम्प्रदायों (चतुः सम्प्रदायों) में प्रधानत्रयी की मान्यता है और ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या करके अपने दार्शनिक सिद्धान्त का प्रयत्न देखा जाता है । गो० हितहरिकृष्ण ने उस पद्धति का अनुगमन करना आवश्यक नहीं समझा और न किसी दार्शनिक वाद की ही स्थापना की ।

1, 2, 3 ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति - पृष्ठ 423, 430 व 433 पर उद्धृत

हृदय की रस-स्निग्ध भावनाओं की सहज स्वीकृति और अभिव्यक्ति ही इस सम्प्रदाय के भक्ति-सिद्धान्त की नींव और रसोपासना का आधार है ।<sup>1</sup>

गो० हितहरिकृष्ण का जन्म सं० 1559 वि०मद्युरा के बाद ग्राम में माना जाता है । इसके प्रमाण में श्री भगवत मुद्रित कृत रसिक माला के निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं :-

पंद्रह सौ उनसठ संवत् सर, वैशाखी सुदि व्यास सोमवार ।

तहाँ प्रगटे हाकै हित, रसिक मुकुट मनिमाल ।

कर्म जान छहिन करत, प्रेम भक्ति प्रतिपाल ।<sup>2</sup>

हितहरिकृष्ण देववन्द जि० सहारनपुर के निवासी थे पहले यादव और फिर निम्बार्क सम्प्रदाय में सम्मिलित थे परन्तु कृदावनेश्वरी की प्रेरणा से कृदावन आ गए । हितचरित्र के अनुसार सं० 1591 में उन्होंने श्री राधाक्लम जो का पाटोत्पन्न किया और उनके नाम पर सम्प्रदाय की स्थापना का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ कर दिया । कलिन्यास में इस सम्प्रदाय के गोस्वामी एवं विरक्त शिष्यों ने 'सिद्धाद्वैत' दार्शनिक मत की स्थापना और वेदान्त सूत्रों पर भाष्य तैयार करके इस सम्प्रदाय की वैष्णवी के चतुःसम्प्रदाय की कोटि में लाने का प्रयास किया परन्तु यह प्रयास लोक मान्यता प्राप्त न कर पड़ा । डा० विजयेन्द्र स्नातक ने 'सिद्धाद्वैत' का विश्लेषण करते हुए लिखा है 'सिद्ध है अद्वैत, जिसमें या जहाँ वह 'सिद्धाद्वैत' अर्थात् राधाक्लम सम्प्रदाय में श्री राधा और श्री कृष्ण का अद्वैत स्वरूप सिद्ध है, उसे सिद्ध करने के लिए माया आदि कारणों के निराकरण की प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती'<sup>3</sup> परन्तु यह विश्लेषण भी सार्वभौम स्तर से स्वीकार नहीं जा सका ।

इस सम्प्रदाय में माधुर्य भक्ति की विशेषता है जिसकी केन्द्र बिन्दु श्री राधा हैं । राधा भीम्य है श्री कृष्ण भीक्षता है । वे दोनों ही रस स्वस्म्य हैं - प्रेम की मूर्ति हैं । सहचरी गण श्री राधा की स्वस्म्य शक्ति हैं श्री कृष्ण द्वारा राधा का उपभोग दर्शन ही उनका भीम्य है । कृदावन इस उपभोग की - रस विस्तार की - लीला भूमि है । राधाक्लम सम्प्रदाय का उपासना सिद्धान्त 'नित्य विहार' कहलाता है । इसके

1- राधाक्लम सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० 126

2- वही वही पृष्ठ 311

3- राधाक्लम सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० 127

श्री राधा, श्रीकृष्ण, सहचरीगण और श्री वृन्दावन चार विधायक तत्व हैं ।

गौर श्याम सहचरि विपिन, सम्पति नित्य विहार ।

अंतरंग सो प्रगट है, हित के नैन निहार ॥<sup>1</sup>

श्री राधा आनंद रूप हैं, और श्रीकृष्ण उस आनंद का अनुभव कराने वाले हैं अतः उन दोनों का सम्मिलित रूप ही सम्प्रदाय का आराध्य है । उनके रंग, रुचि, स्नेह, शील स्वभाव सब एक से हैं । केवल प्रेमाभिव्यंजना के कारण उन्होंने दो शरीर धारण किये हैं ।

एक रंग, रुचि, एक वय, एकै भांति स्नेह ।

एकै शील सुभाव मृदु, रस के हित दवै देह ॥<sup>2</sup>

'नित्य विहार' के सम्बन्ध में हम विस्तार से पूर्व में विचार कर चुके हैं ।<sup>3</sup> डा० नारायणदत्त शर्मा ने उसका स्वस्व स्पष्ट करते हुए लिखा है 'नित्य विहार श्री राधामाधव की अनन्त आनन्दमयी अलौकिक सुखपूर्ण सतत शाश्वत रति क्रीड़ा है जो नित्य वृन्दावन धाम में दिव्य कंचन मयी भूमि विमल वृक्षों से आच्छादित, सुरंग पत्र - पुष्प फल परिवेष्टित के कनाकार यमुना कुलवर्तिनी सुरभित निकुंजों में अनवरत रूप से चलती रहती है । इसमें किसी प्रकार का वाह्य अथवा आंतरिक विक्षेप नहीं होता । यह सभी वेदतंत्रों का मनोहर मंत्र है, अतः सहचरी वर्ग का आनन्द कल्याण साधन है । सहचरी सभी जीवात्माएँ निकुंज रन्ध्रों से इस नित्य विहार का दर्शन करती रहती हैं । उनके कल्याण के लिए ही नित्य विहार का आयोजन है । नित्य विहार श्री श्यामश्याम के अप्राकृत प्रेम का परिणाम है, वह काम से कीसों दूर है । तात्त्विक दृष्टि से श्री राधामाधव उस आदि अनादि, एक

1- श्री जगन्नीलास कृत सुवीथिनी, पृष्ठ 2

2- भुवदास की वयालीस जीला - रति मंजरी जीला 220

3- इस निबंध की पृष्ठ संख्या - 220.



रस पर ब्रह्म स्वल्प के युगल विग्रह रूप हैं । नित्यविहार के लिए ही वे युगल स्वल्प धारण करते हैं, अन्यथा वे एक ही हैं । सहचरी वृन्द भी उन्हीं पर ब्रह्म की अंशभूत हैं परन्तु प्राकृत विकृति के कारण उनसे भिन्न प्रतीत होती हैं । प्रिय-प्रियतम के समस्त आनंद भोग सहचरी जन की प्रसन्ना के लिए हैं, अतः नित्य विहार निजी सुख साधना के लिए नहीं वरन् परात्मतृप्ति के लिए है । लौकिक रति में नायक अपना सुख चाहता है और नायिका अपना, परन्तु नित्य विहार की स्थिति सर्वथा भिन्न है । यहाँ विहार करते हैं श्री राधामाधव और तृप्ति होती है सहचरी वर्ग की । इस प्रकार यह अनादि और नित्य संयोग ब्रीड़ा होते हुए भी सर्वथा पावन और श्लाघ्य है । नित्य विहार में श्री श्यामश्याम का नित्य किशोर रूप ही ग्राह्य है । किशोरी जी का यह रूप उनकी अवस्था का परिचायक है न कि उनके दाम्पत्य भाव का । नित्य विहार में उनका स्वकीया भाव गृहीत है ।<sup>2</sup> वृन्दावन के सभी रसिक सम्प्रदाय निम्बार्क, राधाबल्लभ, रचा-हरिदास, जलित सम्प्रदाय नित्य विहार रस के उपासक हैं । राधाबल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी इसे अपने सम्प्रदाय की उद्भावना कहते हैं और उनकी दृढ़ एवं निश्चित धारणा है कि यह गूढ़ रस तीन तात्त्विक साधना उनके अनुकरण पर अन्य सम्प्रदायों में प्रसारित हुई है । परन्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है जिस पर हम पूर्व में विस्तार से विचार कर चुके हैं ।<sup>3</sup>

राधाबल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धान्त है 'यत्किंचिददृश्यते सृष्टौ सर्वं हितमयं विद्'; अर्थात् सृष्टि में जो कुछ भी दिखाई देता है उसे हित अर्थात् प्रेम मय जानो । श्री राधा प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं अतः इस सम्प्रदाय में श्रीराधा की प्रधानता है । श्री राधाचरण जी वंदना और राधाकृष्ण की केलिकुंज की चाकरी ही राधाबल्लभ साधकों का परम कर्तव्य है<sup>4</sup> पुष्टिमार्ग के 'पुष्टितत्त्व' की भांति इस सम्प्रदाय में 'हित तत्त्व' की अन्तर्व्याप्ति है । इसे परम-प्रेम कहते हैं । जो परम रहस्यात्मक भी है ।

1- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि -

डा० नारायणदत्तशर्मा पृ० 128-129

2- वही वही पृ० 130

3- इस निबंध की पृष्ठ संख्या - 22५

4- नाभादास जी का भक्तमाल कृष्ण संख्या 90

राधावल्लभ सिद्धान्तों का प्रतिपादन श्री हित हरिवंश जी के राधा सुधानिधि, स्फुटवर्णो और हित चौरासी ग्रंथों में पुत्र रूप से हुआ है। उसके विशद व्याख्याकार हैं श्री दामोदर दास (सेवक) हरिरामव्यास और श्री ध्रुवदास। सेवक वर्णो हित चौरासी की पूरक मानी जाती है।<sup>1</sup>

राधावल्लभ सम्प्रदाय के निकुंज लीला साहित्य के निर्मातृओं में गो० श्री हित हरि वंश, दामोदर दास सेवक, ध्रुवदास हरिरामव्यास, नेहीनगरीदास, चाचा हित वृन्दावनदास, प्रमुख हैं।

गो० हितहरिवंश - गो० हितहरिवंश का जन्म वि० सं० 1559 में मथुरा के बाद ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री व्यास मिश्र दिल्ली के बादशाह के यहाँ उच्च अधिकारी थे ऐसा डा० गियर्सन ने 'एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स' में लिखा है और राधावल्लभ भक्तभारत से इसकी पुष्टि होती है।<sup>2</sup> इनकी माता का नाम तारारानी था। इनका परिवार देववन में रहता था जहाँ हितहरिवंश जी की उत्तम शिक्षा मिली। वे बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। यथासमय उनका विवाह रुक्मिणीदेवी से हुआ और तीन पुत्र एवं एक पुत्री का जन्म हुआ। श्री राधाजी के स्वप्न निर्देशानुसार हितहरिवंश वृन्दावन चले आये। मार्ग में चिटथावर गाँव में एक ब्राह्मण ने अपनी दो कन्याएँ इन्हें दी और वहीं से श्री राधावल्लभलाल का विग्रह इन्हें प्राप्त हुआ। वृन्दावन में आकर इन्होंने सम्प्रदाय की सेवा भावना, उपासना प्रणाली भक्ती सेवा, भावना आदि का सुत्रपात किया। सं० 1609 में शरदपूर्णिमा की रात्रि को प्रिया प्रियतम की जंग कान्ति में सदेह लीन हो गए।<sup>3</sup> गो० हितहरिवंश, रचा, हरिदास और हरिरामव्यास 'हरिमयी' की वैष्णव भक्तों में उनकी रसिक मार्गी साधना के कारण बड़ी प्रसिद्धि राधासुधानिधि हितहरिवंश जी का राधा प्रशस्ति का उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसकी रचना संस्कृत श्लोकी में हुई है।

1- हिन्दी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप - विकास

डा० तपेश्वर नाथ पृष्ठ 302

2- श्री उत्तम दास कृत रसिकभारत से उद्धृत।

3- श्री हितभूत सिंधु - महंत द्वारकाधारा, रास मंडल वृन्दावन भूमिका।

ब्रजभाषा में उन्होंने 'स्फुट पदावली' और 'हितचौरासी' की रचना की है ।  
स्फुट पदावली में सम्प्रदाय के सिद्धान्त निरुपा के अतिरिक्त राधाकृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन है । हित चौरासी में इनकी माधुर्यभाव की लीलाओं का चिंतन है ।  
यह अंतरंग भावना से सम्बन्ध रखता है । इसमें राधा कृष्ण के अनन्य प्रेम, रास लीला, भक्तिभावना, नित्यविहार, प्रेम में मान, विरह आदि की स्थिति का प्रतिपादन है ।

श्री हितहरिवंश के सम्प्रदाय में श्री राधा प्रमुख आराध्या हैं परन्तु राधा बल्लभ होने के कारण श्री कृष्ण का स्थान भी कुछ कम नहीं है । इस प्रकार दोनों ही उपास्य रूप हैं । श्री राधा माधव के प्रेम में परसुखित्व की भावना की प्रमुखता है जिनकी प्रेमलीलाओं के माध्यम से सरस शब्दावली में अभिव्यक्त किया गया है ।  
इनमें पूर्वरंग, विहार, रास, नृत्य, झुला और सुरति माधुरी विशेष उल्लेखनीय है ।  
हितहरिवंश के अनुसार ये प्रेमलीलाएँ रसिकों के मन में प्रेमोद्रेक का माध्यम हैं, अतः उनके जीवन का आधार है । वृन्दावन वास, निष्काम बुद्धि, श्री राधाबल्लभ का ध्यान, सत्संग, सबसे प्रेम व्यवहार आदि साधन इस मार्ग साधक के लिए अनिवार्य हैं ।  
निकुंज रस परक भावों का चिंतन और लीला ध्यान का इनके सम्प्रदाय में विशेष महत्त्व है । अतः इन तत्त्वों की इनके काव्य में विशेष प्रतिपादन हुआ है ।

वृषभानुनंदिनी मधुर कल गावै ।

विकट औघर तल चर्वरी तल सौ, नंदनंदन मनसि मोद उपगवै ।

x                      x                      x                      x                      x                      x

निर्लसागर रभस, रहसि नागरि नवल, चंद्रवासी विविध भेदन जनवै ।

लोक विद्याविदित भाई अभिनय निपुण, श्रु विलासन मकर के तन नचवै ।

निविड कानन भवन बाहु रंजित छन, सरस अलाप सुख पुंज बरसवै ।

उभय संगम सिंधु, सुरत पूजन बंधु, द्रवत मकरंद हरिवंश अलि पावै ।<sup>१</sup>

दामोदर दास (सेवक) - गो० हितहरिवंश के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के विशद व्याख्याकार श्री दामोदर दास सेवक का जीवनवृत्त अंधकार में है । श्री भगवत मुदित, उत्तमदास प्रभृति साम्प्रदायिकों को इनका जीवन परिचय विस्तार से लिखा है परन्तु वह जीवनवृत्त न होकर प्रशस्ति मात्र है । भगवतमुदित के अनुसार इनका जन्म जबलपुर के निकट गढ़ा ग्राम में सं० 1577 में हुआ और मृत्यु सं० 1610 में । ये हितहरिवंश जी के अनन्य उपासक थे और उन्होंने स्वप्न में इन्हें 'राधामंत्र' की दीक्षा दी थी । कालान्तर में गो० हितहरिवंश जी के पुत्र श्री पनचन्द्र ने सम्प्रदाय में इनकी वाणी को सिद्धान्त ग्रंथ घोषित किया और उनकी स्फुटवाणी के साथ इसका मनन चिंतन साम्प्रदायिक साधना का अंग बन गया ।

भगवतमुदित ने लिखा है कि सेवक जी स्वभाव से रसिक वृत्ति के भक्त थे और अपने अंतरंग भक्तबंधु वतुर्भुज दास के साथ सत्संग और साधुसेवा में रत रहते थे । इन्हीं संस्कारों के फल स्वरूप उनकी सम्प्रदाय में प्रगाढ़ निष्ठा हो गई । उनकी वाणी 16 प्रकरणों में विभक्त है जिनमें श्री हितहरिवंश के यश, प्रताप, दृष्टाराधन, सह धर्मियों के कर्तव्य, रसरीति अनन्यरेक, ध्यान, सिद्धान्त आदि विषयों का समावेश है ।<sup>2</sup> एक तरह यह भी हरिवंश जी की 'हित चौरासी' और उनके अन्य ग्रंथों में प्रतिपादित विषयों की ओर संकेत करती हुई श्री राधाबल्लभ सम्प्रदाय के स्वरूप, निकुंज रस, तत्कालीन परिस्थितियों का विवेचन और उनमें हरिवंश जी के प्रादुर्भाव की आवश्यकता, उनके द्वारा जन जन का कल्याण, जास्तिक बुद्धि का संचार और उन्हें अवतार की मान्यता देने वाली रचना है । निकुंज लीला का इसमें साम्प्रदायिक भावना के अनुसार वर्णन हुआ है जिनमें सौंदर्य के सूक्ष्म उपादान और भावुकता की विशेषता है । इस ग्रंथ का प्रतिपादय निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि रूप रसिक देव कृत 'हरिव्यास यशामृत सागर' से ज्यों का त्यों मिलता है । दामोदर सेवक के जीवन का प्रमुख घटनाओं का भी रूप रसिक देव से साम्य है । हितमंगल में राधाबल्लभ सम्प्रदाय की विशेषताओं का संक्षिप्त रूप से वर्णन दृष्टव्य है -

1- राधाबल्लभ सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ 349

2- वही वही वही

जे जे श्री हरिवंश प्रकाशित सब दुनी ।  
 सारासार विवेकित कोविद बहु गुनी ॥  
 गुप्त रीति आचरण प्रकट सब जग दिये ।  
 ज्ञान, धर्म, व्रत, कर्म भक्ति किंकर किये ॥  
 भक्त हित जे शरण अयि दवन्द दोष नु सब करें ।  
 परम सुखद सुशील सुन्दर पारि स्वामि नियम धीनी ।  
 जे जे श्री हरिवंश प्रशंसित सब दुनी ।<sup>1</sup>

उपास्य के रूप में सेवक जी ने श्यामश्याम का एक साथ स्मरण किया है और उनके सौंदर्य, प्रेमशीला, वृन्दावन धाम वर्णन, विहार वर्णन बहुत सजीव हैं । जहाँ तक गुण प्रशंसा और सिद्धान्त व्याख्या के प्रतिपादन का प्रश्न है उनमें सरसता का अभाव और काव्य रचना की दृष्टि से हीनता प्रत्यक्ष लक्षित होती है ।

ध्रुवदास — श्री हित ध्रुवदास की जीवन रेखा के चित्र बहुत स्पष्ट नहीं है । उन्होंने अपनी 'रसानंद लीला' का रचना काल वि० सं० 1650 बतलाया है और<sup>2</sup> 'रहस्य मंजरी' के 102 दोहे चौपाइयों की रचना का संवत् 1702 कहा है ।<sup>3</sup> यदि रसानंद लीला को उनकी प्रारम्भिक रचना मानीं तो उनका आविर्भाव और तिरोभाव क्रमशः सं० 1630 एवं 1700 के आस पास ठहरता है । ये जाति के कायस्थ और कां पारंपरा के नैष्ठिक भक्त थे । इनके पितामह हितहरिवंश जी के शिष्य थे और पिता श्री श्यामदास साधुसेवी वैष्णव थे वे देववन के निवासी थे ।<sup>4</sup> राधावल्लभ सम्प्रदाय की रस रीति, सिद्धान्त, लीला, वर्णन, निकुंज भावना, श्यामश्याम का नित्य विहार, कलिकाल निरूपण शृंगार वर्णन, भजन और भक्ति पद्धति नृत्य विलास,

1- सेवक वर्णी प्रकरण — 12 पद 3

2- संवत् सौहस्र से पंचासा, वरनत हित ध्रुव जुगल विलासा ।

3- 'सत्रह से दूँ उन् अरु, आहन पाखि उजियार'

4- ध्रुवदास बयालीस लीला पृष्ठ 189

45 'काइय कुल देववन वासी, पारंपराई अनन्य उपासी'

— भगवतमुदित कृत रसिक अनन्यभास

रास रस प्रियाजी का नामावली आदि सभी प्रमुख विषयों पर इन्होंने अपनी वणी में विस्तार से लिखा है । इनकी वणी 42 अध्यायों में वर्णित है जिन्हें 'लीला' शीर्षकों से अभिहित किया गया है । विभिन्न विषयों के समावेश की दृष्टि से इनकी वणी को यदि सम्प्रदाय का 'आकर ग्रंथ' कहें तो अनुचित न होगा । सिद्धान्त प्रतिपादन में ब्रज-भाषा गद्य का प्रयोग अधिक स्पष्टता लाने की दृष्टि से किया गया है शेष विषयों में रसीली, प्रसाद गुण मयी भाव माला के स्पष्टीकरण में सर्वथा समर्थ ब्रजभाषा इन्होंने लिखी है । भाषा पर उनका अनुठा अधिकार है और जैसा अधिकार भाषा पर है भाव विश्लेषण भी उतना ही प्राञ्जल और उत्कर्ष पूर्ण है अतः 'रसिक भावना' की व्याख्या के क्षेत्र में इन्हें आचार्य रूप में सम्बोधन करना सर्वथा उचित होगा वृन्दावन निरुंज में प्रेम-परिचर्या निरत उनके उपास्य श्री श्यामाश्रयण का एक चित्र देखिये :-

प्रीतम किशोरी गोरी, रसिक रंगीली जोरी,

प्रेम ही के रंग जोरी सोभा कहि जात है ।

एक प्राण एक वैस एक ही सुभाव चाव,

एक बात दुहुन के मन की सुहाति है ।

एक कुंज, एक सेज एक पदओटैं बैठे,

एक एक वीरी दोऊ खंड खंड खात है ।

एक रस, एक प्रान, एक दृष्टि 'हित ध्रुव'

हेरी हेरि बड़े चौप क्यों हू न अघात है ।<sup>1</sup>

#### हरिदासी (सखी) सम्प्रदाय -

• हरिदासी (सखी) सम्प्रदाय के अवर्तक स्वामी हरिदास भारत के उन विरक्त वैष्णवों में से हैं जिन्होंने अपने सम्प्रदाय की नीव विशुद्ध प्रेमानुभूति और लीलाचिंतन के आधार पर लौकिक धर्म शास्त्रों और विधि-विधान के पचड़ को ढोड़कर रखी । उनके जन्म संवत्, वंश, माता पिता आदि के संबंध में अभी भी मतभेद नहीं है । साम्प्रदायिकों का एक वर्ग उन्हें अलीगढ़ जिले के हरीदासपुर का निवासी बतलाता है और दूसरा वृन्दावन

के पास राजापुर का, एक वर्ग उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहता है दूसरा सनाढ्य एक उनका जन्म भाद्र पद शुक्ला अष्टमी को मानता है दूसरा पौष शुक्ला 13 को । इसी प्रकार जन्म संवत् के विषय में भी विवाद है । जो ही नाभादासजी ने अपने भक्तमाल में उनका जो रूप उपास्थित किया है वह उनकी उदार मनीवृत्ति, उदात्त भक्ति भावना और उन्नत कला ज्ञान का परिचायक है ।<sup>1</sup> श्री राधाकृष्ण के युगल रूप में उपास्य दृष्टि में उनकी ललित लीलाओं के दर्शन प्रेमी, सखी भाव के उपासक और अपनी गान विद्या से श्यामाश्याम को प्रसन्न करने में जीवन का परम लाभ मानना उनका परम इष्ट था । नाभादास जी के इस वक्तव्य में उनके सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की कुंजी हथ लग जाती है जिनकी स्थापना उनकी शिष्य परंपरा के श्री विहारिनिदेव और भगवत रसिक के द्वारा हुई थी ।<sup>2</sup> उनके सम्प्रदाय के श्री रसिकदेव, ललित किशोरी आदि ने भी सिद्धान्त पर बहुत कुछ लिखा है परन्तु न उतना स्पष्ट और न विशद ही । कुछ लोग हरिदासी सम्प्रदाय का मूलधार निम्बार्क सम्प्रदाय को मानते हैं परन्तु डा० सत्येन्द्र का कथन है कि निम्बार्क सम्प्रदाय का भेदभेद दर्शन स्वामी जी के युगलविहार से सर्वथा भिन्न है । युगल सारकार के आराध्य मानने पर भी सखी भाव से उसकी आराधना का विधान इस सम्प्रदाय में है परन्तु वह रसोपासना की दार्शनिक गूढ़ता से सर्वथा शून्य है । अतः स्वामीजी का रसमार्ग उक्त सम्प्रदाय के सिद्धान्त से मेल नहीं खाता<sup>3</sup>

1- जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंज बिहारी

अवलोकत रहे कैलि सुखी सुख के अधिकारी

गान कला गंधर्व, श्याम श्यामा की तोषें

उत्तम योग लगाय, मोर, मरकट मिलि पोषैं ।

नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दर्शन आसा जास की ।

आस धीर उदयोत कर रसिक रूप हरिदास की — भक्त माल हृष्य

2- ब्रज भाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति पृष्ठ 367

3- डा० सत्येन्द्र - पौददार अभिनंदन ग्रंथ पृष्ठ 89

उपास्य तत्व - इस सम्प्रदाय की उपासना मधुर भाव की है । इसमें प्रेम की गंभीरता है । श्री कृष्ण का समस्त विश्वास राधा हेतु और राधा का कृष्ण के लिए है । वे दोनों एक प्राणदो देह हैं । उनकी रति क्रीड़ा से सखियों का आनंदानुरंजन होता है । किसी का कोई स्वार्थ नहीं है । कृष्ण सुख समस्त सुखों का सार है । सभी की 'तत्सुखी भावना' है ।

सखी सम्प्रदाय के कृष्ण निकुंज बिहारी हैं जो राधा के साथ नित्य रमण करते हैं । उनकी रति काम से कौनों दूर है । उनका प्रेम एक रस अनित्य है । वय में वे किशोर किशोरी हैं, नित्य नवीन हैं । निभृत निकुंज में पुष्प शैया पर विलीनित वे एक दूसरे की रूप सुधा का पान कर रहे हैं । अपने विश्वास में वे स्वाकार से प्रतीत होते हैं । निकुंज बिहारी कृष्ण अवतार कृष्ण के अवतारी हैं । ब्रज बिहारी कृष्ण उनके अंशावतार हैं । वे स्वप्न में भी निकुंज के बाहर नहीं जाते क्योंकि नित्य बिहारी हैं । उनका नित्य नव निकुंज कंकणाकार यमुना परिवेष्टित श्री वृन्दावन में है । निकुंज बिहारिणी राधा सर्वेश्वरी है स्वामी हरिदास उनकी उल्लिखित सखी है जो इस नित्य विहार की अनन्य सहचरी है । उनकी कृपा से ही श्री निकुंज बिहारी का प्रेम प्राप्त होना संभव है अतः सखी भाव से अ युगल बिहारी श्री राधा कृष्ण की उपासना में तल्लीन रहना चाहिये । उपासक की नित्य चर्चा सम्बन्ध में भगवत रसिक कहते हैं :-

नागर रसिक अनन्य संग बर वृन्दावन जान ।

नाम बिहारी को दारस वानी यमुनापान ।

वानी यमुना पान पुलिन पुलकावलि तन में

अनुभव रास विश्वास बिहारिनि प्रगटत मन में

भगवत रसिक - अनन्य विश्वयात्मक ग्रंथ

इसके लिए निर्विषय रूप से गौर श्याम की नेत्रों में वसना परमावश्यक है

गौर श्याम अंजन अंजी अखियाँ आनंद रूप ।

पलकन में झलकत रंज, दीउ सुखद अमृय ॥

-बिहारिनदास सखी 637



इस सम्प्रदाय में साधक को 'कर कत्वा हरवा गुंजन के कुंजन माहिं वसेरो' तक अपनी चर्या सीमित करनी पड़ती है । यहाँ रसिक की श्यामश्याम के साथ एक स्पर्ता अनिवार्य है :-

जीव ईश मिलिदोय नाम रूप गुण परिहरो ।

रसिक कहवै सोय ज्यौ जल घोटै शर्करा ॥<sup>1</sup>

विधि निषेध यहाँ सर्वथा त्याज्य है<sup>2</sup> । अत्यन्त संक्षिप्त और प्रभावी रूप में श्री भगवत रसिक ने सम्प्रदाय-साधना का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी काप ।

नित्यविहार उपासना, जुगलमंत्र को जाप ॥

जुगल मंत्र को जाप, वेद रसिकन की वानी ।

श्री कृन्दावन धाम, इष्ट श्यामा महारानी ।

प्रेम देवता मिले बिना, सिधे होय न कारज

'भगवत' सब सुख दानि, प्रगट भये रसिकाचारज ।<sup>3</sup>

इस सम्प्रदाय के कवियों में श्री स्वा० हरिदास, विहारिनिदेव, रसिक देव, पीताम्बर देव, किशोरदास, ललित केशरीदास, ललित मोहिनी दास, भगवत रसिक, सहचरिशरण प्रमुख हैं ।

स्वा हरिदास — स्वा० हरिदास जी के जन्म काल के संबंध में अभी तक मतैक्य नहीं है । डा० गोपालदत्त शर्मा ने उनका जन्म संवत् 1535 वि० स्वीकार किया है<sup>4</sup> और डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने 1537 वि० इस प्रकार एक मत न

1- भगवत रसिक की वाणी पृष्ठ 27

2- सेवाद्व में दूरि करविधि निषेध जंजार ।

श्री स्वामी हरिदास ज्ञ भायो नित्य विहार ॥—ध्रुवदास वयासीस तीला पृ० 31

3- भगवत रसिक की वाणी पृष्ठ 43-44

4- स्वा० हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य पृ० 177

होते हुए भी उनका समय निर्देश प्रायः समान ही है । उनकी माता का नाम गंगादेवी था । उनके जीवन वृत्त के संबंध में पूर्व में संकेत किये जा चुके हैं । स्वामीजी के 1- 'केलामाल' और 'अष्टादश सिद्धान्त के पद' दो ग्रंथ प्राप्त हैं । केलामाल में शृंगार के 110 पद हैं । सिद्धान्त के पदों में जीव की परतंत्रता और भगवान की स्वतंत्रता, हरिकृपा, भगवान ही भजनीय हैं, सभी उनके वशीभूत हैं, उनके अश्रय में आनंद है, उनके प्रेम चिंतन में मन इस प्रकार समाधिस्थ रहना चाहिये जैसे ग्वालिन सरपार भरी मटकी का भान रखती हुई सब कार्य करती जाती है । ब्रज रज का भी उन्होंने महत्व प्रतिपादन किया है :-

मन सुभाय प्रीति की जै कर रक्वा सौ ब्रज वीथिन दीजै सोहनी ।

वृन्दावन सा वन - उपवन सौ वन गुंजमाल हाथ मोहनी ।

गो जो सुतन सौ मृगी मृग सुतन सौ और तन नैकु न जोहनी

श्री हरिदास के स्वामीश्यामा कुंज बिहारी सौ चित्त ज्यौ सिर पद दोहनी ।

—अष्टादश सिद्धान्त के पद सं० 12

प्रस्तुत कंद में स्वामी जी की प्रेमा भक्ति और उनकी उदात्त भावना स्पष्ट हो जाती है । केलामाल में वप्रकृति वर्णन, रूप वर्णन प्रेम व्यंजना और निकुंज-रस के अनेक हृदय प्राप्ती वर्णन हैं । भाषा का रूप विशेष परिमार्जित न होति हुए केलामाल में अन्वृती भाव माला पिरोई गई है । उसकी व्यंजना शक्ति अद्भुत है ।

श्री विहारिनि देव — 'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार विहारिनिदेव जी का जन्म सं० 1561 में हुआ और निकुंज गमन सं० 1659 जिन्हें विद्वान ठीक नहीं मानते हैं । उनका नाम विहारिनिदास अथवा बिहारीदास भी था जो स्वामी हरिदास जीन ने प्रदान किया था<sup>2</sup> इसे पूर्व के अकबर के यहां किसी उच्च पद पर सेवारत थे और मानसिंह से उनकी घनिष्टता थी । ऐसा निजमत सिद्धान्त में संकेत है । साधु होने पर वे श्यामश्याम की प्रेम-माधुरी में संसार से उदासीन और वे-परवाह हो गये थे । उनमें एक ऐंड़ और ऐंठ थी जिस पर उन्हें गर्व था -

1- कृष्ण भक्तिकाव्य में सखीभाव पृ० 418

2- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव पृ० 477

कोउ मदमाति भंग के कोऊ अमल अफीम ।

बिहारीदास रस माधुरी मल्ल मुदित तो फीम ।<sup>1</sup>

उनके समकालीन हरिराम व्यास और ध्रुवदास जैसे भक्त रसिकों ने उनकी रस-रीति की भूरि-2 प्रशंसा की है :-

साँची प्रीति विहारिनिदासै ।

कै कल्ला, कै कुंज कामरी, कै धरु श्री स्वामी हरिदासै ।

प्रतिवाधक सह सकतन तिनकौ, जानत नहीं कहा कहि जासै

महामाधुरी मल्ल मुदित कै गावत रस जस जगत उदसै ।<sup>2</sup>

काव्य कृतियाँ — विहारिनिदास जी हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्त पक्ष के मर्मज्ञ व्याख्याता और निबुंज रस के अधिकार पूर्ण गायक हैं । इनकी वाणी में इन्हीं विषयों का प्रमुख रूप से प्रतिपादन है । उन्होंने विपुल मात्रा में लिखा है । उनकी 673 साखियों में सम्प्रदाय सिद्धान्त और रस सिद्धान्त का विवेचन है । इसके अतिरिक्त 191 पदों में रस वर्णन है । 79 पदों में सिद्धान्त विवेचन भी किया है और कवित्त सवैया और चौबोली में भी इनका ही प्रतिपादन है । उनकी वाणी का प्रकाशन सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन से हो चुका है ।

विहारिनि देव के सिद्धान्त वर्णन में अत्यधिक विषय और विचार स्पष्टता एवं मिश्रण से बचने का प्रयास देख पड़ता है । अपने रस की पहचानने की उनमें विलक्षण क्षमता है । जिसके मूल में उनका स्वतंत्र चिंतन विशेष सहायक है । फिर भी उनकी रचनाएं उपदेश प्रधान होने और फक्कड़पन से निर्वाह किये जाने के कारण प्रायः नीरस हैं ।

अपने उपास्य-युगल की प्रेम लीलाओं का वर्णन कवित्त सवैये और पदों में उन्होंने सुंदरता से किया है । इनमें मान, भोजन, नृत्य, विहार आदि लीलाओं का समविश है ।

1- बिहारिनिदास की वाणी साखी 297

2- भक्त कवि व्यास जी पृष्ठ 195

आज क्यों मरगजी उर माल ।

देखिये विमल कमल नयन युगल लगत न पलक प्रवाल ।

अति आसत जम्हात रसमते रस कहे नव वाल ।

अधर माधुरी के गुन जानत वनितन वचन रस ढाल ।

किशोरदास जी 'निजमत सिद्धान्त' के यशस्वी रचनाकार श्री किशोरदास जी 'रसिक विहारी महाराज' की गद्दी के महन्त पीताम्बरदास जी के शिष्य थे । 'रसिक विहारी स्थान' की स्थापना महात्मा रसिक देवजी ने की थी जो हरिदासी सम्प्रदाय की गद्दी के कटवे आचार्य थे ।<sup>1</sup>

किशोरदास जी सारस्वत ब्राह्मण थे । उनका जन्म जयपुर अमिर में सं० 1770 वि० में हुआ था और 1791 में दीक्षा प्राप्त कर ली और ठाकुर रसिक बिहारी महाराज की सेवा एवं साहित्य रचना अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य बनाए ।<sup>2</sup>

सप्तदश इक्यानवे, संवत्सर सुख दीन

बैसाखी तृतीया शुक्ल, मोहि शिष्य कर लीन ।

—निजमत सिद्धान्त अवसानखंड पृष्ठ 158

उनका दीक्षा संस्कार अक्षय तृतीया को हुआ था ।

किशोरदास जी की रचनाओं का एक विशाल संग्रह 'सिद्धान्तरत्नाकर' नाम से निम्बार्क शोध मंडल से प्रकाशित हुआ था जिसमें उनके रस के पद समाविष्ट नहीं थे । कालान्तर में कानपुर निवासी लाल शास्त्राग्राम जी के यहां इनके रस के पदों का संग्रह प्राप्त हुआ जिसका प्रकाशन मंडल ने सन् 1967 में किया ।

किशोरदास जी की रचनाओं को तीन भागों में बांटा जा सकता है ।

- 1- ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ जैसे (1) निजमत सिद्धान्त (2) स्वामी श्री आपुधीर देव  
ब्रू की चरित (3) स्वामी श्री विहारनिदेव ब्रू की चरित

1- स्वा० हरिदास जी की जीवनी और वाणी - श्री प्रभुदयाल मीतल पृष्ठ 134

2- श्री किशोरदास जी की वाणी- सं० राधामोहन दास गुप्त पृष्ठ 4

- 2- सिद्धान्तिक रचनाएँ - 1- सिद्धान्त सरोवर 4- उपदेश आनन्द मृत  
 2- सिद्धान्त सार संग्रह 5- सवैया पच्चीसी  
 3- अद्भुत आनन्द सत 6- फुटकर कवित्त
- 3- रस सम्बन्धी रचनाएँ - 1- प्रमानन्द पच्चीसी 4- नेह तरंग  
 2- श्री वृन्दविपुन विलास 5- वर्षोत्सव  
 3- आचार्योत्सव

इन रचनाओं में उनके गम्भीर अध्ययन, अनन्य साम्प्रदायिक साधना भाषा की रससिक्तता, चित्रोपमता और प्रसाद गुण की विशदता पग पग पर लक्षित होती है। किशोरदास जी इस सम्प्रदाय के एक विशाल स्तम्भ कहे जा सकते हैं। उनके नेह-तरंग से वृन्दावन में श्री निकुंज बिहारी विहारिनि की एक झाँकी प्रस्तुत है :-

वृन्दावन नाम धाम आनंदकारी ।  
 विहारत वर भामिनी नित्य बिहारी ।  
 श्रीमत श्री जमुना जन जगत पावनी ।  
 दम्पति आनन्द देन भवन भावनी ।।  
 वृक्ष वेलि कोमल दल फूल फल फली ।  
 कल्पतरु, अपार पार पावत न गली ।।  
 सगुन निर्गुनादि कोउ पार न पावैं ।  
 श्री किशोरदास शेष शंभु गुन गावै ।<sup>1</sup>

श्री भगवत रसिक - 'वृन्दावन धामानुरागावली' में भगवत रसिक जी का एक वृत्तान्त दिया है जिसके अनुसार ये कन्नपुर के निवासी थे और अपने साथी प्राणप्यारे के साथ टट्टी स्थान आए थे जहाँ की रस-साधना से प्रभावित होकर इन्होंने सारी सम्पत्ति का परित्याग कर तत्कालीन महान्त ललित मोहेनी दास से दीक्षा ले ली। ये बड़े उदार, गम्भीर और तेजस्वी थे। नित्य बिहार का अनुभव करते रसिक कहायें<sup>2</sup>

1- श्री किशोरदास की वाणी निम्बार्क शोध मंडल वृन्दावन पृष्ठ 33

2- वृन्दावन धामानुरागावली से कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव शोधप्रबंध में उद्धृत पृ-502

सम्प्रदाय में उस समय पारस्परिक संघर्ष चल रहा था जिससे क्षुब्ध होकर वे प्रयाग चले गए और वही एक स्थान बना लिया ।<sup>1</sup> भगवत-रसिक जी का जन्म सं० 1795 में हुआ था । प्रकृति से वे विहारोत्तरेन देव जी की भांति अक्लमंद थे । स्वामी जी को छोड़कर सम्प्रदाय की रस-साधना उसके सिद्धान्त और नित्य विहार का साक्षात् अनुभव जैसा इनकी और विहारिनि देव की हुआ वैसा अन्य किसी की नहीं। तभी उन्होंने घोषणा कर दी थी कि निकुंज बिहारी सभी दार्शनिक मतों से परे हैं :-

नाहीं दैवैतादैवैत हरि नहीं विशिष्टादैवैत  
बंध नहीं मतवाद मैं ईश्वर 'इच्छा दैवैत' ।

स्वामी जी का सिद्धान्त पीछे इच्छादैवैत कहा जाने लगा था । रचनारै—  
भगवत रसिक की वाणी पांच कोटे ग्रंथों का संग्रह है जिनके नाम हैं अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ श्री नित्य बिहार युगसंधान, अनन्य रसिकाभरण, अनन्य निश्चयात्मग्रंथ उत्तरार्द्ध और निर्विरोध मन रंजन ।

साहित्यिक दृष्टिकोण से ये सभी रचनारै उत्कर्षमय हैं क्योंकि भाषा की प्रसाद गुण पूर्णता, एवं सरसता, विषम की स्पष्टता अनुप्रास की विशेषता, लोकीकृतियों और मुहावरों के प्रयोग से उसकी प्रवाह पूर्णता इसमें अत्यन्त सहायक है । शब्द चमत्कार के साथ अर्थगाम्भीर्य इनकी लोक-प्रियता का विशेष कारण है । उनका स्थान सभी सम्प्रदाय के मूर्धन्य कवियों में है ।<sup>2</sup> उन्होंने निकुंज-रस की अनुभूति करके ग्रंथ रचना की थी उनका काव्य इसका प्रत्यक्ष साक्षी है :-

जो जानें मनिं सोई, मनिं क्यो विनु जान ।  
पीर प्रसूती की कहा जानें बांझ अजान ।  
जनिं बांझ अजान नपुंसक रति सुख नाही ।  
ऐसेहि नीरस पुस्तक कहा समझै रस माहीं ।<sup>3</sup>

1- भगवत रसिक नाम प्रताप - बिहारी बल्लभ कृत ।

2- कृष्ण भक्ति काव्य में सभी सम्प्रदाय - डा० शरण बिहारी गोस्वामी ।

3- अनन्य निश्चयात्मक - भगवत रसिक पृ० 4।

निकुंज लीला में श्री राधा जी के जावकजुत चरण ही श्री श्यामसुंदर के वंदनीय हैं। भगवत रसिक कहते हैं :-

जावक जुत जुग चरन लली के ।

अदभुत अमल अनुप दिवाकर मोहन मानस कंजकली के ।।

मंजुल, मृदुल, मनोहर पुष्पनिधि पुष्प सिंगार निकुंज गली के  
पुरतरु, कामधेनु, चिंतमनि, 'भगवत रसिक' अनन्य अली के । ।

उनके कथन करने की प्रणाली ही चमत्कार पूर्ण है, सब किसी के आकर्षण का कारण नहीं है । रसिकों को ही भाती है - अरसिकों को नहीं :-

'भगवत रसिक' रसिक की बातें,

बिना रसिक कीउ समुझि सकै ना ।

निकुंज लीला के साक्षात् दर्शी के रूप में भगवत रसिक की प्रसिद्धि है । उनके ये वर्णन बहुत ही सटीक और मार्मिक है । नित्य बिहारी, किशोरी किशोर नित्यनूतन हैं इनका विहार नित्य नवस है :-

नित मेरौ लालन नित ही लली ।

नित्य विहार नित्य वृन्दावन नित नये कौतुम करहि अली ।

नित नयौ नेह नित नयौ जीवन नित नयौ तौल नवल नवली ।

नित नये स्याम होत है स्यामा नित नयी स्यामा स्याम लली ।

नित नये वसन नित्य आभूषन नित नये केसन कुसुम कली ।

नित नये अंगराग आलिंगन नित नये भोजन भंति लली ।

नित नये बना वनी बने दोऊ नित नई भवि पुलिन थली ।

नित नई सेज वनावति भगवत, कैलि विशोकत चितन वली ।

1- स्वामी हरिदास रस सागर सं० विश्वेश्वर शरण पृष्ठ 618

2- वही वही पृष्ठ 640

### ललित सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में श्री ललिता जी को गुरु रूप में माना गया है और उनकी (ललिता जी की) कृपा से परब्रह्म रूपा श्री राधा जी की उपलब्धि होती है इस कारण सभी भाव के सम्प्रदायों में ललित सम्प्रदाय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । अन्य कृष्ण भक्त सम्प्रदायों में श्री कृष्ण सर्वशक्ति मान हैं, नित्य हैं, अवतारों के अवतारी हैं । उनकी कृपा प्राप्ति के लिए राधा का शरणगत होना उपायना का श्रेष्ठ बतलाया गया है परन्तु ललित सम्प्रदाय में श्री कृष्ण जी की स्थिति सेवक जैसी है । गुस्तेव श्री ललितजी के कृपा-साहाय्य से उन्हें श्री राधा जी की प्राप्ति होती है और वह भी स्वामी के रूप में नहीं, वरन् सेवक की स्थिति मात्र में ।

सेव्य सदा श्री राधिका, सेवक नन्द कुमार  
दूजे सेवक सहचरी, सेवा विपुल विहार ।<sup>1</sup>

श्री ललिता जी की प्रधानता होने के कारण इस सम्प्रदाय का नाम 'ललित सम्प्रदाय' है । यहाँ ललितजी की उपासना गुरु रूप में की जाती है । श्री ललिता श्री राधा जी की प्रिय सभी और हृदयेश्वरी है । जो कुछ ललिता जी निर्देश करती है श्री राधा उनका पालन करती है । निम्बार्क, गौड़ीय, राधावल्लभ, स्वामी हरिदास आदि सम्प्रदायों में जो स्थान श्री कृष्ण का है वह श्री राधा का है :-

जय जय श्री ललिता ललित, जुगल आनन्दिनी ।  
जीवन प्रान समान सुकीरति नन्दिनी ।  
दम्पति करि गति, रति, मति, जुगधन स्वामिनी ।  
निज सम्पति नित विलसति गुन अञ्जिरामिनी<sup>2</sup>

श्री ललिता श्री राधा कृष्ण की प्रीति-रूपा और कल्याण शक्ति रूपा हैं । वे श्री राधा कृष्ण के विहार का समायोजन करती हैं ।<sup>3</sup> प्रिया प्रिय के अंश पर

1- श्री वंशी अज्ञी कृष्ण हृदय सर्वस्व पृष्ठ 5

2- वंशी अज्ञी जी की वाणी हस्तलिखित

3- ललिता दोउ जन प्रीति हैं कल्याणशक्ति स्वरूप, अङ्गिण वपु सी रहत, रचत विहार अनूप  
-हृदय सर्वस्व 13



आधुषण ललिता जी का ही रूप है । वे शय्या रूपिणी बन कर नित्य परम अरुहादित रहती हैं ।<sup>1</sup>

श्री ललिता जी के ही अंचल में प्रिया प्रियतम नित्य विराजते हैं वे उनके सहचर हैं । उन तीनों के प्राण एक हैं । वास्तव में श्री राधा, लाल, ललिता और वृन्दावन में कोई भेद नहीं है । वे सब श्री राधा के रूप हैं । प्रकट रूप में जहाँ जहाँ श्री वृषभानु कुमारी है वहाँ वहाँ श्री ललिताजी भी व्याप्त हैं ।<sup>2</sup>

प्रिया प्रियतम की निकुंज लीला सहचरी की इच्छानुसार चलती है । ललिता जो करती है लाल ललना को भाता है और जो लाल ललना करते हैं वही ललिता को प्रिय है । ललिताही उपासक के नेत्रों की पुतलियों में बैठ कर ललित रूप का दर्शन कराती हैं । जो सखियाँ प्रिया प्रियतम को प्रिय हैं ललिता उन पर प्राण न्योकावर करती है । उनकी उपास्या श्री राधा हैं जो श्री कृष्ण के साथ नित्य विहार में रत हैं । इस नित्य विहार की प्राप्ति सभी भाव धारण करके श्री राधा चरण कमल कृपा से होती है ।<sup>3</sup>

ललित सम्प्रदाय की स्थापना श्री वंशी अज्ञी ने की थी। वे सारस्वत ब्राह्मण थे । जयपुर, वृन्दावन, दिल्ली आदि स्थानों पर इस सम्प्रदाय के मठ मंदिर विद्यमान हैं ।

सिद्धान्त पक्ष — इस सम्प्रदाय की व्यावहारिकी (सृष्टिलीला) और वास्तवी (नित्य लीला) दोनों का मूल कारण श्री राधा ही हैं । वे आदि स्वतंत्र पराशक्ति हैं तथा श्रीब्रह्म जीविरादे की प्रकल्पिका वे ही हैं । वे ही माया, ब्रह्म और स्वयं भगवान की कर्त्री हैं अधिष्ठात्री हैं ।

1- हृदय सर्वस्व - 14

2- श्री राधा मेरी वन थली, राधा ही है लाल ।

श्री ललिता राधा रूप है, हैं श्री राधा लाल ।। —हृदय सर्वस्व 29

3- वंशी अज्ञी जी की वाणी पृ० 28

‘चिति शक्ति स्वतंत्रा स्यादिति का भिन्ना प्रकारतः’

-श्री राधा सिद्धान्त, श्लोक 6

इसकी स्थापना में श्री कंशी अजी ने कहा है कि ‘राधा का ही दूसरा नाम ब्रह्म है जो सर्ववस्तुओं और प्राणिमात्र में अनुस्यूत है तथा सभी उसके आश्रित हैं। वह तत्त्व सबके आदि में था। वह सद और असद तथा कार्य कारण संघात से भी परे हैं। उसने सृष्ट्यादि व्यापारों को भी अस्वीकृत कर दिया है और वह केवल नित्य धाम वृन्दावन में नित्य विहार में रत रहता है।’<sup>1</sup>

अन्य सम्प्रदायों में श्री राधा को श्री कृष्ण की आल्हादिनी शक्ति कहा गया है। इस सम्प्रदाय के अनुसार वह शक्ति श्री राधा का एक अंश भर है और वह आराधिका इसी नाम की एक गोपी है।<sup>2</sup> अपनी उक्त स्थापनाओं के समर्थन में श्री कंशी अजी ने श्री राधा तत्त्व प्रकाश, श्री राधा सिद्धान्त, शक्ति स्वातंत्र्यवाद, श्री राधा स्तोत्र, राधाशेष, राधोपनिषद् टीका, शक्ति स्वातंत्र्य प्रदीप आदि संस्कृत ग्रंथों की रचना की थी। इनके अतिरिक्त ‘वृषभानुपुर माधुर्यशतम्’ में भी राधा तत्त्व का पुष्ट प्रमाणों द्वारा विवेचन किया गया है। उनके ग्रंथों की रचना में ब्रह्मसंहिता, लु मायल तंत्र, वृहद् गौतमीय तन्त्र, सम्मोहन तंत्र, गर्भ संहिता, गोपाल तापिनी, ब्रह्म वैवर्त पुराण, पद्म पुराण, ऋग्वेद रहस्योपनिषद्, राधोपनिषद् महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों से प्रमत्ता समाविष्ट किये गए हैं।<sup>3</sup>

लीला भेद धाम एवं प्रयोजन — ललित सम्प्रदाय में लीलाओं के 1- ब्रजवन लीला 2- निवृंज लीला दो भेद स्वीकार किये गए हैं जिनमें उत्तरोत्तर उत्कर्ष माना गया है। इस लीला क्रम में श्री राधा की परम कल्याणायी स्वीकार किया गया है जो अपने भक्तों की समीप्य प्रदान करती है। स्वयं ज्योतिस्वरूपा निराकार हृति हुए भी वे साकार रूप धारण करती है। वे नित्य भक्त अधीन हैं इसलिये लीला करने के लिए तत्पर होती हैं।

1- श्री राधातत्त्व प्रकाश - कंशी अजी पृ० 18

2- श्री राधा तत्त्व प्रकाश- श्री कंशी अजी पृ० 12, 13

3- ललित सम्प्रदाय में लीला चिंतन- डा० वावुलाल गोस्वामी

ब्रज लीला बुक पृष्ठ 83

नित्यं भक्त पराधीना, तेन राधा विहारिणी  
साम्यं अजति भक्तेन रसे कृष्णेन लीलया ।

यहां लीला के विधायक चार तत्व हैं नित्य ब्रीड़ा मग्न युगल राधा और कृष्ण, सखी सहचरी और लीला धाम वृन्दावन । ब्रज लीलाओं के लिए वरसना (वृषभानुपुर) लीला धाम है । इसके अतिरिक्त रावल, संकेत आदि की भी व्यापक दृष्टि से धाम की मान्यता है । ब्रज लीला परिकर में श्री ललितादिक सहचरियों के अतिरिक्त श्री वृषभानु कीर्ति, नन्द आदि गोप, श्री कृष्ण आदि है । श्री राधा सिद्धान्त में वंशी अली जी ने कहा है कि श्री राधा की लीलाओं की उद्दीप्त करने वाले स्थानों - श्री राधावन (वृन्दावन), राधा कुण्ड, रावल, वरसना आदि में साधकों की निवास करना चाहिये<sup>2</sup>

लीला विस्तार का प्राप्त काम सच्चिदानन्द स्वरूपा श्रीराधा के लिए कोई महत्त्व नहीं है । केवल भक्तों को सुख देने के लिए ही वे समान भाव से श्री कृष्ण की भजती हैं । श्री कृष्ण उनके परम भक्त हैं :-

हैं वृषभानुनंदिनी भजों

जंगल की सहचरी कहावति माँहि मन के लजों ।

—माधुर्यशत - वंशी अली पद (111)

अतः उनके विषय में कामोद्भूत विहारिका कभी उपयुक्त नहीं । श्री राधा अपने ही आनंदरस में मग्न रहती है और भक्त उनके रूप वारिधि में । अतः श्री कृष्ण से उनका पत्नीत्व अथवा विहार संभव नहीं है । हाँ श्री राधा के दृष्टिपात और कटाक्ष से श्री कृष्ण जैसे अनन्य भक्तों का हृदय विंध जाता है और वे अपनी पुधबुध छोड़ बैठते हैं । ब्रज लीला के प्रसंग में इस सम्प्रदाय के कवियों ने माता कीर्ति के द्वारा और में जगाना, आरती, आंगन में झुनक झुनक डोलना, अन्न प्रशनी, राई लीन, ठिठौना लगाना, पैजनी, वेसर, वैनी आदि पकड़ कर राधा का मचलना - तदनन्तर गैद, गुड़िया खेल फिर भैया दूज, राखी, झूलना, गोपियों

1- श्री राधा सिद्धान्त, श्लोक सं० 28

2- राधावने राधिकायाः कुण्डे रावल पत्तने ।

वृषभानुपुरे वापि स्थितिः कार्या मनीषिभिः ।

—राधासिद्धान्त - श्री वंशी अली श्लोक 85

के धा खेलना, ओदामा आदि बाइयों से झगड़ना शृंगार और सखियों के साथ विनोद आदि की विस्तार से गाया है ।

चलति घुटुखनि अंगन सोहे ।

कठुला कंठ लट्ठी विथुरी, नाक नथूली लखि मना मोहे ।

चिटुक चणोडा भाल विन्दु कवि, श्रवणनि जलज एक अवरोहे ।

मेया वदन विनोकि कवीली, किलकति 'वशी' सुखनि समोहे ॥

— वात्सल्य के पद — वशी, अली पद सं० 6

ब्रजलीला के अन्तर्गत बन लीला है । इसमें राधा के प्रति गोपियों की 'रति' प्रधान हो गई है और सख्य का गुह्यतम रूप प्रकट हो चला है । इन लीलाओं में महारास प्रमुख है । उससे पूर्व गुडिया लीला में सखियों की 'रति' राधा के प्रति सक्रिय हो चुकी है । महारास के आयोजन का यहाँ एक ही उद्देश्य है गोपी भाव की सकामता को सखी भाव की निष्कामता में परिणित करना । यहाँ श्री कृष्ण प्रकट नहीं है - राधा के हृथ हो नायकत्व की धुजा है । यहाँ राधा अपने रूप को देखते देखते प्रेम विकार हो जाती है और ललित त्रिभंगी के रूप में खड़ी हँका वशीवदन करती है । ।

महारास में शृंगार के परिपाक के लिए श्री राधा का नृत्य, गोपियों के अंग प्रत्यंगों का स्पर्श और सुक आलिंगन चुम्बन, परिभन आदि द्वारा उनके मन में उत्तेजना होती है जो चरम बिंदु पर पहुँच जाती है :-

दैत परिभ कुच तटी काहू कुवत नख,

कतन कटि परसि चुंब अधरन परस

कुवत कवरीकान अलक लई हुर कोभ जिय

भीर दृग जियनि खेलत कटाकन परस । 2

1- लालिली निज जन मन आनंदधन गुन गन रास रसीलो

ललित त्रिभंग सुअंग सुन्दरी परस सुवास वसीलो ।

निज अवलोकनि विवस होति अति, निज कवि निजदृग खेलो

अति आसक्ति जनवै, राधा वेनु वज्रवै- श्री राधिकामहाराज - वशीअलि

2- श्री राधिका महारास वशी अली - ललित सम्प्रदाय में लीला चिंतन लेख में उद्धृत

उसी समय श्री राधा जलछों के बीच क्विप जाती हैं और उनके अदृश्य होने पर प्रेम सिंधु में ज्वार उमड़ता है । मृगी, मयूरादि से गोपियाँ पूँकती हैं :-

हो हो मृगी मयूर तुमनि देखी कहूँ राधा ।

आनंद दृग भरि वारि जानियत पूजी साधा ॥<sup>1</sup>

निकुंज लीला - महारास का पर्यवसान निकुंज लीला में होता है । यहाँ श्री राधा कृष्ण नृत्य विशोरतमें निकुंज में पधारते हैं :-

कुंवरी निर्वर्तति सुधर राधिका स्याम संग ।

दिये गर बाँह दृग दृग मिला ये दीउ, सेत गति पुरत रस माधुरीअंगअंग  
चंद्रिका चलनि गति चपल नैननि लई, जुगल ताटक वर मंड मंडल नचत ।  
रस संरंभ मुख अरुनिया झलक कहुं, करत हस्तक भेद निकस तब कटि लचत

x                      x                      x                      x

लाल अर्पित पान न खात मुसिकात मुख डारि वर पीक गति सेत नव तन रसत  
वदन अम निरखि लालन करत वायु, कर कंज लिये बीजना नेह रस सौ सन्यो  
लिपट गयी लालन उरसि रीझि कै, जे श्री वंशिका अलि रति भाव अद्भुत ठन्यो

श्री वंशी अली, किशोरी अली, अलवेली अली इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि हैं ।  
रतन अलि, रंगीली दासी, संकेत अलि, हैं कलभ अलि, जनहरि अलि परवर्ती रचना  
कार हैं । इन सभी ने श्री राधा के परमात्म तत्व और लीला नायकत्व का अपनी  
रचनाओं में सरस पदावली में समर्थन किया है ।

राम भक्ति में रासिक सम्प्रदाय  
=====

भगवान् रामचन्द्र अपने मर्यादा पुरूषोत्तम और दुष्टदमनकारी रूप में ही  
प्रमुखतया जन जन के मानस पटल पर और साहित्य में प्रतिष्ठापित हैं । परन्तु

-----  
1- श्री राधिका महारास वंशी अली - ललित सम्प्रदाय में लीला चिंतन लेख में उद्धृत

15वीं शताब्दी के परवर्ती साहित्य में उनके सीता गान की प्रथा चली जिसमें उनका दुष्टदमन कारी रूप प्रमुख लक्ष्य रहते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम रूप भी मसीननही हुआ परन्तु 15वीं शताब्दी के पीछे के साहित्य में उसमें सीता विहार की प्रधानता हो गई और 18वीं शताब्दी अति अति उनके रास विलास और प्रणय सीता का गान कवियों और भक्तों का नित्य कर्म बन गया । रामावत सम्प्रदाय में प्रेमी-भक्तों की माधुर्य उपासना की वेगवती धारा उनके परम प्रेमास्पद और प्रियतम रूप में निमज्जन कराने लगी । कृष्ण भक्ति की भांति रामभक्ति में भी रसिकोपासना का प्राधान्य हो गया ।<sup>1</sup> राम भक्ति अपने माधुर्यसम्पृक्त रूप में कृष्ण भक्ति की अपेक्षा आधुनिक है ।

वैसे ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'इक्ष्वाकु' नाम आया<sup>2</sup> है और वैदिक साहित्य में एक बार दशरथ की उल्लेख मिलता है<sup>3</sup> । ऋग्वेद में 'राम' शब्द का उल्लेख एक प्रतापी राजा के रूप में है<sup>4</sup> । वैदिक साहित्य में सीता का नाम दो स्थलों पर आया है और वे कृषि की अधिष्ठात्री देवी हैं । 'महाभारत' में राम कथा का उल्लेख है और उसके द्रोण पर्व में सीता की कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्तुति की गई है ।<sup>5</sup> श्रीमद्भगवत एवं विष्णु पुराण में भी राम कथा है, बल्मीकि रामायण तो श्री राम के मानव रूप की वृहदंशंकी है उसमें रावण वध के अनन्तर अशोक वन में सीता राम के प्रेम विलास का वर्णन है । बल्मीकि रामायण का समय ऐसा पूर्व तीसरी शती और श्रीमद् भगवत का 6वीं शती है । इस प्रकार सीताराम की माधुर्य रस से वैष्टित शंकी भी बहुत नई नहीं है जैसा कुछ लोगों का विचार है । "बल्मीकि रामायण में भी सीता अयोनिजा हैं और उनका पृथ्वी में ही तिरोधान हो गया है अतः उनका व्यक्तित्व वैदिक सीता से प्रभावेत है"।<sup>6</sup>

1- रामभक्ति में मधुर उपासना पृष्ठ 95-96

2- यस्वै इक्ष्वाकु रूप व्रते रैवानमारये धत्ते (जिनकी सेवामें प्रतापवान और धनवान इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है ।

3- त्वा वेद पूर्व इक्ष्वांकी यं 19-39-9

4- ऋग्वेद - 10-93-14

5- महाभारत द्रोण पर्व - 7-105-18-19

6- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृष्ठ 98

ऋग्वेद का विराट 'पुरुष' इस विकास क्रम में किस प्रकार सगुण परमेश्वर नारायण रूप में गृहीत हुआ इसका वर्णन पूर्व में हो चुका है । उन्हीं वासुदेव नारायण के भागवत धर्म में दो रूप हो गए । प्रवृत्ति-मार्ग ब्रह्म का सगुण रूप लेकर चला जिसकी अभिव्यक्ति में भगवान् के लोकपालक रक्षक और लोक रंजक रूप की प्रतिष्ठा हुई और उसी में उसके निर्गुण - सगुण, व्यक्त अव्यक्त, ~~मूर्त अमूर्त~~ मूर्त अमूर्त रूप अंतर्गुक्त हो गए । ईश्वर के स्वरूप पर अपने मन की सुभाना ही भक्ति है वृ उसमें कोई अन्य हेतु नहीं है ।

रामोपासना की उद्भावना शिवजी के द्वारा हुई ऐसा लोक प्रसिद्ध है । एक आख्यान के अनुसार नारद ऋषि ने बल्मीकि जी को रामोपासना की निर्दिष्ट की थी। विद्वानों का मत है कि बल्मीकि रामायण की रचना के दो सौ वर्ष पूर्व रामावतार का प्रचार हो गया था । ईसा की दूसरी शती में मौर्यवंश के अनन्तर भारत में शुंग वंश की स्थापना हुई । उस समय वैदिक धर्म के उत्थान के साथ रामायण और महाभारत का विशेष रूप से प्रचार हुआ था । 'रामपूर्वतापिनी' से भी प्रकट है कि इस समय से रामोपासना चल पड़ी होगी । बल्मीकि रामायण में सीता की अग्नि परीक्षा के समय और सुतीक्षा संवाद में रामोपासना का संकेत है । वायुपुराण में रघुवंश के 10वें सर्ग में राम की ईश्वरता स्वीकार की गई है । भवभूति ने श्री राम की परमोपास्य कहा है । अतः ईसा की 11वीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही इस उपासना का पर्याप्त विकास हुआ यह निश्चित है । डा० भांडारकर का कथन है कि इससे भी पूर्व आलवाद् भक्तों के स्त्रीयों में राम के उपास्य रूप की प्रतिष्ठा हो चुकी थी उनका समय 7वीं शती ईसा है । कुल शेखर आलवार ने प्रौढ़ राम भक्ति विषयक मधुर गीतों का गान किया है । इन्हीं में से शठकोपाचार्य की 'सहस्रगीति' में भगवान् राम की मधुर भाव मयी प्रार्थना है जिसका भाव है कि 'मेरा शरीर आपकी वियोगाग्नि में लह की तरह जल कर पतला हो गया है, आपने लंका का विनाश करके शरणागत वत्सल की उपाधि पाई है परन्तु मेरे प्रति क्यों इतनी निर्दयता है ? भागवत में भगवान् की माधुर्य रति निखर कर आई ।

1- पुत्रत्वं गते विष्णे राजस्तस्य महात्मनः

-बल्मीकि रामायण वालकाण्ड ।

यद्यपि उसमें कृष्ण लीला की विशेषता है परन्तु समाज पर इस माधुर्य की अमिट काप निवृत्त होकर श्री राम की लोक मर्यादा पुष्ट भक्ति को भी आलोकित करने लगी । इसका संस्कार बत्मीमि रामायण और अन्य ग्रंथों में पूर्व प्रतिष्ठित था ही । इस प्रकार दास्य भाव और मर्यादा निष्ठ रामभक्ति रसिक साधना में परिवर्तित हो गई ।

श्रीमद् भागवत के प्रभाव स्वरूप रामायण सम्प्रदाय में भी संहिता, स्तोत्र, काव्य, पदावलियों के रूप में लीला विलास का गान प्रारम्भ हुआ सहस्रों सखी-मंजरियों से सेवित और क्रीड़ा विहार में निरत उनके मनोमुग्ध हारी वर्णन काव्य मयी भाषा में हुए हैं । शिवसंहिता, लीमशा संहिता, वशिष्ठ संहिता, हनुमत्संहिता, वृहत्कौशल छंद रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय का रूप-निर्धारण विषयक आधार ग्रंथ है । राम स्तवराज, श्री जानकी स्तवराज जानकी गीत ने सीताराम का उपास्य स्वरूप स्थिर करने में योग दिया है । बत्मीकि रामायण, अनन्द रामायण, महारामायण, कुशुंडी रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नाराधन नाटक ने रास विलास और आमोद प्रमोद के प्रसंग, स्थल और रूप वर्णन विषयक सामग्री प्रस्तुत की है । श्री मधुराचार्य का रसिक साधना में उल्लेखनीय योगदान रहा है । उनकी 'माधुर्य कैलि कादम्बिनी' मधुर रस का आदर्श ग्रंथ है और उनके 'सुन्दर मणि संदर्भ' में जीव गोस्वामी की भक्ति भक्ति, प्रीति, उपास्य, उपासक रूप और दार्शनिक मत की व्याख्या है । सिद्धान्त का सार है । 'रामतत्व प्रकाश' तो सम्प्रदाय का आर्ष ग्रंथ कहना चाहिये । रामतत्व भास्कर, उपासनात्रय सिद्धान्त, श्री राम पटल संस्कृत के वे ग्रंथ हैं जिनमें सिद्धान्त स्थापना और उनकी व्याख्या का सफल प्रयास हुआ है ।

वैष्णवों में राम भक्ति के अवर्तक के रूप में श्री रामानंद की प्रसिद्धि है । श्री बलदेव उपाध्याय ने उनका आविर्भाव काल ईसवी सं० 1400 और तिरीधान 15वीं शती का अंतिम भाग माना है ।<sup>1</sup> उन्होंने 'रामार्चन पद्धति' और वैष्णव मताध्य भास्कर दो ग्रंथ लिखे थे । रामार्चन पद्धति में उन्होंने अपने सम्प्रदाय की पूर्व परंपरा इस प्रकार क दी है :-



रामचंद्र - सीताजी - विश्वकसेन - शठकोपि स्वामी - श्री नाथमुनि -  
 पुण्डरीकाक्ष आचार्य - राम मिश्र - यामुनाचार्य - महापूर्णचार्य - श्री रामानुज -  
 कुरेश - माधवाचार्य - वोपदेवाचार्य - देवाधिप - पुरुषोत्तम - गंगाधर - रामेश्वर-  
 द्वारानंद - देवानंद - श्री मानंद हर्यानंद - राघवानंद - रामानन्द ।

उनकी यही परंपरा सर्वथा मान्य और प्रामाणिक है । नाभाजी द्वारा निर्दिष्ट परंपरा जिसमें श्री रामानंद की श्री रामानुजाचार्य की पांचवी पीढ़ी में बताया गया है अपूर्ण है<sup>1</sup> । रामानंद जी की दो शिष्य परंपराएँ चलीं । जिनमें निर्गुण मार्गी शाखा में कवीर, सेन नाई, पीपा, संत रैदास मुख्य हैं । उनके सगुणोपासक अनंद नामधारी 7 शिष्य थे यथा अनंतानंद , सुरपुरानंद, नरहर्यानंद, योगानंद, गवानंद और गालवानंद । सुरपुरानंद को उन्होंने अपने सिद्धान्तों की स्वयंशिक्षा दी थी । नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में इनके 12 शिष्यों के नाम बतलाए हैं जो उपरोक्त से भिन्न है । परन्तु उनमें भी श्री ~~अन~~ अनन्तानंद सबसे अग्रगण्य हैं ।<sup>2</sup> अनंतानंद जी के शिष्यों में श्री कृष्ण दास पयहारी मुख्य थे जिन्होंने जयपुर में गलता की वैरागी गद्दी की स्थापना की थी । इन्हें नाथ पंथी वैरागियों से संघर्ष करना पड़ा था । कृष्ण दास जी के अग्रदास और कीरहदास दो प्रधान शिष्य हुए । कीरहदास की गलता गद्दी मिलने पर 'रेवासा' में उन्होंने नये स्थान का निर्माण किया । कालान्तर में श्री रामानंद जी के इन्हीं शिष्य प्रशिष्यों की शिष्य परंपरा के रसिक शिष्य-भक्तों ने राजस्थान ही नहीं वरन् उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, बंगाल और पंजाब में सैकड़ों गद्दियाँ और अखाड़े स्थापित किये और इनका विस्तार इतना बढ़ गया कि वैष्णवों के 52 द्वारों में से 36 द्वारों अकेले इन्हींके हो गये ।<sup>3</sup>

इस सम्प्रदाय के साहित्य निर्माता - राम भक्ति की रसिक शाखा के साहित्य निर्माताओं में स्वा० अग्रदास, बाल अली जी, श्री कृपानिवास, गो० तुलसीदास, जनक

1- भागवत सम्प्रदाय पृष्ठ 249

2- स्वामी रामानंद जी के शिष्य श्री अनंतानंद, सीतल सुचन्दन से भक्तन अनंदकर - नाभादास कृत भक्तमाल कृपय सं० 153

3- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृष्ठ 328

रामचंद्र - सीताजी - विश्वकसेन - शठकोपि स्वामी - श्री नाथमुनि -  
पुण्डरीकाक्ष आचार्य - राम मिश्र - यामुनाचार्य - महापूर्णचार्य - श्री रामानुज -  
कुरेश - माधवाचार्य - वीपदेवाचार्य - देवाधिप - पुरुषोत्तम - गंगाधर - रामेश्वर-  
द्वारानंद - देवानंद - श्री मानंद हर्यानंद - राघवानंद - रामानंद ।

उनकी यही परंपरा सर्वथा मान्य और प्रामाणिक है । नाभाजी द्वारा निर्दिष्ट परंपरा जिसमें श्री रामानंद की श्री रामानुजाचार्य की पांचवी पीढ़ी में बताया गया है अपूर्ण है<sup>1</sup> । रामानंद जी की दो शिष्य परंपराएँ चलीं । जिनमें निर्गुण मार्गी शाखा में कवीर, सेन नारै, पीपा, संत रैदास मुख्य हैं । उनके सगुणोपासक अनंद नामधारी 7 शिष्य थे यथा अनंतानंद , सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, योगानंद, गवानंद और गालवानंद । सुरसुरानंद को उन्होंने अपने सिद्धान्तों की स्वयंशिक्षा दी थी । नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में इनके 12 शिष्यों के नाम बतलाए हैं जो उपरोक्त से भिन्न हैं । परन्तु उनमें भी श्री ~~अ~~ अनन्तानंद सबसे अग्रगण्य हैं<sup>2</sup> । अनंतानंद जी के शिष्यों में श्री कृष्ण दास पयहारी मुख्य थे जिन्होंने जयपुर में गलता की वैरागी गद्दी की स्थापना की थी । इन्हें नाथ पंथी वैरागियों से संघर्ष करना पड़ा था । कृष्ण दास जी के अग्रदास और कीरहदास दो प्रधान शिष्य हुए । कीरहदास की गलता गद्दी मिलने पर 'रैवासा' में उन्होंने नये स्थान का निर्माण किया । कालान्तर में श्री रामानंद जी के इन्हीं शिष्य प्रशिष्यों की शिष्य परंपरा के रसिक शिष्य-भक्तों ने राजस्थान ही नहीं वरन् उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, बंगाल और पंजाब में सैकड़ों गद्दियाँ और अखाड़े स्थापित किये और इनका विस्तार इतना बढ़ गया कि वैष्णवों के 52 द्वारों में से 36 द्वारों अकेले इन्हींके हो गये ।<sup>3</sup>

इस सम्प्रदाय के साहित्य निर्माता - राम भक्ति की रसिक शाखा के साहित्य निर्माताओं में स्वा० अग्रदास, बाल अली जी, श्री कृपानिवास, गो० तुलसीदास, जनक

1- भागवत सम्प्रदाय पृष्ठ 249

2- स्वामी रामानंद जी के शिष्य श्री अनंतानंद, सीतल सुचन्दन से भक्तन अनंदकर - नाभादास कृत भक्तमाल कृष्ण सं० 153

3- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृष्ठ 328

राज किशोरी 'रसिक अञ्जी', श्री जीवाराम जी जुगल प्रिया, महात्मा वनादास, सीताराम शरण रामरसरांग मणि, युंगलानन्द शरण, श्री राम सखे, कामदेन्द्र मणि, प्रेमलता जी और वैजनाथ कुरमी प्रमुख है। इन सभी रसिकों ने श्री सीताराम की रास विलास पूर्ण माधुरी श्रृंगार शंकी की उपास्य रूप में ग्रहण कर गुह्य उपासना, सिद्धान्त, प्रमोद वन विहार, ऋतु चर्या, लीला ध्यान, जलश्रीड़ा, नख शिख कर्ण, रूप-सौन्दर्य कर्ण सभी विषयों पर साधिकार ग्रंथ रचना की है। इनकी माधुर्योपासना का रहस्य कृष्ण सम्प्रदाय की रसिकोपासना से भी गूढ़ है। प्रेम लक्षणा भक्ति का साक्षात् रूप इनके ग्रंथों से प्रसवित होता है।

स्वामी अग्रदास — महात्मा अग्रदास का अग्रदास नाम दीक्षा सूचक था। रसिक साधना और साहित्य प्रणयन में उनके 'अग्रअञ्जी' नाम की सूचना 'शिवसिंह सरोज' में मिलती है। इन्होंने 'रैवासा' में अपना स्थान बनाया था जिसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई और उनके शिष्य प्रशिष्यों की संख्या इतनी बढ़ गई कि वैष्णवों के 52 द्वारों में 11 इनके शिष्यों के हो गए। भक्त माल नट श्री नाभादास इनके ही शिष्य थे। उनके दो ग्रंथ 'ध्यान मंजरी' और 'कुंडलियां' उपलब्ध है।<sup>2</sup> इनका 'अग्रसगर' अथवा शृंगार सगर एक विशाल ग्रंथ और बतलाया जाता है। जो अप्राप्य है। परवर्ती रसिक साहित्यकारों ने इन्हें सीताजी की प्रिय सखी 'चन्द्र कला' का अवतार कहा है। उनका जन्मकाल 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में है।<sup>3</sup>

जगत जपत रघुनाथ नाम सब, राम करत सीता को सुमिरन ।  
रामचंद्र को ध्यान धरत मुनि, बसत जानकी रामचंद्र मन ।  
शिव विरंचि के धनुष धरन धन, रघुवर के मैथिली महाधन ।  
परम हंस कुल राम भजन भा, अग्रस्वामि इक पतनी को पन ।<sup>4</sup>

श्री रामसखे — श्री राम सखे का जन्म 18वीं शती के प्रारम्भ में जयपुर के एक कुलीन ब्राह्मण वंश में हुआ था। वे बालक पन से ही राम-रस में लीन

1- रसिक प्रकाश भक्तमाल - पृष्ठ 16

2- भक्तमाल सटीक (रूप कला) पृष्ठ 321

3- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृष्ठ 379

4- अग्रदास पदावली - पद सं० 9

रहा करते थे अतः घरवार छोड़कर उड़पी, अयोध्या, चित्रकूट, की यात्रा की और 12 वर्ष तक कामद वन में नाम जप का अनुष्ठान किया। इसमें वे वास्तव में विरह व्यथित रहा करते थे :-

अरे सिकारी निर्दई, करिया नृपति किसोर  
क्यों दरसावत दरस को, राम सखे चित चोर ।<sup>1</sup>

कानान्तर में उन्हें भगवान् का दर्शन हुआ और उनकी प्रसिद्धि बढ़ गई तो भीड़ लगने लगी। इस कारण वे 1774 ई० में मैहर चले गए और वहाँ गद्दी बना ली। वही उनका सकित वास हुआ। वे नर्म सख्य भाव के उपासक थे। दिन भर इष्टदेव की अखिट, चौपड़, जल विहार आदि में संलग्न रहते और रात्रि को सखी भाव से दम्पति की रासलीला में कैं कर्म करते थे।

सखा सखी दवै भाव जुराखे, मधुरे चरित राम के भखे ।<sup>2</sup>

श्रेष्ठ कवि होने के साथ राम सखे अच्छे संगीतज्ञ भी थे। इनकी पदावली में सभी रागरागनियों का समाविश है। इनकी 1- दवैत भूषण 2- पदावली 3- रूप रसामृत सिंधु 4- नृत्य राघव मिलन दोहावली 5- नृत्य राघव मिलन कवितावली 6- रास पद्धति 7- नाम माला 8- मंगल शतक आदि 10 ग्रंथ हैं।

किते दिन वै जु गए बिनु देखी ।

मेचक कुटिल वदन जुलफन कवि राज माधुरी देखी

कैसर तिलक कंजमुख अम जल सलित लसत दोउ रैं ॥

'राम सखे' विरहिन दोउ अंखियां चाहत मिलन विशेषे

श्री कृपा निवास :- ये दाक्षिणात्य थे, इनके पिता का नाम लीला निवास और माता का गुणलीला था। छोटी अवस्था में ही वैराग्य ल= लेकर अयोध्या आए

1- संप्रदाय भास्कर - रामसखे पृष्ठ 5

2- नृत्य राघव मिलन कवितावली पृष्ठ 963.

और रसिक सम्प्रदाय की दीक्षा ले ली। तदनन्तर भारत के विभिन्न तीर्थों और पुण्य स्थलों का भ्रमण करके चित्रकूट में स्थायी रूप से निवास करने लगे। इन्होंने सम्प्रदाय के प्रचार और भक्ति के प्रसार में बड़ा कार्य किया। इनके काव्य में उपास्य के प्रति गम्भीर प्रेम पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। इनका साधना और भक्ति पक्ष दोनों ही सुदृढ़ हैं। मधुराचार्य जी के समान ये सम्प्रदायके प्रथम स स्तम्भ माने जाते हैं परन्तु पं. रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें एक कल्पित व्यक्ति मान कर इनके साथ बहुत हलका पन बरता है।<sup>1</sup> इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 18 है। 'लगन पच्चीसी' में इन्होंने व्यक्त किया है कि जगत की वासनाओं का परिमार्जन भगवान् के चरणों में गहरी आसक्ति से ही हो सकता है। 'अनन्दाचिंतामणी' सिद्धान्त ग्रंथ है जिसमें साधनों और उनके फलों का वर्णन है फिर दैवत, अदैवत, विशिष्टादैवत मतमतान्तरों का विश्लेषण है। अनन्यता में हनुमान जी का उदाहरण दिया गया है। रामरसमृत सिंधु - में भगवान् राम-सीता का चित्रकूट में विहार वर्णन है। रास-पद्धति - की रचना श्री मद् भागवत के आधार पर हुई है परन्तु वह विशेष मौलिक है। भावना पद्धति - सिद्धस्त और साधना का अनमोल ग्रंथ है। कृपानिवास पदावली - सर्वथा रसपेशल है। इसमें 400 पद हैं। इनके पदों से इनके रस रहस्य के अनुभव की प्रतीति होती है और वे उच्च श्री के भक्त और साधक सिद्ध होते हैं। भाषा सुघर और भाव अत्यन्त हृदयग्राही हैं।

सखी कहु कहि नहिं जात री ।

जब देखीं तब लाल लालची किनकिन हाहा आतरी ।।

रस संपट संपुट का मोही कोई मधुरी बात री ।

जो बीती वितमित नहिं पड़े हित हिय मोक्ष समात री ।

सुख सों दुख दुख सों सुख जानों हा हा लाल सिहातरी ।

कृपानिवास विज्ञापिनि चंचल अंचल दे मुसकात री ।<sup>2</sup>

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 186 रामचंद्र शुक्ल

2- कृपानिवास पदावली पृष्ठ 34

श्री युगलानन्द शरण - इनका जन्म पटना जिले के इस्लामपुर गांव के ब्राह्मण परिवार में सन् 1875 में हुआ था। माता वसुधावती में ही जाती रही। इन्होंने कृष्ण नायक विद्या से धर्मशास्त्र और सम्प्रदाय साहित्य का अध्ययन किया तथा ब्रजभाषा, उड़ी बीली, फारसी, अरबी में काव्य रचना करने और उनके साहित्य का विश्लेषण करने का अभ्यास किया। मूल विद्या और संगीत में भी इन्हें दक्षता प्राप्त थी। 15 वर्ष की आयु में इन्होंने भक्त माली नामक संत से दीक्षा ली और 'युगलानन्दशरण' नाम पाया। तीर्थाटन के अनन्तर ये चित्रकूट में निवास करने लगे जहाँ रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह इनसे मिलने आए। उनसे प्रगाढ़ परिचय होने के अनन्तर ये जयोध्या के लक्षण किला में रहने लगे जिसके विशाल मंदिर का निर्माण महाराज के दीवान ने कराया।

इनके रचे हुए 84 ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें से 75 लक्षण किला में अद्यावधि विद्यमान हैं। साहित्य में प्रचलित तत्कालीन सभी प्रवृत्तियों पर उन्होंने लिखा है तथा काव्य भाषा और शैलियों पर उनका अधिकार है। इनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। तपोमय जीवन प्रकाण्ड पांडित्य, अभूतपूर्व भाषाधिकार अद्भुत अभिव्यंजना शैली और अपार भाव संपत्ति अपने समय के भक्त रचनाकारों में इनका शीर्षस्थ स्थान है। सीताराम सनेह सगर, रघुवर गुण दर्पण, सीताराम नाम प्रकाश अष्टादश रहस्य, रामनामपराख पदावली, अर्थपंचक इनकी प्रसिद्धि कृतियाँ हैं। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में इन्होंने नामादास जी के अतिरिक्त भक्तों के जीवन वृत्त साधना पर प्रकाश डाला है। यह भक्तचरित विषयक संदर्भ ग्रंथ है।

श्री श्री सीतास्वामिनी नाम लोक अशिराम ।

प्रीतम प्रेम प्रकाश कर निकर रहस आराम ॥7॥

विमल विहार विचित्र वर वाण राग फल फूल ।

फूलत फलत पुनाय मनु मन विहंग मुदङ्गल ॥8॥

—श्री जानकी सनेह हुलास शतक ।

गो० तुलसीदास - 'रामचरित मानस' के यशस्वी रचनाकार मर्यादा पुरुषोत्तम

भगवान् राम के लोक मयदा सन्निविष्ट चरितों के संस्थापक गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भगवान् राम और सीता के माधुर्य भाव की झलक नहीं, स्पष्ट अभिव्यक्ति देख पड़ती है। यह उन परम भागवत के केवल भावुक नहीं वरन् अपने प्रभु के चरणों में सर्वतो भावेन समर्पण की भावना की प्रतीति है। जिस समय गोस्वामी जी मानस की रचना कर रहे थे साधना और साहित्य के क्षेत्र में माधुर्य भक्ति का ज्वार उमड़ रहा था और श्री रामधनुर्धारी राम से 'जानक्या सह ब्रं प्रीतः क्रीड़ा रस विलम्पटः' की कीटि में आ चुके थे। उस समय कृष्णामृत सखी सम्प्रदाय, वैष्णव एवं बौद्ध सहजिया, काश्मीर शैव और रामेश्वर दर्शन का भक्ति मार्ग के सभी वटोहियों पर प्रकारान्तर से अवश्य प्रभाव पड़ा था - मधुरोपासना साधन मार्ग के रूप में समस्त उत्तर भारत पर छा गई। राम काव्य मयदा परक था इस कारण उसे रसिक प्रवाह में संयमित रहना पड़ा। आज के साहित्यकारों का अभिमत है कि गोस्वामी जी चारों ओर व्याप्त उस माधुर्य रस प्रवाह से पूर्ण परिचित ही न थे वरन् उनकी उपासना का वाह्य आवरण दास्य भक्ति का और आंतरिक माधुर्य भाव का था।<sup>1</sup> उनकी गीतावली में रात्रि की पुराति क्रीड़ा के अनंतर प्रातः उत्थापन बेला का प्रसंग इस प्रकार है—

और जानकी जीवन जगि ।

सूत मागध प्रवीन, वेनुवीन धुनिहारे गायक सरस राग रगि ।

स्यामल सलोने गात आलस बस जंभात पिया प्रेम रस पगि ।

उनींदे जीवन चारु मुख सुखमा सिंगार हेरि हेरि मार भूरि भगि ।

सहज पुहाई कवि, उपमा न लहे कवि मुदित विलोकन लगि ।

तुलसीदास निसिवासर अनूप रूप रहते प्रेम अनुरागे ॥<sup>2</sup>

उक्त पद में सखी रूप में श्री सीताराम की माधुर्य रसरिक्त झांकी का दर्शन सर्वथा स्पष्ट है। ब्रज निधि कवि ने उन्हें लाड़लड़ाने वाली और उनकी निकुंज लीला

1- तुलसी की गृह्य साधना - चंद्र वली पाण्डेय 'नया समाज सितम्बर 1953

2- गीतावली पद संख्या 19 ।

की व्यवस्था करने वाली वृन्दा (तुलसी) सखी की संज्ञा से अभिहित किया है । इसमें विशेष रूप से सत्यांश निहित है ।<sup>1</sup> इसी प्रकार गीतावली में गौने के अनंतर उन्होंने श्री लक्ष्मण उर्मिला और श्री सीताराम के केलिगृह का सुंदर और गुह्य चित्र अंकित किया है जिसके अनावृत्तीकरण का सखी सहचरियों को ही अधिकार होता है । निश्चय ही तुलसी की दास्य भाव की भक्ति उनके हृदय की सरसता, साधना की उच्चता, अनुराग मयी भावना की तन्मयता के फलस्वरूप माधुर्य भक्ति में अवश्य ही परिचित होती हुई दिखाई देती है :-

जैसे ललित लघन लख लैने ।

तैसिये ललित उरमिला, परस्पर लखत सुलोचन कोने ।

सुखमा सागर सिंगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने ।

रूप-प्रेम-परिमिति न परत कहि, विथकि रही मति मैने ।

सोभा-सीय सनेह सुहावनि समउ केलि गृह मैने ।

देखि तियनि के नयन सफल भर तुलसीदास के हू होने ।<sup>2</sup>

अवध के अवतारी राजकुमार और राजमहिषियों की निकुंज लीला दर्शन में संलग्न चित्त इस तुलसी (वृन्दा) अंश के हृदय की गुदगुदी का कुछ वाराणस नहीं है ।

— :: ॐ०ॐ :: —

1- जै जै श्री तुलसी तरु जंगम राजई

—त्रजनिधि गैथावली ना०प्र०सभा काशी पृ० 275-276

2- गीतावली - वालकण्ठ पद सं० 105



## अष्टम - अध्याय

### उपसंहार

#### निकुंजलीला का योगदान ।

**भक्ति में प्रेम - प्रतिष्ठा :-** भागवतकार के अनुसार कलियुग में भगवत् नाम स्मरण के अतिरिक्त मुक्ति का कोई उपाय नहीं है । नाम स्मरण किस प्रकार हो इसका उत्तर गो० तुलसीदास जी ने मानस के उत्तर काण्ड में दिया है : ।

पन्नगारि ! सुनि प्रेम सम भजन न दूसर जान ।

यहि विचारि पुनि पुनि मुनी, करत राम गुन गान ॥<sup>1</sup>

प्रेम के दास्य सख्य वात्सल्य, माधुर्य अनेक रूप हैं । उनमें से माधुर्य सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें अन्य सभी रसों का समावेश है । माधुर्य भक्ति में भी सहचरी रूप में निकुंज लीला में प्रिया प्रियतम के रसवेश में यथास्थिति पार-संभार और सज-संयोजन एवं झंझ झरोखे उनकी सुरति ब्रीड़ा का दर्शन सहचरी का परम काम्य है । शृंगार में भौतिक उत्थान की प्रेरणा है परन्तु साथ ही अलौकिक समर्पण भावना भी है अतः सखी भाव का उपासना मार्ग मानव मन की कोमल तम प्रवृत्ति को स्पर्श करता है । यह थोड़ा दुष्कर होती हुए भी राग से राग को अन्तर्कृत का सहज माध्यम है ।<sup>2</sup> इस भक्तिभाव में प्रिय की सन्निकटता तथा आत्मीयता के कारण प्रेम की जो तीव्रता है वह अन्य किसी भाव में नहीं है । समर्पण-भाव में 'तत्सुख-सुखी भावना' एक विशेष मनोदशा है जो निम्बार्क, राधाकृतभ, स्वामी हरिदास और सलिल सम्प्रदाय में अपने विशुद्ध सात्त्विक रूप में अभिव्यक्त हुई है यह भक्ति का चरम आदर्श है । राम-सम्प्रदाय की रसिक शाखा में 'तत्सुख सुखी' का विभिन्नत तात्पर्य है । वहाँ उस परमानंद का सुख भोग सखियां जानकी के रूप में अवस्थित होकर करती है । इन सम्प्रदायों में सीता और राधा के स्वकीया भाव की प्रतिष्ठा लोकमयदि की संरक्षा का सहज प्रयास है ।

1- रामचरित मानस, उत्तर काण्ड दोहा सं०

2- इस निबंध की पृष्ठ संख्या १०६

(सम्बन्ध-योजना)

साहित्य - संबर्धन :- डा० रूप नारायण के अनुसार 'उपास्य राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं के गान और ध्यान के प्रयोजन से कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रजभाषा में जिस सरस साहित्य का सृजन किया वह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। उसमें दर्शन, साहित्य और संगीत तीनों का अनुपम संयोग है। इन तीनों तत्वों के कारण इस लीला साहित्य में वह शक्ति आ गई है जिससे कोई सहृदय पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।' निकुंज-लीला विषयक इस साहित्य के संवेध होने का प्रमुख कारण यह है कि उसके सृष्टा भावुक भक्त और भगवान् की इन लीलाओं के प्रत्यक्ष दृष्टा और भोक्ता थे। उनका समय ही इस प्रकार का था। उन्होंने इन लीलाओं की प्रत्यक्षानुभूति की थी। सच्ची भावना में उनका अपने उपास्य से तादात्म्य सा हो गया था। पुरादास, परमानंददास, हितहरिवंश, श्री भट्ट, हरिव्यास देव, स्वा० अग्रदास वाल-अली, वंशी अली और स्वामी हरिदास ने प्रिया प्रियतम की प्रेम लीलाओं में खवासी सुख भाग की जो अनुभूति की थी उसी की अपनी वाणी के स्वर में रसिक मर्मजों के समक्ष मुखरित किया था। उनके जीवन सम्बन्धी जो अलौकिक वृत्त है वे भी सर्वथा असत्य नहीं है। 'नृपति द्वार ठड़े रहें दर्शन आसा जास की' भक्त माल कार के इस कथन के पीछे निश्चय ही स्वामी जी द्वारा निकुंज बिहारी विहारिन के समक्ष संगीत कला समर्पण की प्रसादी में अवश्य ही वह प्रभाव था जिससे उस युग के महानतम व्यक्ति आकर्षित होते थे। इन सिद्ध देह प्राप्त भावापन्न साधकों की 'कोलिमल', 'हित चौरासी', 'युगल शतक', 'महावणी', सिद्धान्त मुक्तावली, 'ध्यान मंजरी', 'नेह प्रकाश', 'रस-मालिका' प्रभृति अनेक सिद्ध रचनाएँ हैं जिनका ध्यान, मनन और चिंतन रस मार्ग का उन्मुक्त प्रवेश द्वार है। ये रचनाएँ अपने निर्माणकाल की पावन प्रवृत्ति, संयम की कठोरता, उपास्य में सच्ची अनुरक्ति और उनके प्रति अलौकिक समर्पण भावना का प्रतिफल है। रीतिकाल में संयम और सच्ची अनुरक्ति के अभाव में राधाकृष्ण के प्रति समर्पित वही भावना उच्छिष्ट होकर सर्वथा आकर्षण विहीन हो गई। कविजनों का विश्वास और आत्मबल सब कुछ विनष्ट हो गया। वे केवल बहाने की खोज में रहने लगे। आस्तिकता तो उनमें नाम मात्र की भी न थी।

"कविजन रीझहिंगे तौ तौ कविताई नहीं,  
रामनाम सुमिरन ही कौ वहानौ है ।

परन्तु निकुंज लीला साहित्य की गम्भीरता और स्थिरता सार्वकालिक और सार्वदेशिक है । हाँ उसके संसार के लिए परिष्कृत रुचि और परिपक्व भावना की अपेक्षा है ।

दार्शनिक उपलब्धि :- डा० संगमलाल ने निकुंज लीला को 'मोक्ष शास्त्र का सिद्धान्त' कहा है । 'मोक्ष' का तात्पर्य है संसार के दुःख सुख से निवृत्ति, एक ऐसे जगत में प्रवेश जहाँ आशा तृष्णा से पीड़ा छूट जाय । प्राणी समाधि दशा में किसी प्रकार का भान न करता हुआ अपनी वृत्ति के अनुरूप सदृशयता में संलग्न रहे । उसकी 'काम' से निवृत्ति हो जाय । 'काम' विषयवासना का ही नाम नहीं चरन लोभवशात् सांसारिक आपत्ति भी 'काम' का परिचायक है । निकुंज लीला साधकों की लौकिक काम वासना को ईश्वरोन्मुख बनाने का सफल प्रयास है । वह उसे समाधि की अवस्था में लाकर कृष्णोन्मुख करने का माध्यम है । अतः काम से सहज निवृत्ति का सुन्दरतम साधन है । माधुर्य भक्ति का यह दर्शन प्रेम दर्शन या रस-दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है । यह सरल, सबज और सरस होने के कारण अनयास अलौकिक आनंद की दाता है । दर्शन के क्षेत्र में माधुर्य भक्ति की यह अभूतपूर्व देन है ।<sup>2</sup>

संगीत, कला और संस्कृति कक्षेत्रों में योगदान :- निकुंज लीला का प्रायः समग्र साहित्य पद रचना में अभिव्यक्त है । काव्य संगीत के संयोग से अत्यन्त प्रभावशाली और रोचक बन जाता है । निकुंज लीला गायकों में श्री श्री भट्ट श्री हरि व्यास देव, स्वामी हरिदास, श्री हितहरिवंश, श्री कंशी अली, स्वामी अग्रदास, युगलानन्द शरण संगीत के आचार्य थे । डा० नारायणदत्त शर्मा ने प्रतिपादित किया है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री हरिव्यास देव जी संगीत के उद्भट कलाकार और मर्मज्ञ थे । स्वामी हरिदास की कला के निखार में उनका मूल्यवान् प्रभाव

1- लीलातत्व - डा० संगमलाल, सर्वेश्वर ब्रजलीला अंक पृष्ठ 11

2- ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति - डा० रूप नारायण पृष्ठ 460

और योगदान था । हरिव्यास देव जी इस क्षेत्र के फूल और स्वामीजी फल स्वरूप थे ।<sup>1</sup> विभिन्न सम्प्रदायों के मठ मन्दिरों में दैनिक सेवा में संगीत की अनिवार्यता है । वहाँ के नित्य और नैमित्तिक उत्सवों में चित्रकला, वास्तुकला, रूप सज्जा, अलंकरण, सौंदर्य-साधन, पच्चीकारी, मालोपहार उपादान अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं । स्वामी हरिदास, श्री हरिव्यास देवचार्य, श्री हितहरिवंश ने श्री राधा कृष्ण के रूप-सौंदर्य के साथ, वस्त्राभूषण और विविध अलंकरण युक्तता से उनके जिस सभाकर्षण का विधान किया है उससे प्रकट है कि उनके समय में ये सब शक्ति और उपयोगी कलाएँ अपने पूर्ण विकसित रूप को पहुँच चुकी थीं । धार्मिक भावना के प्रभय से मठ मन्दिरों के माध्यम और उपास्य के प्रति सर्वस्व न्योछावर करने की प्रवृत्ति ने निश्चित रूप से सर्वथा उल्लेखनीय प्रोत्साहन मिला था । तनसेन और वैष्णवावारा के उन्नत कला आदर्शों को इसी का प्रतिफल स्वीकार करना होगा ।

संस्कृति के क्षेत्र में निकुंज लीला के क्रीड़ा व्यापार, उनका समायोजन और विधि विधान भारतीय संस्कृति के अभिन्नअंग हैं । प्रातः उत्थापन की लीला से निशान्त की सुरति क्रीड़ा तक विविध कुंजों में स्नान, श्रृंगार, आरती बाल भोग, विहार, राजभोग, रास, विवाह, रथयात्रा, ऋतुचर्या, झूलन, हिंडोला आदि प्रत्येक प्रसंग में संस्कृतिके अनेक उपादान सन्निहित है । डिठौना लगाना, राई नैन उतारना, सुकुमारता और सौंदर्य पर बलि बलि जमाना, विवाह में परिह्वन की प्रथा आरतौ, रहस बधायौ, दूधावाती, कंकन-क्रीड़ा, बाग विहार आदि जीवन के न जाने कितने लोकचार इन लीलाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति के अंग बन चुके हैं । इस दिशा में इन लीलाओं के योगदान का मूल्यंकन सहज नहीं हो सकता ।

डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने अपने 'कृष्ण-भक्ति काव्य में सखी भाव' शोध प्रबंध में 'निधिवन' 'सेवाकुंज' और निधिवन निकुंज (महत्त्व) को श्री श्यामाश्याम की गुह्यतम 'काम स्थली' कहा है । ये अत्यन्त मनोहर है और 'काम के अविश को अनेक प्रकार से बढ़ाने वाली है । कुंज मानी मदन के सदन हैं, इनमें विचित्र कौतुक है दाय़ा हुआ है । यह कौतुक प्रियाप्रियतम को निकुंजों में रक्खे रखता है ।

1- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि-डा० नारायणदत्त-भा० 2 पृ० 272-सम्प्रका

• • • वे जब जैसी रति चाहते हैं उन्हें प्राप्त हो जाती है । प्रेम के अधिकाधिक घनीभूत होने की दशा में वृन्दावन का विहार क्षेत्र सिमटता जाता है । वृन्दावन का और अधिक सूक्ष्म प्रदेश तो निकुंज ही हैं ।<sup>1</sup> राधा और कृष्ण की कलित क्रीड़ाओं से वृन्दावन की ये स्थलियाँ परम पावन वन चुकी हैं जिनके दर्शन और राजस्पर्श के लिये भारत के विभिन्न भागों से ही नहीं वरन् देश विदेशों से सांस्कृतिक अनुसंधित्सु आते रहते हैं । वृन्दावन के अतिरिक्त राधाकुंड, बरसाना, गोवर्द्धन नंदगांव, संकेत और काम्यवन (कामवन) श्री राधा माधव के रास विलास और कुंज निकुंज की रहस्यमयी लीलाओं केलि-क्रीड़ाओं की रास-स्थलियाँ हैं जिनमें से कहीं भी पंथ्या में कुंज निकुंजों के अस्तित्व का आदि वाराह, पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, स्कंद पुराण, श्री मदभागवत पुराण, गर्ग संहिता आदि में विस्तृतवर्णन है । इन कुंज निकुंजों का श्री किशोर किशोरी की विविध लीलाओं से सम्बन्ध है जो रहस्यपूर्ण है । गोड़ीय सम्प्रदाय के श्री नारायण भट्ट ने अपने 'व्रज भक्ति विलास' में इन कुंज निकुंजों के संदर्भ में बहुत सूक्ष्म संकेत किया है । व्रजलीला और श्रिकुंजों निकुंज लीलान्तर्गत सपिक्क अनुसंधान में इन लीलाओं और कुंज निकुंजों के रास-रहस्य का उद्घाटन गम्भीर और परिश्रम शील शोध की अपेक्षा रखता है । व्रज के सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से भी इसका अपना महत्त्व है ।

— : ॐ०ॐ : —

1- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव, डा० शरण बिहारी गोस्वामी पृ० 306-307

## ग्रंथ - सूची

=====

|                                    |     |                                                          |
|------------------------------------|-----|----------------------------------------------------------|
| अमर कोष                            | ... | -निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।                              |
| अष्टादश और बल्लभ सम्प्रदाय         |     | -डा० दीनदयाल गुप्त                                       |
| अग्रदास पदावली                     | ... | -स्वा अग्रदास ।                                          |
| अणु भाष्य                          | ... | -श्री बल्लभाचार्य ।                                      |
| अवध संदेश                          | ... | -सीताराम लीला विशेषांक- लक्ष्मण क्लृप्ता अयोध्या         |
| अष्टकासीन नित्य लीला               |     | -संकसन कर्मा श्री मधुसूदन, नित्यानन्द अठखम्बा वृन्दावन । |
| अष्टादश सिद्धान्त के पद            |     | -स्वा० हरिदास ।                                          |
| अनन्य तरंगिणी                      | ... | -रसिक अली' जनकराज किशोरी शरण                             |
| अष्ट पदावली की भूमिका              |     | -डा० सोमनाथ                                              |
| आदि पुराण                          | ... | -                                                        |
| आनंद सता लीला                      | ... | -ध्रुवदास                                                |
| आत्मबोध                            | ... | -बनादास                                                  |
|                                    |     | आत्म सम्बन्ध दर्पण - रसिक अली ।                          |
| उपासनात्रय सिद्धान्त               | ... | -पं० सरयूदास                                             |
| उज्ज्वल नील मणि                    | ... | -रूप गोस्वामी - संपादक कृष्णदास बाबा                     |
| स्तरेय उपनिषद्                     |     |                                                          |
| कवित्त रत्नाकर                     | ... | -सेनापति                                                 |
| कौशल खंड                           | ... | -                                                        |
| कठोपनिषद्                          | ... | -गीतप्रिय गोरखपुर ।                                      |
| किशोरदास की वणी                    | ... | -पं० राधा मोहन दास गुप्त ।                               |
| कृष्ण कर्णामृत                     | ... | -रामदास शास्त्री, वृन्दावन ।                             |
| कृष्ण भक्ति की काव्य धारा का विकास | ... | -डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ।                                 |
| काव्य प्रकाश                       | ... | -आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना                               |
| कल्याण हिंदू संस्कृति अंक          |     |                                                          |
| कृष्ण चरित का भावत्मक स्वरूप       |     | -डा० लक्ष्मणराय                                          |

|                               |     |                                              |
|-------------------------------|-----|----------------------------------------------|
| केसिमाल                       | ... | —स्वामी हरिदास                               |
| कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव |     | —डा० शरण बिहारी गोस्वामी                     |
| कृष्ण शरण पत्त स्त्रोत्र      |     | —श्री भट्ट देवाचार्य                         |
| कृष्णोपनिषद्                  | ... | —निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।                  |
| गोपाल तापिनी उपनिषद्          |     |                                              |
| गोविन्द भाष्य                 | ... | —बलदेव विद्याभूषण ।                          |
| गीत गो वेन्द                  | ... | —जयदेव - निर्णय सागर प्रेस, बम्बई            |
| गीतमीयतंत्र                   | ... | —नगरी बंगाधर, कलकत्ता                        |
| गीतामृत गंगा                  | ..  | —श्री वृन्दावन देवाचार्य                     |
| गायत्री भाष्य                 | ... |                                              |
| गर्ग संहिता                   | ... |                                              |
| गौर नाम रस चम्पू              | ... | — <del>कृष्ण</del> कृष्ण कवि                 |
| चित्तमणि                      | ... | —आचार्य राम चन्द्र शुक्ल                     |
| चैतन्य मत और ब्रज साहित्य     |     | —प्रभुदयाल मोतल                              |
| चैतन्य चरितामृत               | ... | —कृष्णदास कविराज                             |
| चौरासी वैष्णवन की वार्ता      |     | —सं० कारिका दास परीख                         |
| छान्दोग्य उपनिषद्             | ..  | —गीतप्रेस गोरखपुर ।                          |
| जैवधर्म                       | ... | —श्री मदभक्ति नारायण महाराज, गोडीय मठ, मथुरा |
| तैत्तरीय उपनिषद्              | ... | —गीतप्रेस गोरखपुर                            |
| तुलसी ग्रन्थावली              | ... | —अ० भा० विक्रम परिषद् कशी                    |
| दृष्टि और दिशा                | ... | —डा० चन्द्रभान रावत                          |
| दान माधुरी                    | ... | —सं० बालकृष्ण दास                            |
| नृसिंह तापिनी श्रुति          | ... |                                              |
| नारद पंचरात्र                 | ... | —                                            |
| निम्बार्क माधुरी              | ... | —ब्रह्मचारी बिहारी शरण                       |
| नाट्य शास्त्र                 | ... | —भारत                                        |
| नारदीय पुराण                  | ... |                                              |
| निकुंज प्रेम माधुरी           | ... | —श्री माधवदास                                |

|                                       |     |                                                       |
|---------------------------------------|-----|-------------------------------------------------------|
| नेह प्रकाश                            | ... | -महात्मा बास अलि                                      |
| नंददास ग्रंथावली                      | ... | -सं० ब्रजरत्न दास                                     |
| निहुंज विसास                          | ... | -गोस्वामी विदुषननाथ                                   |
| निहुंजोपासना रहस्य                    | ... | -बा० कुंजबिहारी शरण                                   |
| नित्य राधव मिसन                       | ... | -रामसखे                                               |
| निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण     |     | -भक्तहिंदी कवि                                        |
| पदावली -रूप गोस्वामी                  |     | -डा० नारायणदत्त शर्मा                                 |
| पदम पुराण                             | ... | -खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई                           |
| परमनिंद सागर                          | ... | -डा० गोवर्धननाथ शुक्ल भारत प्रकाशन<br>मन्दिर अलीगढ़ । |
| परशुराम सागर                          | ... | -परशुराम देवाचार्य                                    |
| परमनिंददास और बल्लभ संप्रदाय          |     | -डा० गोवर्धननाथ शुक्ल-भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़      |
| वृहद् संहिता                          | ... | -प्रेमसत्ता।                                          |
| वृहद् भागवतमृत                        | ... | -सनातन गोस्वामी ।                                     |
| पुष्टि मार्गीय सार                    | ... | -श्री रामण ज्ञानजी महाराज ।                           |
| प्रियादास नामावली                     | ... | -सं० बाबू कृष्णदास ।                                  |
| प्रबोधानंद                            | ... | -श्री चैतन्य चरितावली                                 |
| पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ                 |     | -डा० सत्येन्द्र                                       |
| शुक्ल यजुर्वेद                        |     |                                                       |
| प्रातः स्मरणीय सूत्र                  | ... | -श्री निम्बार्कचार्य                                  |
| बिहारी बोधिनी                         | ... | -ज्ञा० भगवानदीन                                       |
| बिहारिन दास की वाणी                   |     | -सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन                             |
| ब्रज विसास                            | ... | -नारायण स्वामी                                        |
| ब्रज साहित्य का इतिहास                |     | -डा० सत्येन्द्र                                       |
| ब्रज भाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य  |     | -किशोरी शरण अलि                                       |
| ब्रज भाषा के काव्य में माधुर्य भाक्ति |     | - डा० लय नारायण                                       |
| ब्रज के धर्म - सम्प्रदाय              |     | -प्रभुदयाल मोतल                                       |
| ब्रज माधुरी सार                       | ... | -वियोगी हरि                                           |



|                                |                                                 |
|--------------------------------|-------------------------------------------------|
| ब्रज का इतिहास ...             | -डा० कृष्णदत्त वाजपेयी                          |
| विठ्ठल विपुल की वणी            | -सर्वेश्वर प्रेम वृन्दावन                       |
| बाल्मीकि रामायण -              | -गीतप्रेस गोरखपुर                               |
| ब्रह्म वैवर्त पुराण ...        | -सं० राधा कृष्ण और कलकत्ता                      |
| ब्रह्माण्ड पुराण               |                                                 |
| ब्रह्म संहिता                  |                                                 |
| बयालीस जिला ...                | -ध्रुवदास                                       |
| भक्ति का विकास ...             | -डा० मुंशीराम शर्मा                             |
| भक्ति रसायन ..                 | -मधुसूदन सरस्वती                                |
| भक्तिरसामृत सिंधुबिन्दु ...    | -रूप गोस्वामी, सं० डा० नगेन्द्र दिल्ली          |
| भावना सागर ...                 | -गोस्वामी चतुरशिरामणि, प्रेम गली, वृन्दावन      |
| भारत का वृहद् इतिहास           | -श्री नेत्र पाण्डेय, स्टूडेंट फ्रेंड्स, दिल्ली  |
| भक्त मालांक ..                 | -श्री सर्वेश्वर - वृजकलभशरण वेदान्तार्थ         |
| भगवत् भक्ति रसायन ...          | -श्री मधुसूदन सरस्वती ।                         |
| भ्रमर गीत सार ...              | -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल                         |
| भगवत् रसिक नाम प्रताप          | -बिहारी कलभ                                     |
| भक्त कवि न्यास जी ...          | -सं० कालिकादास परीख, प्रमुदयाल मीतल             |
| भक्त माला ...                  | -नाम्नादास जी                                   |
| भक्ति शिरोमणि महाकवि सुरदास    | -नलिनी मोहन सान्याल                             |
| भगवत् सम्प्रदाय ...            | -कृदेव उपाध्याय                                 |
| भक्ति रहस्य ...                | -गोपीनाथ कविराज                                 |
| भाव रत्नाकर ..                 | -सीता शरण अयोध्या                               |
| महावणी ...                     | -हरिव्यास देव सं० ब्रह्मचारी बिहारीशरण वृन्दावन |
| मध्वाचार्य प्रेम दर्शन मीमांसा | -                                               |
| मध्य कालीन धर्म साधना          | -डा० हजारी प्रसाद विदवेदी                       |
| मध्य कालीन प्रेम साधना         | -पराशुराम चतुर्वेदी                             |
| मुण्डक उपनिषद् ...             | -गीता प्रेस, गोरखपुर ।                          |
| महाभारत ...                    | -गीता प्रेस गोरखपुर ।                           |

मनुस्मृति

|                     |     |                                   |
|---------------------|-----|-----------------------------------|
| मिश्रबंधुविनोद      | ... | —मिश्र बंधु                       |
| माधुर्य जहरी        | ..  | —कृष्णदास जी                      |
| महाकवि पुरदास       | ..  | —नन्ददुत्तारि वाजपेयी             |
| युगम तत्त्व समीक्षा | ..  | —अगीरथ झा                         |
| युगल शतक            | ..  | —श्री मद् देवाचार्य               |
| योग प्रदीप          | ... | —योगिराज अरविन्द                  |
| युगल सनेह पत्रिका   | ... | —सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन         |
| यमुनाष्टक           | ..  | —श्री हित हरिवंश                  |
| रसखान की पद खज़ी    | ... |                                   |
| राम चरित मानस       | ... | —गो० तुलसीदास - गीतप्रेस, गोरखपुर |
| रामानुज भाष्य       | ... |                                   |

राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना— भुवनश्वर मिश्र माधव

|                                          |     |                                         |
|------------------------------------------|-----|-----------------------------------------|
| रामानुगाविवृत्ति                         | ... | —श्री रूपरत्न कविराज डा० कृष्ण दास बाबू |
| राम भक्ति में रसिक संप्रदाय              |     | —डा० भावती प्रसाद सिंह, गोरखपुर         |
| राधा सहप्रनाम                            | ... | —सनत्कुमार दास वृन्दावन                 |
| राधा तत्त्वप्रकाश                        | ... | —वंशी अली जी                            |
| रस कदम्ब चूनामणि                         | ..  | —हस्तलिखित, गो० कदेवदास, वृन्दावन       |
| रसिक माला                                | ... | —उत्तम दास                              |
| रसिक मंजरी                               | ... | —सय रसिक देव                            |
| राधाका क्रम विकास                        | ... | —डा० शशि भूषणदास गुप्त                  |
| राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य |     | —डा० विजेयेन्द्र सातक                   |
| राधा माधव चिंतन                          | ... | —हनुमान प्रसाद पौददार                   |
| रस गंगाधर                                | ... |                                         |
| रस मंजरी                                 | ... | —नंद दास, रामचन्द्र शुक्ल               |
| रामतत्व प्रकाश                           | ... | —मधुराचार्य                             |
| रामनवरत्न सार                            | ... | —स्वा० रामचरण दास, 'कल्याणसिंधु'        |
| राधाजी का तत्व महत्व                     |     | —कल्याण वर्षा 40, अंक 11                |
| राधा सुधानिधि                            | ... | —सं० लक्ष्मीनारायण वैद्य वृन्दावन       |

|                                                 |      |                                                     |
|-------------------------------------------------|------|-----------------------------------------------------|
| रसिक भक्त माल                                   | ...  | —यमुना कल्लभ गोस्वामी, वृन्दावन                     |
| लीलातत्व मीमांसा                                | ...  | —डा० संगमलाल पांडेय सर्वेश्वर वृन्दावन              |
| लीलाविशंति                                      | ...  | —रूप रसिक देव, सर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन            |
| विनय पत्रिका                                    | ...  | —गोस्वामी तुलसीदास गीतप्रेस गोरखपुर                 |
| वृहद् ब्रह्म संहिता                             |      |                                                     |
| विष्णु पुराण                                    |      |                                                     |
| वैष्णव मताब्ज भास्वर                            | ...  | —स्वा० रामानंद                                      |
| विष्णु धर्मोत्तर                                |      |                                                     |
| कल्लभ रसिक की वणी                               |      | —वा० कृष्णदास, कुसुम सरोवर, गोवर्धन                 |
| वृहत्स्रोत्र सप्तिसागर                          |      |                                                     |
| वेदान्त दश श्लोकी                               | ...  | —श्री निम्बार्कचार्य                                |
| वेदान्त सूत्र                                   |      |                                                     |
| वृहद् सम्बन्ध सूत्र                             |      |                                                     |
| विज्ञाप कुसुमजलि                                | ...  | —श्री दास गोस्वामी                                  |
| वंशी अली जी की वणी                              |      | —हस्तलिखित                                          |
| श्रृंगार रस मंडन                                | ...  | —गी० बिदठलनाथ                                       |
| श्री हरिव्यास देवाचार्य और महावणी               |      | —डा० राजेन्द्र गौतम                                 |
| श्री भट्ट भागवत                                 | = .. | —गीतप्रेस, गोरखपुर                                  |
| श्री मदवैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह             |      | —श्यामलाल हकीम, वृन्दावन ।                          |
| श्री मदभागवत गीता                               | ...  | —गीतप्रेस, गोरखपुर                                  |
| श्री हित हरिवंश गोस्वामी संप्रदाय<br>और साहित्य | ...  | —श्री ललिता चरण गोस्वामी                            |
| शक्ति सूत्र                                     |      |                                                     |
| शंकर भाष्य                                      |      |                                                     |
| श्वेतश्वरोपनिषद्                                |      |                                                     |
| समाज श्रृंखला गायन                              | ...  | —विश्वेश्वर शरण, वृन्दावन                           |
| सम्प्रदाय दीपनिबन्ध                             | ...  | —ज्ञानसागर प्रेस बम्बई                              |
| सदाचार सार संग्रह                               | ...  | —श्री निम्बार्कचार्य, हस्तलिखित, बनम्बार्क शोध मंडल |
| सुरपंचरत्न                                      | ...  | —सं० डा० भगवानदीन, रामनारायण प्रेस, इलाहाबाद        |

|                                                      |  |                                                                        |
|------------------------------------------------------|--|------------------------------------------------------------------------|
| संकल्प कल्पद्रुम                                     |  |                                                                        |
| सीताराम भद्र केलिकदम्बिनी                            |  | -वामदेन्दु मणि                                                         |
| ब्रज लीला अंक ...                                    |  | -सर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन                                             |
| सुरसारवली ...                                        |  | -अग्रवाल प्रेस, मथुरा                                                  |
| सोलहवीं शताब्दी के हिंदी और<br>बंगाली वैष्णव कवि ... |  | -रतन कुमारी                                                            |
| सनतकुमार तंत्र                                       |  |                                                                        |
| सुरदास मदन मोहन की जीवनी<br>और पदावली ...            |  | -अग्रवाल प्रेस, मथुरा                                                  |
| सनत कुमार संहिता ...                                 |  |                                                                        |
| सिद्धान्त मुक्तावली ...                              |  | -हरिव्यास देवाचार्य                                                    |
| सिद्धान्त सार संग्रह                                 |  |                                                                        |
| सुबोधिनी ...                                         |  | -बल्लभाचार्य                                                           |
| सुर सौरभ ...                                         |  | -मुंशीराम शर्मा                                                        |
| सुर और उनका साहित्य                                  |  | -डा० हरवंश लाल शर्मा                                                   |
| सेवकजी की वाणी ...                                   |  | -दामोदर दास सेवक हस्तलिखित                                             |
| स्वामी हरिदास रस सागर                                |  | -सं० विश्वेश्वर शरण                                                    |
| सरोज सर्वेक्षण ...                                   |  | -डा० किशोरी लाल गुप्त                                                  |
| सिद्धान्त पंचाध्यायी ...                             |  | -नंददास, सं० ब्रजरत्न दास                                              |
| स्वामी हरिदास जी की जीवनी<br>और वाणी ...             |  | -प्रभुदयाल मीतल                                                        |
| साहित्य दर्पण ...                                    |  | -विश्वनाथ - सं० शास्त्रिप्रसाद शास्त्री, मीतीलाल<br>बनारसीदास दिल्ली । |
| सुरदास ...                                           |  | -हजारी प्रसाद द्विवेदी                                                 |
| सुरसागर ...                                          |  | -महा कवि सुरदास - नगरी प्रचारिणी सभा                                   |
| सुरदास ...                                           |  | -ब्रजेश्वर वर्मा                                                       |
| सुरपूर्व ब्रजभाषा ...                                |  | -डा० शिव प्रसाद सिंह                                                   |
| सुर सागर ...                                         |  | -नंद दुलारे वाजपेयी                                                    |
| सुदामा चरित ...                                      |  | -नंददास शुक्ल परिशिष्ट                                                 |

|                                                    |     |                                           |
|----------------------------------------------------|-----|-------------------------------------------|
| स्कंद पुराण                                        | ..  | -भागवत माहात्म्य                          |
| हिंदी साहित्य                                      | ... | -डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी                |
| हिंदी साहित्य की भूमिका                            |     | -डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी                |
| हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास                 | ... | -डा० राम कुमार वर्मा                      |
| हिंदी साहित्य का इतिहास                            |     | -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल                   |
| हरिव्यास यशामृत सागर                               |     | -रूप रसिक देव, दत्तियावासी कुंज, वृन्दावन |
| हित चतुरासी                                        | ..  | -वैष्णुप्रकाशन, वृन्दावन                  |
| हिंदुत्व                                           | ... | -रामदास गौड़                              |
| हिंदी भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव       | ... | -विश्वनाथ शुक्ल                           |
| हृदय सर्वस्व                                       | ... | -वंशी अली                                 |
| हितमृत सिंधु                                       | ..  | -मंहत द्वारिका धीरा                       |
| हनुमत्संहिता                                       | ... |                                           |
| हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त | ... | -डा० योगेन्द्र प्रतापसिंह                 |
| हिंदी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन                  | ... | -डा० हिरण्यम्                             |

पत्र - पत्रिकाएँ  
=====

|                        |     |           |
|------------------------|-----|-----------|
| अभिनव भारती            | ... | - अलीगढ़  |
| अवध संदेश              | ... | -अयोध्या  |
| कल्याण                 | ... | -गोरखपुर  |
| ज्ञानदा                | ... | -मथुरा    |
| नगरी प्रचारिणी पत्रिका |     | -कशी      |
| ब्रज भारती             | ... | -मथुरा    |
| सर्वेश्वर              | ... | -वृन्दावन |
| श्री सुदर्शन           | ... | -         |
| हिन्दी अनुशीलन         | ... | -इसहाबिद  |
| सम्मेलन पत्रिका        | ... | -इसहाबिद  |

- An outline of the religious  
literature of India — J.N.Farguhar.
- Aspects of early vaishnavism — J.Gonda
- Mathura—A District Memoir — F.S. Growse
- A Primer of Hinduism — J.N. Farguhar.
- Bhakti cult in Ancient India — Bhagwat Kumar
- Early History of Vaishnava Sect — Hemchandra Rai Chaudhary.
- District Gazettier of Fajjabad
- Modern Vernacular Literature  
of Hindustan — Dr. Grierson.
- History of Vaishnavas — T.A. Gopinath Rao.
- Early history of Vaishnava faith  
& movement in Bengal — Dr. S.K.De.
- Religious sects of Hindus — M. Willioms
- Vallabahacharaya — Manilal C. Parikh.

\*\*\*